तुलसीदास और उनकी कविता

दूसरा भाग

लेखक

रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर

प्रयाग

पहला संस्करण } दिसंबर, १९३७ { मूल्य ढाई रुपये

हिन्दी-मन्दिर प्रेस, इलाहाबाद मे
रा० न० त्रिपाठी द्वारा मुद्रित और प्रकाशित
पहला सस्करण १००० : दिसवर, १९३७

प्रस्तावना

इस पुस्तक के पहले भाग में तुलसीदास और उनकी कविता का बहिरङ्ग-परिचय दिया गया है, जिसमे मेरी कुछ बिलकुल नवीन खोजो के विवरण भी हैं। इस भाग मे उनका अन्तरङ्ग-परिचय है।

हमारे सहृदय पाठक ध्यान से देखेगे तो तुलसीदास के बहिर्जगत् और अन्तर्जगत् की विस्तृत सीमा में अनेक प्रकार के सुन्दर-सुन्दर दृश्य देखने को मिलेंगे, जहाँ पहुँचने पर साहित्यिक आनन्द पाने के अतिरिक्त कल्याणेच्छुक जिज्ञासुओं को जीवन के नवीन मार्ग भी दिखाई पड़ेगे। इस पुस्तक-द्वारा मैंने उन दृश्यो तक, उन कल्याण-केन्द्रो तक पहुँचने के रास्तों की ओर सकेत-मात्र किया है। जो सहृदयजन उन रास्तो पर चलेंगे, मुझे पूरा विश्वास है, वे तुलसीदास के सच्चे स्वरूप का दर्शन करके सच्चा आत्म-सुख प्राप्त करेंगे।

तुलसीदास को संसार का बहुत गहरा अनुभव था। यद्यपि मैंने इस पुस्तक मे उनकी बहुज्ञता प्रमाणित करने के लिये उनके बाह्य और अन्तर्जगत् के कुछ रहस्य खोलकर दिखलाने का प्रयत्न किया है, पर उस समय तक मुझे यह ध्यान भी नहीं आया था कि उनकी पहुँच जीव-जन्तु, वनस्पति, गणित, ज्योतिष और सगीत आदि लौकिक विषयों के अतिरिक्त भौतिक विज्ञान मे भी थी।

सोइ जल अनल अनिल सघाता ।
होइ जलद जग जीवन दाता ॥

आदि विज्ञान के साधारण विषय है, जिनसे तुलसीदास-जैसे विज्ञ कवि का परिचित होना असभव नही, और इस साधारण-सी बात के लिये यह कहना कि वे विज्ञान-वेत्ता भी थे, एक विचारवान् लेखक के लिये उपहास की बात भी होती। अत. मैंने उनकी जानकारी के विषयों में विज्ञान का नाम नही दिया था। इस पुस्तक* के समाप्त होते-होते यकायक कवितावली के एक छन्द पर मेरा ध्यान गया और मै यह देखकर आश्चर्य-चकित हो गया कि तुलसीदास अपने समय मे प्रचलित भौतिक विज्ञान की सचाइयों से भी अच्छी तरह परिचित थे।

मैं उनके पीछे-पीछे जहाँ तक पहुँचता हूँ, वहाँ से वे मुझे कुछ दूर और आगे खडे दिखाई पडते है। इस ज्ञान-यात्रा मे थकावट नहीं आती, बल्कि हृदय में उत्तरोत्तर उत्साह उमड़ता ही रहता है। और यह तो स्वीकार कर ही लेना पड़ता है कि हम तुलसीदास को जितना ही अधिक जानते जाते है, उतना ही विश्वास होता जाता है कि अभी बहुत कुछ जानना बाकी है। उनके ज्ञान की परिधि बहुत बड़ी है और उनके अनुभव की गहराई अथाह है। उनका एक-एक कोना देख डालना असभव है, पर उसे देखने के उद्योग मे लगे रहना शिक्षित मनुष्य के जीवन के क्षणों का सबसे सुन्दर सदुपयोग करना है।

कवितावली का वह छन्द यह है।—

जो रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाये।
ते रन रौर कपीस किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाये॥
लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँक हठी हनुमान चलाये।
सूखि गे गात चले नभ जात परे भ्रम बात न भूतल आये॥

अर्थात् जो राक्षस बड़े वीर थे, देखने मे भयकर थे, जिन्हे काल भी नहीं खा सका था, वे महाबली हनुमान के साथ घोर युद्ध मे पडकर फदे मे फॅस गये। हठीले हनुमान ने उन्हें पूँछ मे लपेटकर और आकाश की ओर देखकर ऊपर फेक दिया। उनके शरीर सूख गये, वे आकाश मे चले जा रहे हैं। यहाँ तक कि वे वायु के आवर्त्त मे पड़ गये और फिर पृथ्वी पर नहीं लौटे।

तुलसीदास को आजकल के विज्ञान-शास्त्रियो की बातें कहाँ तक विदित थीं, यह तो अब कोई बता नहीं सकता; पर ऊपर के छन्द मे उन्होंने एक ऐसी अद्‌भुत बात कह दी है, जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि उन्होने जानने योग्य कोई बात, चाहे वह लौकिक हो या पारलौकिक, छोड़ी नहीं थी। आजकल के वैज्ञानिको का यह कथन है कि पृथ्वी के चारोंओर ४५ मील मोटा वायु का आवरण है। उस आवरण के ऊपर चले जाने पर कोई पदार्थ फिर पृथ्वी पर नहीं लौट सकता क्योंकि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति का प्रभाव वहाँ तक बहुत क्षीण पड़ जाता है। और वहाँ पहुँची हुई वस्तु या तो पृथ्वी के चारोंओर चक्कर करने लगती है, या किसी ग्रह के खिचाव मे पड़कर कहो की कहीं हो जाती है।

अब उक्त छन्द के अर्थ पर ध्यान दीजिये। हनुमान ने पूँछ मे लपेटकर राक्षसो को उठाया और आकाश की ओर देखकर, कि कहीं युद्ध देखनेवाले देवताओ के विमान से वे टकरा न जायँ, उन्हे आकाश मे इतने जोर से फेका कि वे वायु-मंडल को पार कर गये और वहीं हवा मे चक्कर काटने लगे, फिर वे पृथ्वी पर नहीं आये। इस वर्णन से यह निश्चय ही जान पड़ता है कि तुलसीदास वायु-मंडल के उक्त रहस्य से परिचित थे।

इसी तरह तुलसीदास के गूढ ज्ञान के और भी कितने ही प्रमाण उनके ग्रंथों से प्राप्त हो सकते हैं। अतः तुलसीदास पर काफी परिश्रम और गंभीर अध्ययन की आवश्यकता है, तभी हम उनके व्यापक स्वरूप को स्पष्टतापूर्वक देख सकेंगे।

मैंने इस पुस्तक के तीनों भागों मे इस बात को विस्तार के साथ लिखा है कि तुलसीदास लोक-कल्याण के लिये नितांत आतुर एक महाकवि थे, भक्ति उनका गौण विषय था। भाषा, छंद, रस और अलंकार आदि विषय उनके उद्देश्य के साधन-मात्र थे, साध्य नहीं। वे विश्व-रूप भगवान के उपासक थे और उनके भगवान की भक्ति का अर्थ लोक-सेवा है, न कि गृहस्थी का त्याग और जनता का भार-स्वरूप होना। इस पुस्तक के तीसरे भाग मे तुलसीदास के इस रूप पर काफी प्रकाश डाला गया है।

मैं स्वयं अपने को एक त्रुटि-युक्त मनुष्य मानता हूँ। मुझे इस बात का बिलकुल अभिमान नहीं है कि मैंने तुलसीदास के बारे मे जितनी खोजे की हैं, वे ही अंतिम हैं। हाँ, यह मैं आगे बढ़कर अवश्य कह सकता हूँ कि मैंने तुलसीदास को जिस रूप मे देखा है, वह रूप हिन्दीवालों के लिये बिलकुल नया है, और मैं उसी को तुलसीदास का सच्चा स्वरूप मानता हूँ, तथा वर्तमान और भविष्य के साहित्यिकों को आह्वान करता हूँ कि वे भी उनके उसी नवीन रूप को देखें, और उसी का प्रचार करें, जिससे तुलसीदास की आत्मा को शान्ति मिले।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग
पौष पूर्णिमा, १९९४

रामनरेश त्रिपाठी

विषय-सूची

*वन का शीर्षक छपना छूट गया है।

तुलसीदास और उनकी कविता

दूसरा भाग

तुलसीदास की भाषा

तुलसीदास का सबसे बड़ा और सबसे अधिक प्रभावशाली काव्य रामचरितमानस है। रामचरितमानस की भाषा मुख्यतः अवधी है। अवधी ही को उन्होंने उसके लिये क्यों चुना? इसका कारण यही हो सकता है कि अवधी उस प्रान्त की बोली है, जिसमें उनके आराध्य देव मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ने अवतार लिया था। उसपर उनका सहज अनुराग होना बिलकुल स्वाभाविक था।

उनके कुछ काव्य ब्रजभाषा में भी हैं। भाषा के विशेषज्ञों का यह कथन है कि उन्होंने न शुद्ध ब्रजभाषा ही का प्रयोग किया है, न शुद्ध अवधी ही का। उनके इस कथन में सत्य का कुछ अंश होने पर भी उसमें तुलसीदास की कोई त्रुटि नहीं पाई जाती; क्योंकि तुलसीदास ने परिमार्जित भाषा का स्वरूप दिखलाने के अभिप्राय से अपने काव्य नहीं लिखे थे।

प्रसंगानुसार उन्होंने संस्कृत तथा अवध और ब्रज के निकटस्थ प्रान्तों में प्रचलित भाषाओं और बोलियों के शब्द, कहावतें और मुहावरे भी ले लिये हैं। हिन्दू-संस्कृति के कट्टर हिमायती होते हुये भी उन्होंने अरबी-फ़ारसी के शब्दों का बहिष्कार नहीं किया था; बल्कि उनको हिन्दी की पोशाक पहनाकर उन्होंने हिन्दू-शब्द-समाज में बराबर का दर्जा दिया है। जैसे।—

रावरे पिनाक में सरीकता कहाँ रही।
(कवितावली)

एही दरबार है गरब ते सरब हानि
लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।
(विनय-पत्रिका)

शरीक और मिसकीन फ़ारसी के शब्द हैं। इनके आगे हिन्दी का 'ता' जोड़कर उन्होंने इन्हें अपना बना लिया है। इतना ही नहीं, उन्होंने उस समय की दरबारी भाषा के महावरे भी ले लिये हैं। जैसे।—

बालिस बासी अवध को बूझिये न खाको।
(विनय-पत्रिका)

'खाक न समझना' उर्दू का महावरा है।

तुलसीदास के शब्द-प्रयोगों से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि जो भाषा आजकल हिन्दी, हिन्दुस्तानी या उर्दू के नाम से प्रचलित है और जिसे खड़ी-बोली भी कहते हैं, वह उनके समय में भी इसी रूप में प्रचलित थी। इस भाषा की भी क्रियायें उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं मिल जाती हैं। जैसे।—

नष्टमति दुष्ट अति कष्टरति खेदगत
दास तुलसी संभु सरन आया।
(विनय-पत्रिका)

करि आई, करि हैं, करती हैं,
तुलसिदास दासनि पर छाहैं।
(गीतावली)

तुलसीदास के समकालीन सम्राट् अकबर भी वर्तमान हिन्दी-भाषा से अभिज्ञ थे। उनके मुख से निकला हुआ एक वाक्य 'गुरुजी चंगा हो' जैन-विद्वान् श्रीहरिविजयसूरि की जीवनी,

'जगद्गुरु-काव्य' में, मिलता है। जब सूरि महोदय अकबर से मिले, तब अकबर ने पूछा।—

चंगा हो गुरुजीतिवाक्यचतुरो,
हस्ते निजं तत्करम्—
कृत्वा सूरिवरान्निनाय सदना-
न्तर्वस्त्ररुद्धाङ्गणे।
तावच्छ्रीगुरवस्तु पादकमलम्
नारोपयन्तस्तदा।
वस्त्राणामुपरीति भूमिपतिना
पृष्टाः किमेतद्गुरो॥

'अकबर ने पूछा—'गुरुजी! चंगे तो हो?' फिर वह उनका हाथ पकड़कर उन्हें महल में ले गया और आँगन में बिछे हुये बिछौने पर बिठाने लगा। पर गुरुवर ने बिछौने पर पदकमल रखने से इन्कार कर दिया। तब अकबर ने बिछौना हटवाकर पूछा—'हे गुरु! यह क्या बात है?'

इस उद्धरण से तो यही मालूम होता है कि तुलसीदास के समय में आजकल की हिन्दी ही राज-दरबार में माध्यम थी। अस्तु;

ऊपर हम लिख आये हैं कि तुलसीदास की भाषा में ब्रज-भाषा और अवधी के अतिरिक्त कई अन्य प्रान्तीय भाषाओं और बोलियों का सम्मिश्रण है। इसके दो कारण जान पड़ते हैं। एक तो यह कि तुलसीदास का जन्म सोरों में हुआ था, जो एक तीर्थ-स्थान है और जहाँ भारत के प्रायः सभी और मुख्यकर पश्चिमी प्रान्तों के तीर्थ-यात्री आया करते थे, इससे उनकी जानकारी और बोल-चाल में उन प्रांतों के बहुत-से शब्द उनके सहज-संगी होगए थे। दूसरे, उन्होंने जान-बूझकर भिन्न प्रांतीय शब्दों को ग्रहण किया था, जिससे वे शब्द तुलसीदास की कविता का छोटे से लेकर

बड़े, और ग्रामीण से लेकर नागरिक तक के हृदयों से सम्बन्ध स्थापित करे और अधिक से अधिक व्यक्ति उससे लाभ उठा सकें। शब्द-जगत् के इस रहस्य को तुलसीदास कितनी सूक्ष्मता से अनुभव करते थे, यह ध्यान देने की बात है।

अब हम तुलसीदास की भाषा पर कुछ विस्तार से विचार करना चाहते हैं।—

व्रजभाषा

व्रजभाषा अब भी मथुरा, आगरा, अलीगढ़ और धौलपुर में अपने विशुद्धरूप में बोली जाती है, और अपने सरहदी जिलों में उनकी निजी बोलियों के साथ गुड़गाँव, भरतपुर, करौली, ग्वालियर, बुलन्दशहर, बदायूँ, नैनीताल की तराई, एटा, मैनपुरी, बरेली, पीलीभीत और इटावा तक फैली हुई है। इसके बोलनेवालों की सख्या ८० लाख के लगभग है।

हिन्दी के विकास के पहले यह हिन्दी-कवियों की पद्य की भाषा थी। कोई कवि, चाहे वह व्रज से सैकडो मील दूर का क्यों न हो, जब कविता लिखता था, तब वह व्रजभाषा ही मे लिखता था। यहाँ तक कि राजपूताना, गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल के कवियों ने भी व्रजभाषा में कवितायें लिखी हैं।

व्रजभाषा के कवियों की कवितायें पढ़-पढ़ कर नये कवि घर-बैठे व्रजभाषा सीख लेते थे। तुलसीदास का तो जन्म ही व्रजभाषा की सरहद पर हुआ था। उनकी तो यह मातृ-भाषा ही थी। अतएव व्रजभाषा में रचना करना उनके लिये बिल्कुल स्वाभाविक था। उन्होंने गीतावली, दोहावली, कवितावली, श्रीकृष्ण-गीतावली और विनय-पत्रिका में व्रजभाषा का काफी प्रयोग किया है।

अवधी

अवधी भाषा लखनऊ, बाराबंकी, फैजाबाद, सुलतानपुर, प्रतापगढ़, रायबरेली, उन्नाव, सीतापुर, खेरी, गोंडा और बहराइच जिलों में अब भी बोली जाती है। सरहदी जिलों में, जैसे जौनपुर, इलाहाबाद, कानपुर और फतहपुर तक इसका प्रसार पाया जाता है। अवधी बोलनेवाले डेढ़ करोड़ के लगभग हैं।

तुलसीदास के रामचरितमानस की प्रमुख भाषा अवधी ही है। अवधी मे रामचरितमानस लिखने की प्रवृत्ति तुलसीदास में इसलिये हुई जान पड़ती है कि राम अवध के थे। जैसे कृष्ण का चरित्र उनके कवियों ने उनके ब्रज की भाषा में लिखा है, वैसे ही तुलसीदास ने राम का चरित्र उनके अवध की भाषा में लिखा।

तुलसीदास के पहले के कुछ कवियो ने भी अवधी में ग्रन्थ-रचना की थी; पर उनमे केवल जायसी की 'पद्मावत' ही प्रसिद्ध हुई। रामचरितमानस-द्वारा अवधी की महिमा अन्य प्रान्तों में भी बहुत व्यापक हो गई, और लोग मानस के स्वाध्याय के लिये अवधी समझने लगे। पर तुलसीदास के बाद और किसी कवि ने इस भाषा में कोई महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ लिखने का साहस नहीं किया। संभवतः तुलसीदास से अधिक सुन्दर कोई लिख ही नहीं सका या किसी ने लिखने की आवश्यकता ही नहीं समझी।

हिन्दी-वर्णमाला के सब वर्णों की ध्वनियो की आवश्यकता अवधी में नहीं पड़ती। जैसे श, ष, ण, ज्ञ, ऋ, और क्ष का काम स, ख, न, ग्य, रि और छ से निकल आता है। तुलसीदास आशा को आसा, विष्णु को बिस्नु, प्राण को प्रान, अज्ञ को अग्य, ऋषि को रिषि और लक्ष्मी को लछमी लिखते थे। जायसी

ने भी पद्मावत में ऐसा ही प्रयोग किया है।

तुलसीदास ने सर्वत्र 'ष' को 'ख' माना है।—

सुरपति सुर धरि वायस वेषा।
सठ चाहत रघुपति बल देखा॥

इससे अनुमान किया जाता है कि ष का उच्चारण वे ख ही करते थे। उपर्युक्त 'वेषा' में उन्होंने 'ष' का उच्चारण 'ख' ही मानने से 'देखा' का तुक ठीक मिलेगा।

वे ब के स्थान पर व लिखकर उसके नीचे बिन्दी लगाते थे। अवधी में अब भी व के नीचे बिन्दी देने का रिवाज है।

'ऐ' के दो रूपों का वे प्रयोग करते थे—ऐ और अइ।—

सैल बिसाल देखि यक आगे।
राम-विमुख सुख जीव न पावइ।

वे 'औ' के भी तीन रूप 'औ', 'अव' और 'अउ' लिखते थे।—

कौतुक कहँ आये पुरवासी।
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।
हतउँ न तोहि अधम अभिमानी।

'ऐ' और 'औ' के ऐसे ही प्रयोग अवधी में अबतक चलित हैं।

तुलसीदास की लिखावट में 'य' के भी दो रूप मिलते हैं—य और ज।—

अमिय मूरि मय चूरन चारू।
कहौं जुगल मुनि वर्ज कर
मिलन सुभग संवाद॥

तुलसीदास व की तरह य के नीचे भी विन्दी लगाते थे।

अवधी मे य और व की दो ध्वनियॉ प्रचलित हैं। तत्सम शब्दो मे तो ये अपने असली रूप मे उच्चरित होते हैं। जैसे, काया और आवश्यक मे, लेकिन तद्भव शब्दो मे ये क्रमशः इ और उ की तरह उच्चरित होते हैं। जैसे, रायसाहब का राइसाहब और राव का राउ। तुलसीदास ने भी अवधी भाषा की इस विशेषता को कायम रक्खा है।—

कौतुक ही कैलास पुनि, लीन्हिसि जाइ उठाइ।

बोले राउ कठिन करि छाती।

पर कहीं-कहीं इसका अपवाद भी पाया जाता है। जैसे।—

धरम धुरंधर धीर धरि, नयन उघारे राय।

इसमे 'राय' का 'राइ' नहीं किया गया।

तीन सौ वर्ष पहले की और आजकल की भाषा मे उच्चारण-भेद होना एक साधारण-सी बात है। ऐसी भाषाये और बोलियाँ, जो सस्कृत की तरह व्याकरण के शिकजे मे कसी नहीं हैं, बराबर अपना रूप बदलती रहती हैं। तुलसीदास के कुछ प्रयोग ऐसे मिलते है, जिनमे कुछ तो अब भी प्रचलित हैं, पर कुछ अन्तर्द्धान हो गये हैं। जैसे।—

तात धरमु मगु तुम्ह सब सोधा।

इसमे अकारान्त धरम और मग को उन्होने उकारान्त करके लिखा है। रामचरितमानस मे ऐसे अकारान्त शब्दों की बहुलता है, जो उकारान्त लिखे गये हैं। अवधी मे अब इस प्रकार का प्रयोग कही मेरे सुनने मे नही आया।

वे सकर्मक क्रिया मे कर्त्ता के साथ 'ने' के स्थान पर अनुस्वार जोड़ते थे। जैसे—

सती हृदय अनुमान किय, सबु जानेउ सरबग्य ।

'सती ने हृदय मे अनुमान किया कि सर्वज्ञ (शिव) ने सब जान लिया ।'

सप्तमी विभक्ति जहाँ जोड़नी होती थी वहाँ भी वे अनुस्वार लगाते थे । जैसे ।—

मइके ससुरे सकल सुख, जबहिँ जहाँ मनु मान ।

'मैके मे और ससुराल में, जब जहाँ मन चाहे ।'

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द को बहुवचन बनाने मे भी वे अनुस्वार लगाते थे । जैसे ।—

संग सखीं सुन्दर चतुर, गाँवहिँ मंगलचार ।

'साथ में सुन्दर चतुर सखियाँ मगल-गीत गा रही थी ।'

चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना ।

इसमें उन्होंने 'बीथी' का बहुबचन अनुस्वार लगाकर 'बीथीं' किया है ।

भूतकालिक क्रिया के बहुवचन को जब सज्ञावाचक क्रिया का रूप देना होता था, तब भी वे अनुस्वार जोड़ते थे। जैसे ।—

'तहँ करि भोग बिसाल, तात गये कछु काल पुनि'

'हे तात ! वहाँ विशाल भोग करके फिर कुछ काल बीत जाने पर' ।

तृतीया विभक्ति को व्यक्त करने के लिये भी वे अनुस्वार लगाते थे । जैसे ।—

बहुरि बंदि खल गन सति भाये ।

'फिर मैं प्रेम से दुष्टो की वन्दना करता हूँ ।' इत्यादि;

भोजपुरी

भोजपुरी बोली युक्तप्रांत मे जौनपुर, गाजीपुर, वलिया, गोरखपुर, वस्ती, आजमगढ़, वनारस और मिर्जापुर और विहार मे शाहावाद, चम्पारन, सारन और छोटा नागपुर तक फैली हुई है। इसके बोलनेवालों की सख्या दो करोड़ के लगभग है। भोजपुरी मे कोई उल्लेख-योग्य साहित्य नहीं है। हाँ, इस बोली के ग्रामगीत वहुत ही सरस और हृदय-स्पर्शी होते हैं।

रामचरितमानस के पहले रचे हुये तुलसीदास के काव्यो मे भोजपुरी शब्द शायद ही कहीं देखने को मिलेंगे। क्योंकि उनकी रचना के समय तक तुलसीदास का आवागमन भोजपुरी प्रान्त मे प्रायः नहीं रहा था। गृह-त्याग के वाद, जव वे काशी मे रहने लगे और जनकपुर आदि की यात्राओ मे गए, तव भोजपुरी के कुछ शब्द उनकी पकड़ मे आये और उन्होंने उनसे काम लिया। पर वहुत कम शब्दो को उन्होंने अपनाया। कुछ भोजपुरी शब्द यहाँ दिये जाते हैं।—

मति (पूर्वी, मतिन)=मानिन्द

धूम समूह निरखि चातक ज्यों
तृषित जानि मति घन की।
(विनय-पत्रिका)

सरल=सड़ा हुआ।
दिहल=दिया

बाँस पुरान साज सब अटखट
सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करम चँद
मंद मोल बिनु डोला रे॥
(विनय-पत्रिका)

रौरे, राउर=आप, आपका।

राम मातु मत जानब रौरे।

राजन राउर नाम जस,
सब अभिमत दातार॥
(अयोध्या-कांड)

बुन्देलखण्डी

बुन्देलखण्डी बोली युक्तप्रांत के झाँसी, जालौन, हमीरपुर से लेकर मध्य-प्रांत के सागर, नृसिंहपुर, सिवनी और हुशंगाबाद तक बोली जाती है। इसके बोलनेवालों की संख्या लगभग ६६ लाख है।

रामचरितमानस में बुन्देलखण्डी शब्द और उनके प्रयोग बहुत हैं। और यही एक तर्क है, जिसका राजापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान मानने पर प्रभाव पड़ता है। पर यह तर्क तो उधर भी चल सकता है कि तुलसीदास की प्रारम्भिक रचनायें ब्रजभाषा में हैं तो ब्रज उनका जन्म-स्थान क्यों नहीं माना जाय? मेरी राय में एक सिद्ध कवि के लिये यह तर्क युक्तिपूर्ण नहीं कि वह अपनी मातृभाषा से भिन्न भाषा में सफलतापूर्वक काव्य न लिख सके। बँगला की सुप्रसिद्ध 'देशेर कथा' नामक पुस्तक एक महाराष्ट्र सज्जन की लिखी हुई थी, जिसे देखकर बंगाली विद्वान् चकित हो गये थे। आजकल अँग्रेजी के कितने ही विद्वान् भारतवासी ऐसी अच्छी अंग्रेजी लिखते हैं कि यदि उसके लेखक का नाम और उसके देश का परिचय न दिया जाय तो कोई कह नहीं सकता कि वह किसी अंग्रेज की लिखी नहीं है। ब्रज, बुन्देलखंड और अवध तो मिले हुये प्रांत हैं। अतएव तुलसीदास जैसे मेधावी व्यक्ति के लिये अपनी मातृभाषा से मिलती-

जुलती किसी भाषा मे पारङ्गतता प्राप्त कर लेना कुछ भी आश्चर्योत्पादक नहीं है।

रामचरितमानस तो बुन्देलखडी शब्दो और प्रयोगो से भरा हुआ है। यहाँ उदाहरण के लिये ही कुछ शब्द, जो अवधी में बिल्कुल नहीं प्रचलित हैं, दिये जाते हैं।—

रेगना=चलना

अस कहि सनमुख फौज रेंगाई।

(लंका-कांड)

सुपेती=हलकी दुलाइयाँ।

सुभ्र सुरभि पय फेन समाना।
कोमल कलित सुपेती नाना।

(उत्तर-कांड)

खेरा (खेड़ा)=गाँव।

दीजै भगति बाँह बैरक ज्यों
सुबस बसै अब खेरो।

(विनय-पत्रिका)

कोपर=परात।

कनक कलस भरि कोपर थारा।

(बाल-कांड)

करवि=करना।

करवि सदा लरिकन्ह पर छोहू।

(बाल-कांड)

बघेली और छत्तीसगढ़ी

बघेली और छत्तीसगढ़ी हिन्दी के भी शब्द रामचरितमानस मे मिलते हैं। बघेली रीवाँ से लेकर जबलपुर और बालाघाट

तक फैली हुई है। इसके बोलनेवालो की सख्या लगभग ४०६ लाख है।

छत्तीसगढ़ी मध्य-प्रात के रायपुर और विलासपुर जिलो से लेकर खैरगढ, कोरिया और सरगुजा आदि राज्यों मे बोली जाती है। इसके बोलनेवालों की संख्या लगभग ३८ लाख है।

राजपूतानी हिन्दी

तुलसीदास की रचनाओ में अवध और ब्रज के सिवा अन्य जिन प्रातो के शब्द अधिक मिलते हैं, उनमे राजपूताना का नाम सबसे प्रथम लिया जायगा। राजपूताने के साधारण शब्द ही नहीं, महावरे भी तुलसीदास की प्राथमिक रचनाओं मे भरे पड़े है।

यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।—

मेली=डाला।

सुता बोलि मेली मुनि चरना।

(बाल-कांड)

जो बिलोकि रीझइ कुँअरि,

तब मेलइ जयमाल ॥

(बाल-कांड)

मेली कंठ सुमन कै माला।

(किष्किधा-कांड)

ल्याये=लाये।

मंगल सकल साजि सब ल्याये।

(बाल-कांड)

पूजना=पूरा होना।

पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे।

(अयोध्या-कांड)

टूट्यो धनुष मनोरथ पूज्यो।

(गीतावली)

पूरना=भरना, हमवार कर देना।

पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला।

(सुन्दर-कांड)

सकसि (मारवाड़ी)=सकेगा।

जौं मम चरन सकसि सठ टारी।

(लंका-कांड)

घालना=डालना।

सो भुजबल राखेहु उर घाली।

(लंका-कांड)

समय सिर=समय पर।

जो घन बरसै समय सिर।

(दोहावली)

खये=कंधा, भुज-मूल।

ठोंकि ठोंकि खये।

(गीतावली)

सरस=बढ़कर।

ब्रह्मानंद उभय दरस सुख लोचननि
अनुभये उभय सरस राम जाने हैं।

(गीतावली)

नारि (नाड़)=गरदन ।

जियत न नाई नारि,
चातक घन तजि दूसरहि ।
(दोहावली)

वारिफेरि=निछावर ।

रोम रोम पर सोम काम सत
वारिफेरि डारे ।
(गीतावली)

सारना=लगाना, करना ।

तिलक सारि अपनाय विभीषण ।
(गीतावली)

दारू=बारूद ।

काल तोपची तुपक महि,
दारू अनय कराल ।
(दोहावली)

म्हाको=मेरा ।

दास तुलसी समय बदति मयनंदिनी
मंदमति कंत सुनु मंत म्हाको ।
(कवितावली)

मनुहार=मनाना, खुशामद करना ।

को सौंप्यो सारंग हारि हिय
करी है बहुत मनुहारी ।
(गीतावली)

माठ = घड़ा ।

स्वामि दसा लखि लखन सखा कपि,
पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के ।
(गीतावली)

इत्यादि

गुजराती

राजपूतानी के बाद गुजराती भाषा के शब्दों की संख्या तुलसीदास की प्रारम्भिक रचनाओं मे अधिक मिलती है । जैसे ।—

मूकना = छोड़ना ।

पालो तेरो टूक को परेहूँ चूक मूकिये न ।
(कवितावली)

मौंगी = चुप ।

सुनि खग कहत अंब मौंगी रहि
समुझि प्रेम-पथ न्यारो ।
(गीतावली)

जून = जीर्ण, पुराना ।

का छति लाभ जून धनु तोरे ।
(बालकांड)

लाधे = पाया ।

काहु न इन समान फल लाधे ।
(बाल-कांड)

इत्यादि,

बँगला

कुछ शब्द बँगला के भी मिलते हैं । जैसे ।—

खटना = निभना, परीक्षा में पूरा उतरना ।

सहज एकाकिन्ह के भवन,
कबहुँ कि नारि खटाहिं।
(बाल-कांड)

पारा = सकता है।

तुम्हहि अछत को बरनै पारा।
(बाल-कांड)

बैसा = बैठा।

मुनि मगु माँझ अचल होइ बैसा।
(अरण्य-कांड)

अंगद दीख दसानन बइसे।
(लंका-कांड)

मराठी

मराठी के भी इने-गिने शब्द मिलते हैं। जैसे।—

पॅवारा = कीर्त्ति; लम्बी कथा।

बीर बड़ो बिरुदैत बली
अजहूँ जग जागत जासु पॅवारो।
(कवितावली)

संस्कृत

तुलसीदास के पूर्ववर्त्ती कृष्णोपासक कवियों ने संस्कृत के तत्सम शब्दो से ब्रजभाषा के साहित्य को खूब मधुर बना दिया था। तुलसीदास ने भी उनका अनुसरण किया। उन्होने अवधी में सस्कृत के सुमधुर शब्दो को भरकर उसकी नीरसता बिल्कुल कम कर दी। जायसी ने ठेठ अवधी मे पद्मावत लिखी थी, पर उसमें वह रस नही है, जो रामचरितमानस में है।

तुलसीदास संस्कृत-साहित्य के पारगत विद्वान् थे। उनकी हिन्दी-कविता मे, ऐसा जान पड़ता है, संस्कृत के शब्द अपना-अपना स्थान स्वय खोजकर आ बैठते थे। कुछ शब्द अपने असली रूप मे आये हैं और कुछ जरा वेष बदलकर। यहाँ ऐसे कुछ शब्द दिये जाते हैं, जो संस्कृत ही मे चलते हैं, अवधी या व्रजभाषा की बोलचाल मे नहीं।

सदसि = सभा मे।

विपुल भूपति सदसि महँ
नरनारि कह्यो प्रभु पाहि।
(विनय-पत्रिका)

नरेषु = नरो मे, मनुष्यो मे।

रूप वरनि न सकत नारद संभु सारद सेषु।
कहै तुलसीदास क्यों मतिमंद सकल नरेसु॥
(गीतावली)

सुमिरामि (स्मरामि) = स्मरण करता हूँ।

अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन
ब्रह्म सुमिरामि नरभूपरूपं।
(विनय-पत्रिका)

सुखेन = सुख से।

जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ।
(अयोध्या-कांड)

इदमित्थं = यह ऐसा ही है।

इदमित्थ कहि जाइ न सोई।
(बाल-कांड)

एतादृस (एतादृश)=ऐसा।

ससुरु एतादृस अवध निवासू।

(अयोध्या-कांड)

जनेषु = जनों मे।

कविहि अगम जिमि ब्रह्मसुख,

अहमम मलिन जनेषु।

(अयोध्या-कांड)

सरेन (शरेण)=बाण से।

मृग लोग कुभोग सरेन हिये।

(उत्तर-कांड)

कोपी (कोऽपि)=कोई भी।

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी।

(अयोध्या कांड)

सोपि (सोऽपि)=वह भी।

सो दासी रघुबीर कै,

समुझे मिथ्या सोपि।

(उत्तर-कांड)

अपि = भी।

ज्ञानवन्त अपि सो नर,

पसु बिनु पूछ बिखान।

(उत्तर-कांड)

तेपि (तेऽपि)=वे भी।

एकन्ह के डर तेपि डराहीं।

(लंका-कांड)

किमपि = कुछ भी ।

का देउँ तोहिं तैलोक महुँ कपि
किमपि नहिं बानी समा ।
(लङ्का-कांड)

अयं = यह ।

आननम तें परद्रोहरत पापौघमव तव तनु अयं ।
(लंका-कांड)

पश्यति = देखते हैं ।

पश्यंति जे जोगी जतनु करि
करत मन गो बस सदा
(अरण्य-कांड)

कहीं-कहीं आवश्यकता न रहने पर भी उन्होंने हिन्दी के साथ संस्कृत शब्द का प्रयोग किया है ।—

उमा रमा ब्रह्मानि बंदिता ।
जगदंबा संततमनिन्दिता ॥
(उत्तर-कांड)

इसमें वे 'सतत अनिन्दिता' पाठ रखते तब भी वही अर्थ होता ।

इसी प्रकार,

रनजीति रिपुदल बंधुजुत
पस्यामि राममनामयं ।
(लंका-कांड)

इसमे 'राममनामयं' को 'राम अनामय' लिखते, तो भी उनकी भाषा-प्रणाली के अनुसार अर्थ समझने में हमें कोई बाधा न

पहुँचती। यद्यपि 'राममनामयं' पाठ संस्कृत-शैली से शुद्ध और सार्थक है, पर हिन्दी के शब्दों के साथ वह बेमेल-सा लगता है।

कहीं-कहीं स्तुति-प्रार्थनाओं के पद्य उन्होंने विशुद्ध संस्कृत में लिखे हैं पर उनमें भी आवश्यकता पड़ने पर, बिना किसी हिचक के, हिन्दी शब्द डाल दिया है।—

अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजापतिम्।

(उत्तर-कांड)

तुलसीदास ने कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे उनके शब्द-निर्माण की निपुणता पर अच्छा प्रकाश पडता है। जैसे।—

तरुजीवी=वृक्ष से जीनेवाला।

पियहि सुमन रस अलि विटप,
काटि कोल फल खात।
जद्यपि तरुजीवी जुगल,
सुमति कुमति के बात॥

(दोहावली)

हिन्दी-कवियों ने संस्कृत के कुछ शब्दों को ऐसे रूप दे दिये हैं, जो केवल पद्य ही में प्रचलित हैं। जैसे; वचन का बैन, मदन का मैन, रात्रि का रैन इत्यादि। पर मेरे देखने में, तुलसीदास को छोडकर हिन्दी के किसी पुराने कवि की कविता में 'वचन' का 'बैन' नहीं आया है। शायद तुलसीदास ही ने पहले-पहल ऐसा प्रयोग किया है।—

संग लिये विधु बैनी वधू,
रति को जेहि रंचक रूप दियो है।

(कवितावली)

यहि मारग आजु किसोर वधू
बिधु बैनी समेत सुभाय सिधाये।
(कवितावली)

नई क्रियायें

शब्दों को आवश्यकतानुसार अपने साँचे मे ढाल लेने मे तुलसीदास बड़े ही सिद्धहस्त थे। उन्होंने बहुत-सी नई क्रियायें भी बना ली थीं। जैसे।—

चोरना = चोरी करना।

अपजस जोग कि जानकी,
मनि चोरी की कान्ह।
(दोहावली)

उपदेसना = समझाना।

सुन्दर गौर सुविप्रवर,
अस उपदेसेउ मोहिँ।
(बाल-कांड)

घटना = लगना; काम आना।

दारुन दोष घटइ अति मोही।
(बाल-कांड)

सो सब भाँति घटिहि सेवकाई।
(अयोध्या-कांड)

भरना = काटना।

नैहर जनमु भरब बरु जाई।
(अयोध्या-कांड)

गमना = परवा करना।

खल अनखैहैं तुम्है सज्जन न गमिहैं।

(कवितावली)

आँचना = गरम होना।

कोप कृसानु गुमान अवाँ घट ज्यों

जिनके मन आँच न आँचे।

(कवितावली)

कमाना = काम करना।

अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं।

(गीतावली)

खलना = खरल मे डालकर घोटना।

रावन सो रसराज सुभटरस

सहित लंक खल खलतो।

(गीतावली)

रागना = राग गाना।

सूत मागध प्रबीन बेनु बीना धुनि द्वारे

गायक सहस राग रागे।

(गीतावली)

दागना = जलाना, जलाकर चिन्ह करना।

बाम बिधि भालहू न कर्म दाग दागे।

(विनय-पत्रिका)

बागना = बोलना।

पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै।

(विनय-पत्रिका)

खँगना=कम होना।

तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै।

(विनय-पत्रिका)

अनुसरना=पीछे चलना।

जातें विपति जाल निसिदिन
दुख तेहि पथ अनुसरिये।

(विनय-पत्रिका)

आदरना=सम्मान करना।

निज अभिमान मोह ईर्षा बस
तिनहिं न आदरिये।

(विनय-पत्रिका)

निस्तरना=पार होना।

जब कब निज करुना सुभाव तें
द्रवहु तो निस्तरिये।

(विनय-पत्रिका)

घटना=काम आना।

काय वचन मन सपनेहु कबहुँक
घटत न काज पराये।

(विनय-पत्रिका)

खटाना=परीक्षा में पूरा उतरना।

द्वंदरहित गतमान ज्ञानरत
विषय विरत खटाइ नाना कस।

(विनय-पत्रिका)

बिस्तरना = फैलना, फैलाना।

दास तुलसी वेदविदित बिरुदावली
बिमल जस नाथ केहि भाँति बिस्तरहुगे।
(विनय-पत्रिका)

पीड़ना = पीड़ा पहुँचाना।

पीड़हिं संतत जीव कहँ,
सो किमि लहहिं समाधि।
(उत्तर-कांड)

निरबहना = निभना।

तुलसी प्रभु जब तब जेहि तेहि बिधि
राम निबाहे निरबहौं।
(विनय-पत्रिका)

टकटोरना = टटोलना, तलाश करना।

मोसे दोस कोस को भुवन कोस दूसरो न
आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं।
(विनय-पत्रिका)

गहँडोरना = मथकर गँदला करना।

दूरि कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपंची
सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहँडोरि हौं।
(विनय-पत्रिका)

हिन्दी-भाषा में अभी तक क्रियाओं की बहुत कमी है। क्रिया बना लेने की अत्यधिक क्षमता अंग्रेजी भाषा में दिखाई पड़ती है। मोटर की उत्पत्ति के साथ ही 'मोटरिंग' और पैट्रोल के साथ 'पैट्रोलिंग' की उत्पत्ति उसमें एक साधारण-सी बात है।

अवधी और ब्रजभाषा में भी क्रियाओं का जन्म आसानी से हो जाता है। पर हिन्दी में यह शक्ति नहीं के बराबर है। हिन्दी में हम भी चाहें तो तुलसीदास की तरह आदरना, चोरना, गमना, उपदेशना, रागना, खॅगना, अनुसरना, बिस्मरना और गॅहडोरना आदि क्रियाओं को ग्रहण करके अपनी भाव-धारा के लिये मार्ग चौड़ा कर सकते हैं।

भाषा की दृष्टि से तुलसीदास परम स्वतंत्र कवि थे। जहाँ उन्होंने जैसी आवश्यकता देखी, वहाँ वैसी क्रिया ढाल ली। व्याकरण, कोष और बोलचाल की परवा वे कम करते थे।

तुलसीदास ने संस्कृत के नियमानुसार हिन्दी-क्रियाओं से भी कर्तृवाचक शब्द बना लिये थे। जैसे।—

लूटना से लूटक।

सूल कटि मुनिपट लूटक पटनि के।

(कवितावली)

काटना से कटाइक।

राम सो न साहिब न कुमति कटाइको।

(कवितावली)

सिधारना से सिधायक।

सोक कूप पुर परिहि मरिहि नृप
सुनि सँदेस रघुनाथ सिधायक।

(गीतावली)

उपजाना से उपजायक।

यह दूसन बिधि तोहिँ होत अब
रामचरन बियोग उपजायक।

(गीतावली)

आना से आयक।

तुलसिदास सुरकाज न साध्यो
तो दोष होय मोहिं महि आयक।
(गीतावली)

साजना या सजाना से साजक।

गई बहोर ओर निरबाहक
साजक बिगरे साजको।
(गीतावली)

इत्यादि;

शब्दों के विविध प्रयोग

तुलसीदास ग्रामीण जीवन से बहुत ही परिचित थे। उन्होंने गाँवों की बोलचाल के ठेठ देहाती शब्दों को भी अपनी कविता में स्थान दिया है। जैसे।—

गढ़ि-गुढ़ि, छोलि-छांलि = गढ़कर और छीलकर।

गढि-गूढि छोलि-छालि
कुन्द की सी भाईं बातें।
(कवितावली)

गढि-गुढि पाहन पूजिये,
गंडकि सिला सुभाय।
(गीतावली)

गाल-गूल = अनाप-शनाप।

हारहिं जनि जनम जाय गाल-गूल गपत।
(विनय-पत्रिका)

फोकट=व्यर्थ

जोरे नये नाते नेह फोकट फीके।

(विनय-पत्रिका)

आउ-बाउ=अट-संट।

जीहहू न जप्यों नाम बक्यो आउ-बाउ मैं।

(विनय-पत्रिका)

अचगरि=शरारत, मूर्खता।

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं।

(बाल-कांड)

बाजा=लगा।

हतहिं कोपि तेहि घाव न बाजा।

(लंका-कांड)

तुक के लिये भी देहाती शब्दों को वे संस्कृत शब्दों की पंक्ति में बैठा दिया करते थे। जिस तरह मनुष्य-जाति में वे जाति-गत छुटाई-बड़ाई के नहीं, बल्कि उपयोगिता के समर्थक थे, उसी तरह शब्द-जाति में भी वे सुसंकृत और गँवारू शब्दों में भेदभाव नहीं रखते थे। जैसे।—

मेरवनि=मिलाना।

सुंदर स्यामल अंग, बसन पीन सुरंग
कटि निषङ्ग परिकर मेरवनि।

(गीतावली)

बनाय=बहुत।

बनइ को तो बाम बिधि कै बनाय हैं।

(गीतावली)

बराय=बचाकर, चुनकर।

सँावरे कुँवर के बराइ के चरन चिन्ह
बधू पग धरति कहा धौं जिय जानि कै।
(गीतावली)

तिर्यहिं बराय बरी।
(गीतावली)

रोगदैया=अन्याय, वेईमानी।

खेलत खात परसपर डहकत
छीनत कहत करत रोगदैया।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

विढ़ता=कमाई।

दै पठयो पहिलो बिढ़तो
ब्रज सादर सिर धरि लीजै।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

तुक ठीक करने के लिये भी वे आवश्यकतानुसार शब्दों को तोड़-मरोड़ लिया करते थे।—

सूखो का सूको।

नाम हरे प्रहलाद विषाद
पिता भय साँसति सागर सूको।
(कवितावली)

चैन का चयन।

सौंपे सुत गहि पानि पाँय परि
भूसुर उर चले उमगि चयन।
(गीतावली)

सुरति का सूरति।

तुलसिदास रघुबीर की सोभा सुमिरि
भई है मगन नहिँ तन की सूरति।
(गीतावली)

व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग

संस्कृत के अच्छे विद्वान् होते हुये भी तुलसीदास ने कुछ ऐसे प्रयोग किये हैं, जो संस्कृत के व्याकरण-शास्त्रियों को खटकते हैं और लोग आशंका कर बैठते हैं कि तुलसीदास को जैसा संस्कृत-साहित्य का ज्ञान था, वैसा संस्कृत-भाषा का नहीं। जबतक तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ रामचरितमानस नहीं मिलता और उसमें पाठ देख नहीं लिया जाता, तबतक उपर्युक्त शंका का समाधान होना असंभव है।

अयोध्या-काड के दूसरे श्लोक में एक 'मम्ले' शब्द आया है, वह संस्कृत के व्याकरणानुसार 'मम्लौ' होना चाहिये।—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।

इसी प्रकार उत्तरकाड के निम्नलिखित श्लोक में 'तोषये' शब्द आया है, जो संस्कृत-व्याकरणानुसार 'तुष्टये' होना चाहिये।—

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्यास्तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

तुलसीदास ने 'प्रश्न' शब्द को प्रायः सर्वत्र स्त्रीलिंग लिखा है।—

प्रस्न उमा के सहज सुहाई।
छल बिहीन सुनि सिव मन भाई।
(बाल-कांड)

प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी।
(उत्तर-कांड)

कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी।
(उत्तर-कांड)

हाल, मनोरथ और सशय शब्दों को उन्होंने स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों लिखा है।—

हाल=

राम बिमुख होइहि अस हाला।
(लंका-कांड)

अंत मेरो हाल हेरि यों न मन रहैगो।
(विनय-पत्रिका)

जोति लिंग कथा सुनि जाको अंत पाये बिनु
आये बिधि हरि हारि सोई हाल भई है।
(गीतावली)

मनोरथ=

होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि।
(बाल-कांड)

मोर मनोरथ जानहु नीके।
(बाल-कांड)

संसय=

अस ससय मन भयउ अपारा।
(बाल-कांड)

तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु संसय टरै न टारी ।
(विनय-पत्रिका)

कहीं-कहीं उन्होंने संस्कृत के ऐसे योग-रूढ़ि शब्दों का प्रयोग किया है जो प्रयोग की दृष्टि से बड़े कौतूहल-जनक हैं, और प्रयोक्ता के विनोदी स्वभाव के परिचायक हैं। जैसे।—

धूम-ध्वज=अग्नि।

दहन इव धूमध्वज वृषभयानं।
(विनय-पत्रिका)

अंजन-केस=दीपक।

अंजन केस सिखा जुवती तहँ
लोचन सलभ पठावौं।
(विनय-पत्रिका)

भुजग-भोग=सूँड़।

भुजग भोग भुजदंड कञ्ज दर
चक्र गदा बनि आई।
(विनय-पत्रिका)

केश (क+ईश)=ब्रह्मा और शिव।

केशवं क्लेशहं केशवंदित पदद्वंद
मंदाकिनी मूलभूतं।
(विनय-पत्रिका)

किरन-केतु=सूर्य।

सत्रुतम तुहिनहर किरनकेतू।
(विनय-पत्रिका)

दसन-बसन=ओंठ।

दसन बसन लाल बिसद हास रसाला।
(गीतावली)

बन-बाहन=नाव ।

पाहन ते बन बाहन काठ को
कोमल है जल खाइ रहा है ।
(कवितावली)

तुलसीदास के पूर्ववर्ती डिंगल-भाषा के चद आदि कवियों में अपनी भाषा को संस्कृत का रूप देने की अद्भुत प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है ।—

चंदबरदाई ।—

गहि पिंड कनक बिमानयं ।
रँग रंग बंदन सानयं ॥
कर करिय जंघति ओपमं ।
रँग फटिक केसरि सोनमं ॥
कटि सोम बर मृगराजयं ।
कहि चंद यों कविराजयं ॥

चंद ने संयुक्ताक्षरों वाले शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रचुर प्रयोग किया है ।—

गजपंति चल्लिय जलद हल्लिय
गरज नग घन भुल्लियं ।
हलहलन घंटन घोर घुंघर
नाग दुम्भर डुल्लियं ।

तुलसीदास ने भी यत्र-तत्र वैसी ही प्रवृत्ति पकड़ ली है ।—

सुनु मात मैं पायउँ अखिल जग
राज आजु न संसयं ।

रन जीति रिपुदल बंधु जुत
पस्यामि राममनामयं।
(लंका-कांड)

कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिँ।
सीस परे महि जय जय बोल्लहिँ॥
(लंका-कांड)

महावरे और कहावतें

तुलसीदास ने अपनी वाणी को मनोरञ्जक महावरों और रसीली कहावतों से ख़ूब सजाया है। उनसे उनके कथन में चमक ही नहीं आई, उनका व्यवहार-कौशल, उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति और प्रयोग-नैपुण्य भी चमक उठा है। तुलसीदास की रचनाओं में आये हुये सब महावरों की सूची देना और उनकी व्याख्या करना एक स्वतंत्र पुस्तक का विषय है। अतएव नमूने के तौर पर महावरों और कहावतों के थोड़े-से उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। स्थाना-भाव से हम वे प्रसंग नहीं दे रहे हैं, जहाँ ये प्रयुक्त हुये हैं; जिनमे पाठकों को तुलसीदास की कला-कुशलता देखकर और भी अधिक आनन्द मिलता। पर जो कुछ हम दे रहे हैं, उनसे इतना पता तो चल ही जायगा कि उन्होंने अपनी भाषा और समाज का कैसा गहरा अध्ययन किया था।

उत्तम कोटि का कवि वही माना जाता है, जो अपनी रचनाओं में महावरों का सुन्दर प्रयोग करता है। हिन्दी-कविता में तुलसीदास और सूरदास ने महावरों का जितना प्रयोग किया है, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं। तुलसीदास की भाषा महावरों से ओत-प्रोत है। पाठक के पास यदि महावरा-ज्ञान की

निजी सम्पत्ति हो, तो वह तुलसीदास के पद-पद में महावरों का सौन्दर्य देखकर अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर सकता है।

महावरे

राज करत बिनु काज ही,
ठटहिँ जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों,
जइहैं बारहबाट॥
(दोहावली)

आँखिन में सखि राखिबे जोग
इन्है किमिकै बनवास दियो है।
(कवितावली)

कमठ कठिन पीठि घठा परयो मंदर को
आयो सोई काम पै करेजो कसकतु है।
(कवितावली)

कहे की न लाज पिय अजहूँ न आये बाज।
(कवितावली)

आरत दीन अनाथन को
रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं।
(कवितावली)

बापुरो विभीषन घरौंधा हुतो बाल को।
(कवितावली)

नाक सँवारत आयों हौ नाकहि।
(कवितावली)

महाराज आजु जौ न देत दादि दीन को।
(कवितावली)

मो से दीन दूबरे को तकिया तिहारियै।

(कवितावली)

तेरी बाँह बसत त्रिलोक लोकपाल सब।

(कवितावली)

नीके नापे-जोखे हैं।

(गीतावली)

सोचत सत्य सनेह बिबस निसि
नृपहि गनत गये तारे।

(गीतावली)

महामद अंध दसकंध न करत कान।

(गीतावली)

जो मूरति सपने न बिलोकत
मुनि महेस मन मारिकै।

(गीतावली)

सो दिन सोने को कहु कब ऐहै।

(गीतावली)

पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि
जेहि बन बिपति बँटाई।

(गीतावली)

तात मरन तिय हरन गीध-बध
भुज दाहिनी गँवाई।

(गीतावली)

तुलसी मैं सब भाँति आपने
कुलहि कालिमा लाई।
(गीतावली)

दसमुख बिवस तिलोक लोकपति
विकल विनाये नाक चना हैं।
(गीतावली)

हाथ मींजिवो हाथ रह्यो।
(गीतावली)

तुलसिदास भजिहौं रघुबीरहिं
अभय निसान बजाइ कै।
(गीतावली)

मुँह लाये मूँड़हि चढ़ी।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

नाहिं न रासरसिक रस चाख्यो
तातें डेल सों डारयो।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

ज्ञान विराग काल कृत करतब
हमरेहि सिर धरिवे हो।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

तुलसी कान्ह विरह नित नव जर
जरि जीवन भरिवे हो।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

ठाली ग्वालि जानि पठयें अलि
कह्यो है पछोरन छूछो।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

तापर तिनकी सेवा सुमिरि
जिय जात जनु सकुचनि गड़ो।
(विनय-पत्रिका)

होइ न बाँको बार भगत को
जो कोउ कोटि उपाय करै।
(विनय-पत्रिका).

विप्र द्रोह जनु बाँट परयो,
हठि सब सों बैर बढावत।
(विनय-पत्रिका)

बड़ी ओट रामनाम की जेहि लई सो बाँचो।
(विनय-पत्रिका)

तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो।
(विनय-पत्रिका)

बालिस बासी अवध को बूझिये न खाको।
(विनय-पत्रिका).

हैं घर घर बहु भरे सुसाहिब
सूझत सबनि आपनो दाउँ।
(विनय-पत्रिका)

एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत लाज अँचई घोरि।
(विनय-पत्रिका)

राम तुमसे सुठि सुहृद साहिबहिं मैं सठ पीठि दई।
(विनय-पत्रिका)

दीनता दारिद दलै को कृपा-बारिधि बाज।
(विनय-पत्रिका).

कोप तेहि कलिकाल कायर
मुएहि घालत घाय।
(विनय-पत्रिका)

अब तुलसी पूतरो बाँधिहै
सहि न जात मो पै परिहास एते।
(विनय-पत्रिका)

तृषावन्त सुरसरि विहाय सठ
फिरि फिरि विकल अकास निचोयो।
(विनय-पत्रिका)

लोक वेद सब साखी, काहू की रती न राखी
रावन की बन्दि लागे अमर मरन।
(विनय-पत्रिका)

तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची
ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं।
(विनय-पत्रिका)

हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
(विनय-पत्रिका)

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो।
(विनय-पत्रिका)

तुलसिदास अपनाइये कीजै न ढील
अब जीवन अवधि अति नेरे।
(विनय-पत्रिका)

सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
(विनय-पत्रिका)

महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे।

(विनय-पत्रिका)

होति विरह सर मगन देखि रघुनाथहि।
फरकि बाम भुज नयन देहिँ जनु हाथहि॥

(जानकी-मंगल)

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा।

(बाल-कांड)

अब न आँखि तर आवत कोऊ।

(बाल-कांड)

गाल करब केहि कर बल पाई।

(अयोध्या-कांड)

हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती।

(अयोध्या-कांड)

मनहु करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ।

(अयोध्या-कांड)

छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता।

(अयोध्या-कांड)

जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई।
आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥

(अयोध्या-कांड)

जीवत पाउँ न पाछे मरही।

(अयोध्या-कांड)

माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू।

(अयोध्या-कांड)

परम प्रेम लोचन न अघाता।

(अरण्य-कांड)

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा।

(लंका-कांड)

सूझ न आपन हाथ पसारा।

(लंका-कांड)

गयेउ तुम्हारेहिं कांछे घाली।

(उत्तर-कांड)

कहावतें

मीठो अरु कठवति भरो,
रौताई औ खेम।

(दोहावली)

पात-पात कौ सींचिबो,
बरी बरी को लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन,
कलि डहके कहु को न।

(दोहावली)

बलवान है स्वान गली अपनी
तोहि लाज न गाल बजावत सौंहौ।

(कवितावली)

तुलसी बनी है राम रावरे बनाये ना तो
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को।

(कवितावली)

मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है।

(कवितावली)

माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो।

(कवितावली)

लैबे को एक न दैबे को दोऊ।

(कवितावली)

खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप है।

(कवितावली)

चीरी को मरन खेल बालकनि कोसो है।

(कवितावली)

हौहूँ रहौं मौन ही बयो सो जानि लुनियै।

(कवितावली)

ठग के से लाड़ू खाये प्रेम मधु छाके हैं।

(गीतावली)

होत हरे होने बिरवनि दल

सुमति कहत अनुमानि हैं।

(गीतावली)

पीना खाइ पोखे हैं।

(गीतावली)

खेत के से धोखे हैं।

(गीतावली)

देखो काल कौतुक पिपीलिकनि पख लागे।

(गीतावली)

भइ कूबर की लात बिधाता राखी बनाइ कै।
(गीतावली)

नाहि न मोहि और कतहूँ कछु
जैसे काग जहाज के।
(गीतावली)

दसमुख तज्यो दूध माखी ज्यो
आपु काढ़ि साढ़ी लई।
(गीतावली)

तुलसिदास बिहरयो अकास सो
कैसे कै जात सियो है।
(गीतावली)

भलो न भूमि पर बादर छीवो।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

धान को गॉव पयार ते जानिय
ज्ञान विषय मन मोरे।
तुलसी अधिक कहे न रहै रस
गूलरि को सो फल फोरे।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

तुलसी त्यों त्यों होइगी गरुई
ज्यों ज्यो कामरि भीजै।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

पूँछ सों प्रेम विरोध सींग सों।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

मैन के दसन कुलिस के मोदक
कहत सुनत बौराई।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

बाँधिवे को भव गयंद रेनु की रजु बटत।
(विनय-पत्रिका)

जो जो कूप खनैगो पर कहँ
सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
(विनय-पत्रिका)

जाको मन जासों बँध्यो ताको सुखदायक सोइ।
(विनय-पत्रिका)

नीच जन मन ऊँच जैसी कोढ़ में की खाज।
(विनय-पत्रिका)

लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय।
(विनय-पत्रिका)

मोहिं तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो।
(विनय-पत्रिका)

तुलसी के अवलंब नाम को एक गाँठि कई फेरे।
(विनय-पत्रिका)

कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं
कियो भौंतुवा भौंर को हौं।
(विनय-पत्रिका)

सेइ साधु गुरु सुनि पुरान स्रुति
बूझ्यो राग बाजी ताँति।
(विनय-पत्रिका)

डासत ही गई बीति निसा सब
कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो।
(विनय-पत्रिका)

सतरज को सो राज काठ को सबै समाज,
महाराज बाजी रची प्रथम न हति।
(विनय-पत्रिका)

दूध को जरयो पियत फूँकि फूँकि मह्यो हौं।
(विनय-पत्रिका)

राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो।
(विनय-पत्रिका)

जानि अन्ध अजन कहै बन-बाघिनि-घी को।
(विनय-पत्रिका)

चीन्हो चोर जिय मारिहै, तुलसी सो कथा
टूटियो बाँह गरे परै, फूटेहू बिलोचन पीर होति।
(विनय-पत्रिका)

इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाही।
जो तरजनी देखि मरि जाही।
(बाल-कांड)

तिन्हहि सुहाइ न अवध बधावा।
चोरहि चाँदिनि राति न भावा।
(अयोध्या-कांड)

दुइ कि होइ एक समय भुआला।
हँसब ठठाइ फुलाउब गाला।
(अयोध्या-कांड)

तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा।
जस काछिय तस चाहिय नाँचा।
(अयोध्या-कांड)

विकल विलोकि सुतहि समुझावति।
मनहु जरे पर लोन लगावति।
(अयोध्या-कांड)

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू।
पाके छत जनु लाग अँगारू।
(अयोध्या-कांड)

मुनिहि सोचु पाहुन बड नेवता।
तसि पूजा चाहिय जस देवता।
(अयोध्या-कांड)

सहसा करि पाछे पछिताहीं।
कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं।
(अयोध्या-कांड)

सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती।
बाजु सुराग कि गाँडर ताँती।
(अयोध्या-कांड)

सकुचउँ तात कहत एक बाता।
अरध तजहि बुध सरबस जाता।
(अयोध्या-कांड)

आरत कहहिं विचारि न काऊ।
सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ।
(अयोध्या-कांड)

हित अनहित पसु पछिउ जाना।
(अयोध्या-कांड)

रहत न आरत के चित चेतू।
(अयोध्या-कांड)

चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी।
(अयोध्या-कांड)

इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।
(सुन्दर-कांड)

तुलसीदास-द्वारा व्यवहृत अरबी-फ़ारसी के शब्द

तुलसीदास ने अपनी रचनाओं मे इतने अधिक अरबी-फारसी के शब्दो का प्रयोग किया है, जितना शायद हिन्दी के किसी पुराने और नये कवि ने नहीं किया है। तुलसीदास जैसे हिन्दू-सस्कृति के प्रबल समर्थक और धार्मिक कवि के लिए यह कम आश्चर्य की बात नही है।

मेरा अनुमान ही नहीं, दृढ विश्वास भी है कि तुलसीदास अपने समय की राज-भाषा फारसी से भी अभिज्ञ थे, और यही कारण है कि उन्होंने अपनी कविता में स्वतन्त्रता-पूर्वक तत्कालीन राजभाषा के शब्दो का व्यवहार किया है। उन्होंने जो यह लिखा है।—

फूलइ फलइ न बेंत,
जदपि सुधा बरसहिं जलद।

यह तो शेखसादी की इन पक्तियों का अक्षरशः अनुवाद ही है।—

अब्र गर आब ज़िंदगी बारद,
हरगिज़ अज़ शाख़ बेद बर न खुरी।

राजभाषा का प्रभाव तुलसीदास ही पर पड़ा हो, यह बात नहीं है, सस्कृत-कवि भी उससे अछूते नही बचे थे। लोलिम्ब-राज ने वैद्यावतस मे 'सुलतान' और 'पादशाह' शब्दो को बड़े गर्व के साथ ग्रहण किया है।—

हुतवहहुतजंघाजानुमासप्रभावा—
दधिगतगिरिजायाः स्तन्यपीयूषपानः।
रचयति चरकादीन् वीक्ष्य वैद्यावतंसं
कविकुलसुलतानो लाललोलिम्बराजः॥

समस्तपृथ्वीपतिपूजनीयो
दिगङ्गनाश्लिष्टयशःशरीरः।
गुणिप्रियं ग्रन्थममुं व्यतानी—
ल्लोलिम्बराजः कविपादशाहः॥

तुलसीदास ने भी सस्कृत-शब्दो की पक्ति मे फारसी शब्द को स्थान दिया है।—

त्रातु सदा नो भव-खग-बाज.

(अरण्य-कांड)

तुलसीदास सगठन के पक्षपाती थे, बहिष्कार के नही। अपने हिन्दू-समाज मे वे जिस प्रकार लोक-सग्रह की आवश्यकता अनुभव करते थे, वैसी ही अपने शब्द-समाज में भी। इस पर हिन्दी-भाषा से अरबी-फारसी या अन्य विदेशी शब्दों के बहिष्कार

के पक्षपाती सज्जनों को विचार करना चाहिये। कवितावली में एक स्थान पर तो उन्होंने कुछ उत्तेजित होकर अपने सम्बन्ध में एक ऐसी बात कह दी है, जो मुख्यतः मुसलमानों के कहने की है।—

मॉगि के खैबो मसीत को सोइबो
लैबे को एक न दैबे को दोऊ।

तुलसीदास शायद ही कभी मसजिद में सोये हों; पर मुसलमान फकीरों की इस कहावत से उनको घृणा नहीं थी, यह तो स्पष्ट ही है।

यहाँ मैं अरबी-फारसी के उन शब्दों की सूची देता हूँ, जिन्हें तुलसीदास को पढते समय मैंने पकड लिया था। इनमें तुलसी-सतसई के शब्द मैंने कम लिये हैं। और सम्भव है, अन्य रचनाओं में आये हुये कुछ और शब्द भी छूट गये हों। बहुत-से शब्द तो ऐसे भी छूट गये होंगे, जिन्हें मैं जानता ही न होऊँगा कि वे अरबी-फारसी के हैं, या हिन्दी के। जैसे, एक 'तराक' शब्द को मैं हिन्दी का देहाती शब्द समझता था, पर फारसी के कोष में देखा, तो वह अरबी का निकला। ऐसे ही और भी होंगे।—

रामचरितमानस

अ० = अरबी; फ़ा० = फ़ारसी।

१ गरीब (ग़रीब—अ०)—नाम गरीब अनेक नेवाजे।
२ नेवाजे (नवाजिश—फा०)— ,,
३ साहिब (साहब—अ०)—लोकहुँ वेद सुसाहिब रीती।
४ गनी (गनी—अ०)—गनी गरीब ग्रामनर नागर।
५ नीकी (नेक—फा०)—कहत नसाइ होइ हिय नीकी।

६ कागद (कागज—फा०)—सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे।
७ जहाना (जहान—फा०)—जे जड चेतन जीव जहाना।
८ तीर (तीर—फा०)—तकि तकि तीर महीस चलावा।
६ सक (शक—फा०)—राम चाप तोरब सक नाही।
१० अँदेसा (अदेशा—फा०)—असमंजस अस मोहिं अँदेसा।
११ नाव (नाव—फा०)—तेल नाव भरि नृप तनु राखा।
१२ लायक (लायक—अ०)—चरन कमल बन्दौं सब लायक।
१३ तलाव (ताल=हि०+आब=फा०)—संगम करहिं तलाव तलाई।
१४ बरात (बरात—फा०)—बर अनुहारि बरात न भाई।
१५ बायन (बैआनह—अ०)—भले भवन अब बायन दीन्हा।
१६ मनसा (मशा—अ०)—मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।
१७ जुवान (जवान—फा०)—बाल जुवान जरठ नर नारी।
१८ पिरोजा (फ़िरोजः—फा०)—मानिक मरकत कुलिस पिरोजा।
१६ निसाना (निशान—फा०)—सजहु बरात बजाइ निसाना।
२० जीन (जीन—फ़ा०)—रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे।
२१ असवार (सवार—फ़ा०)—जुग पद्चर असवार प्रति, जे असि कला प्रबीन।
२२ साज (साज—फा०)—अस्त्र सस्त्र सब साज बनाई।
२३ सहनाई (शहनाई—फा०)—सरस राग बाजहिं सहनाई।
२४ चारा (चार.—फा०)—चारा चाखु बाम दिसि लेई।
२५ बकसीस (बख़्शिश—फा०)—भइ बकसीस जाचकन्हि दीन्हा।
२६ लगाम (लगाम—फा०)—किंकिनि ललाम लगाम ललित।
२७ सिरताज (सरताज—फा०)—जनवासे गवने मुदित, सकल भूप सिरताज।
२८ दाइज (जहेज—फा०)—कहि न जाइ कछु दाइज भूरी।

२६ रुख (रुख—फा०)—लोकप करहिं प्रीति रुख पाये ।
३० बजारू (बाजार—फा०)—कहेउ बनावन बेगि बजारू ।
३१ पोची (पोच—फा०)—चली बिचारि बिबुध मति पोची ।
३२ सजाई (सजा—फा०)—तौ विधि देइहि हमहिं सजाई ।
३३ नेब (नायब—अ०)—भरतु बंदि गृह सेइहहिं
लखन राम के नेब ।
३४ दरबार (दरबार—फा०)—एक प्रबिसहिं एक निर्गमहि,
भीर भूप दरबार ।
३५ नात (नाता—फा०)—होउ नात यह ओर निबाहू ।
३६ बरु (बल्कि—फा०)—प्रान जाहु बरु बचन न जाई ।
३७ कुलह (कुलाह—फा०)—कुमति कुबिहंग कुलह जनु खोली ।
३८ बिदा (विदा—अ०)—बिदा मातु सन आवउ माँगी ।
३९ जहाजू (जहाज—अ०)—मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू ।
४० कबारू (कबार—अ०)—नहिं जानउँ कछु अउर कबारू ।
४१ मजूरी (मजदूरी—फा०)—बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी ।
४२ बागा (बाग—अ०)—करि प्रनाम देखत बन बागा ।
४३ हुनर (अ०)—इन्हकर हुनर न कवनिहुँ ओरा ।
४४ सोरू (शोर—फा०)—भयउ कोलाहल अवध अति,
सुनि नृप राउर सोरु ।
४५ बेहालू (बेहाल—अ०, विह्वल—स०)—जनु बिनु पंख
बिहंग बेहालू ।
४६ गरदनि (गरदन—फा०)—सो जानै जनु गरदनि मारी ।
४७ गुदारा (गुजर—फा०)—भा भिनसारु गुदारा लागा ।
४८ पयादे (प्यादा—फा०)—गवने भरत पयादेहि पाये ।
४९ कोतल (कोतल—फा०)—कोतल जाहिं संग डोरिआए ।
५० खबरि (खबर—अ०)—खबरि लीन्ह सब लोग नहाये ।
५१ सादे (साद—फा०)—भूषन बसन बेष सुठि सादे ।

५२ जोरा (जोर—फा०)—उस साहिब सेवा बरजोरा।
५३ चंग (चग— फा०)—चढी चंग जनु खैंच खिलारु।
५४ कँगूरा (कुगरह—अ०)—कोटि कँगूरन चढ़ि गये,
कोटि कोटि रनधीर।
५५ दाऊँ (दाँव—फा०)—सूझ जुआरिहिं आपन दाऊँ।
५६ बापू (बाबा—फा०)—कुलगुरु सम हित माय न बापू।
५७ सही (सहीह—अ०)—राउरि सपथ सही सिरु सोई।
५८ खुआरू (ख्वार—फा०)—हमहिं सहित सब होत खुआरु।
५६ खाले (खाली—अ०)—चलेहु कुमग पग परेहु न खाले।
६० सर (सरा—फा०)—यहि विधि सर रचि मुनि सरभगा।
६१ बाजः (बाज—फा०)—त्रातु सदा नो भव-खग बाजः।
६२ सहिदानी (शाहिद—फा०)—दीन्हि राम तुम कहँ
सहिदानी।
६३ तम (तमअ—अ०)—मोह मूल बहु सूलप्रद, त्यागहु
तम अभिमान।
६४ ढोल (दुहल—अ०)—बाजहिं ढोल देहिं सब तारी।
६५ बेचारा (बेचारः—फा०)—भयेउ मृदुल चित सिंधु बेचारा।
६६ हाला (हाल—अ०)—राम बयरु होइहि अस हाला।
६७ फौज (फौज—फा०)—कुंभकरन कपि फौज बिडारी।
६८ चौगाना (चौगान—फा०)—खेलिहहिं भालु कीस
चौगाना।
६६ नफीरि (नफीरी—अ०)—बाजहिं ढोल नफीरि अपारा।
७० पायक (पायक—फा०)—जाके हनूमान से पायक।
७१ गरदा (गर्द—फा०)—कोटिन मीजि मिलायसि गरदा।
७२ बन्दी (बन्दी—फा०)—लोकप जाके बंदी खाना।
७३ खाना (खानः—फा०)— ,,

७४ हवाले (हवालः—फा०)—आजु करउँ खल काल हवाले ।
७५ पाले (पल्लः—फा०)—परेउ कठिन रावन के पाले ।
७६ जिनिस (जिन्स—फा०)—बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि
जमात बरनत नहिं बनै ।
७७ जमात (जमाअत—अ०)— „
७८ बजाज (बज्जाज—अ०)—बैठे बजाज सराफ बनिक
अनेक मनहु कुबेर ते ।
७९ सराफ (सर्राफ़—अ०)— „
८० फराक (फराख़— फा०)—दूरि फराक रुचिर सो घाटा ।
८१ खीसा (खीस—फा०)—तुम्हरे दरस जाहिं अघ खीसा ।
८२ गुमान (गुमान—फा०)—ताहि मोहि माया नर,
पाँवर करहिं गुमान ।
८३ मसकरी (मसखरी—फा०)—जो कह झूठ मसकरी जाना ।
८४ दुनी (दुनिया— फा०)—कवि बृंद उदार दुनी न सुनी ।
८५ बदले (बदल—अ०)—काँच किरिचि बदले ते लेहीं ।
८६ गच (फा०)—महि बहु रंग रचित गच काँचा ।
८७ रजाई (रजा— फा०)—मेटि जाइ नहिं राम रजाई ।

गीतावली

१ अबीर (अबीर—अ०)—बीथिन्ह कुंकुम कीच अरगजा
अगर अबीर उड़ाई ।
२ बजार (बाजार—फा०)—सींचि सुगन्ध रचैं चौके गृह
आँगन गली बजार ।
३ डफ (दफ— फा०)—घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ
बेनु डफ तार ।
४ गुलाल (गुलाल—फा०)—कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं
भरहिं गुलाल अबीर ।

५ सहन (सहन—अ०)—रानिन दिये बसन मनि भूषन
राजा सहन भँडार

६ दुनी (दुनिया—अ०)—गान निसान कुलाहल कौतुक
देखत दुनी सिहानी।

७ बलाइ (बला—अ०)—तनु तिल तिल करि वारि राम पर
लैहों रोग बलाइ हौं।

८ गज (गज— फा०)—हिय हरि नख अद्भुत बन्यो
मानो मनसिज मनिगन गंजु॥

९ चौगान (चौगान— फा०)—अनुज सखा सिसु संग लै,
खेलन जैहैं चौगान।

१० निसान (निशान—फा०)—लंका खरभर परैगी
सुरपुर बाजिहैं निसान।

११ तरकसी (तरकश—फा०)—धरे धनु सर कर, कसे
कटि तरकसी।

१२ निहालु (निहाल—फा०)—करत लोक लोचन निहाल।

१३ जरकसी (जरकश— फा०)—सुन्दर बदन
सिर पगिया जरकसी।

१४ सूरति (सूरत—अ०)—मूरति की सूरति कही न परै
तुलसी पै।

१५ बकसत (बख्शिश—फा०)—प्रभु बकसत गज बाजि
बसन मनि।

१६ ताज (ताज— फा०)—भली कही भूपति त्रिभुवन में
को सुकृती सिरताज।

१७ साज (साज—फा०)—तुलसि राम जनमहि तें जनियत
सकल सुकृत को साज।

१८ बिवाके (बेवाक—अ०+फा०)—भे सनेह बिबस
बिदेहता बिबाके हैं।

१९ खसम (खसम—अ०)—राम के प्रसाद गुरु
गौतम खसम भये।

२० रुख (रुख—फ़ा०)—मनहुँ मघा जल उमगि उदधि रुख,
चले नदी नद नारे।

२१ लायक (लायक—अ०)—को सोहिहै और को लायक।

२२ साहब (साहब—अ०)—भली भाँति साहब तुलसी के।

२३ जोर (जोर—फा०)—कंधर बिसाल बाहु बड़े बरजोर हैं।

२४ गरीब (गरीब—अ०)—गरत गरीब गलानि है।

२५ अकस (अकस—अ०)—बदि बोले बिरद
अकस उपजाइ के।

२६ सहमी (सहम—फा०)—सहमी सभा सकल,
जनक भये बिकल।

२७ पोच (पोच—फा०)—सोचत जनक पोच

२८ पेंच (पेचीदन—फा०)— पेच परि गई है।

२९ खासी (खास—अ०)—गति कहे प्रगट
खुनिस खासी खई है।

३० नेवनि (नायब—अ०)—कुलगुरु सचिव निपुन नेवनि।

३१ सजाइ (सज़ा—फा०)—जानि जिय बिधि बाम दीन्हो
मोहिं सरुष सजाइ।

३२ सही (सहीह—फा०)—परन कुटीर करि बसे, बात सही है।

३३ सक (शक—फा०)—बिरह अनल स्वासा समीर निज तनु
जरिबे कहँ न रही कछु सक।

३४ सोर (शोर—फा०)—चली चमू चहुँ ओर सोर।

३५-जहाज (जहाज—अ०)—जैसे काग जहाज के।

३६ सई (सई—अ०)—खग मृग सबर निसाचर सबकी
पूँजी बिनु बाढी सई।

३७ गनी (गनी—अ०)—भये गरब गरि गरि गनी।

३८ मनी (मनी—अ०) होय भलो ऐसे ही अजहुँ
गये रामसरन, परिहरि मनी।

३९ कसम (कसम—अ०)—कसम खाइ तुलसी भनी।

४० सीपर (सिपर—फा०)—लागत साँगि बिभीषन ही पर
सीपर आपु भये है।

४१ कमान (कमान—फा०)—अंगुलितान कमान बान छवि।

४२ गच (गच—फा०)—गच काँच लखि मन नाँच सिखि जनु।

४३ कुलही (कुलह—फा०)—कुलही चित्र विचित्र झँगूली।

४४ आह (आह—फा०)—प्रभु की दसा सो समौ कहिबे की
कवि उर आह न आई।

४५ ढोल (दुह्ल—अ०)—लिये ढोल चले सँग लोग लागि।

४६ जोर (जोर—फा०)—बरजोर दई चहुँ ओर आगि।

४७ लायक (लायक—अ०)—सत्य समीर सुवन सब लायक
कह्यो राम धरि धीर।

४८ सूरति (सूरत—अ०)—मूरति की सूरति कही न
परै तुलसी पै।

कवितावली

१ बाजे बाजे—(बाज-बाज—फा०)—बाजे बाजे बीर बाहु
धुनत समाज के।

२ गुमान (फा०)—जिन्हके गुमान सदा सालिम संग्राम को।

३ सालिम (अ०)— ,, ,,

४ सही (सहीह—अ०)—सही भनी लोमस
भुसुंडि बहुबारिखी।

५ परदा (पर्दः—फा०)—नारद को परदा न नारद सो पारिखो।

६ नग (नगीना—फा०)—राम को रूप निहारति जानकी
कंकन के नग की परछाहीं।

७ सरीकता (शरीक—अ०)—रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही।

८ गरूर (गुरूर—अ०)—कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको ?

९ लायक (लायक—अ०)—लायक हे भृगुनायक सो।

१० रुख (रुख—फा०)—प्रभु रुख पाइके बोलाइ बाल घरनिहि।

११ तहस-नहस (फा०)—तहस नहस कियो साहसी समीर को।

१२ निसान (निशान—फा०)—पाछे लागे बाजत निसान

१३ ढोल (दुहूल—अ०)— ढोल तूर है।

१४ साहब (फा०)—जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो।

१५ असबाब (अ०)—सब असबाब डाढो।

१६ सहन (अ०)—जिय की परी सँभार न सहन भँडार को।

१७ पाइमाल (पायमाल—फा०)—परे पाइमाल जात, भ्रात ! तू निबाहि रे !

१८ बजार (बाजार—फा०)—बीथिका बजार प्रति अटनि अगार प्रति।

१९ ताज (ताज—अ०)—जहाँ बाँको बीर तोसो सूर सिरताज है।

२० सहदानि(शाहिद—फा०)—मातु कृपा कीजै सहदानि दीजै।

२१ बागबान (अ०+फा०)—मारे बागबान, ते पुकारत देवान गे।

२२ देवान (दीवान—फा०)— " "

२३ जहान (फा०)—सकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो।

२४ निवाजिहौ (निवाजिश—फा०)—राज दै नेवाजिहौं बजाइ कै बिभीषनै।

२५ कुलि (कुल—अ०)—पाये जू ! बँधायो सेतु, उतरे कटक कुलि।

२६ फहम (फहम—अ०)—पुलक सरीर सेना करत फहम ही।

२७ सहम (फा०)—तुलसी दुरावै मुख सूखत सहम ही।
२८ रहम (अ०)—सबको भलो है राजा राम के रहम ही।
२९ वाज (वाज—अ०)—लवा ज्यों लुकात तुलसी लपेटे वाज के।
३० वकसीस (वख्शिश—फा०)—वखसीस ईसजू की
३१ खीस (फा०)— खीस होत देखियत।
३२ हाल (अ०)—ऐसिय हाल भई तोहिं धौं।
३३ सोर (शोर—फा०)—सब लङ्क ससङ्कित सोर मचा।
३४ वचा (वचा—फा०)—जग मैं वलशालि है वालि वचा।
३५ करेजो (कलेजा—फा०)—आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है।
३६ वाज (वअज—अ०)—कहे की न लाज, पिय ! अजहूँ न आये वाज।
३७ खलक (खलक़—अ०)—पैयत न छत्री खोज खोजत खलक में।
३८ हलक (हलक—अ०)—समर समर्थ नाथ ! हेरिये हलक में।
३९ जहाज (जहाज—अ०)—साह ते समाज महाराज सो जहाज राज।
४० कहरी (कहर—अ०)—लङ्क से वङ्क महागढ दुर्गम, ढाहिबे दाहिबे को कहरी है।
४१ वहरी (वह्री—अ०)—तीतर तोम तमीचर सेन समीर को सूनु वडो वहरी है।
४२ सुमार (शुमार—फा०)—समर सुमार सूर मारे रघुवीर के।
४३ फौजे (फौज—अ०)—हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की
४४ दील (दिल—फा०)—भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।
४५ सवील (अ०)—कहैं मैं विभीषन की कछु न सबील की।
४६ निहाल (फा०)—तुलसी निहाल कै के दियो सरखतु है।

४७ सरखत (फा०)—　　,,　　,,

४८ हद—(अ०)—कायर कूर कपूतन की हद।

४९ नीके (नेक—फा०)—दूसरो न हेतु एक नीके कै निदानु है।

५० मालुम (मअलूम—अ०)—निज लोक दियो सबरी खग को
कपि थाप्यो सो मालुम है सबही।

५१ गुलाम (अ०)—सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम को।

५२ पील (फा०)—आरत निवारी प्रभु पाहि कहे पील की।

५३ दादि (दाद—फा०)—देव तौ दयानिकेत,
देत दादि दीनन की।

५४ तेजी (तेज—फा०)—तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू।

५५ दुनी (दुनिया—अ०)—तुलसी न दूसरो दयानिधान
दुनी मे।

५६ खास (खास—अ०)—कौने ईस किये कीस भालु खास

५७ माहली (महल—अ०)—
माहली।

५८ काहली (काहिल—अ०)—मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली।

५९ सुलाखि (सूराख—फा०)—और भूप परखि सुलाखि
तौलि ताइ लेत।

६० खसम (खसम—अ०)—लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के।

६१ प्रवाह (परवा—फा०)—परवाह है ताहि कहा नर की।

६२ जान (फा०)—जिय जॉचिये जानकी जानहि रे।

६३ जोर (फा०)—जो जारत जोर जहानहिं रे।

६४ जॅजीर (जजीर—फा०)—जॅजीर जरे मद अंबु चुचाते।

६५ दरिया (फा०)—तजि आस भो दास रघुप्पति को
दसरत्थ को दानि दया दरिया।

६६ रवा (फा०)—राम को किंकर सो तुलसी
समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।

६७ असवार (सवार—फा०)—हौं तो सदा खर को असवार
तिहारोई नाम गयंद चढायो ।

६८ कुन्द (फा०)—गाढि गुढि छोलि छालि कुन्द की सी भाई बातैं ।

६६ खुआर (ख्वार—फा०)—बचन बिकार करतबउ खुआर मन ।

७० साज (साज—फा०)—राग को न साज न बिराग जोग
जाग जिय ।

७१ लालची (फा०)—नाम प्रेम पारस हौं लालची बराट को ।

७२ जवारु (जवाल—अ०)—पेट की कठिन जगजीव को जवारु है ।

७३ किसब
७४ कवारु } (अ०)—जानत न कूर कछु किसब कवारु है ।

७५ बाजी (बाजी—फा०)—तुलसी को बाजी राखी
राम ही के नाम, न तु ।

७६ गरीब (गरीब—अ०)—तुलसी गरीब की गई बहोरि
राम नाम ।

७७ खजानो (खजाना—फा०)—तुलसी को खुलैगो खजानो

७८ दाम (फा०)— खोटे दाम को ।

७६ हराम (अ०)—गिरो हिये हहरि 'हराम हो, हराम हन्यो' ।

८० तमा (तमअ—अ०)—जाप की न तप खप कियो न
तमाइ जोग ।

८१ जाहिर (जाहिर—अ०)—जाहिर जहान में जमानो एक

८२ जमानो (जमाना—फा०)— ,, भाँति भयो ।

८३ उमरि (उम्र—अ०)—उमरि दराज महाराज तेरी चाहिये ।

८४ दराज (फा०)— ,,

८५ बाप (बाबा—फा०)—नाम के प्रताप बाप
आजलौं निबाही नीके ।

८६ सरकस (सरकश—फा०)—काहू की सहत नाहिं,
सरकस हेतु है ।

८७ बैरख (बैरक—अ०)—बैरख बाँह बसाइये पै,
तुलसी घरु ब्याल अजामिल खेरे।

८८ दगा (दगा—अ०)—नाम सो हेत जो देत दगाई।

८९ खलल (अ०)—कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही।

९० खलक (अ०)— „

९१ बाग (बाग़—अ०)—बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत।

९२ अकस (अ०)—एते मान अकस कीबे को आप आहि को।

९३ जोलहा (जुलाहा—फा०)—धूत कहौ, अवधूत कहौ,
रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।

९४ सरनाम (सरनाम—फा०)—तुलसी सरनाम गुलाम है
राम को।

९५ मसीत (मसजिद—अ०)—माँगि के खैबो
मसीत को सोइबो।

९६ साह (शाह—फा०)—साह ही को गोत
गोत होत है गुलाम को।

९७ पोच (फा०)—तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ के।

९८ दगाबाज (दगाबाज—अ०+फा०)—कोऊ कहै करत
कुसाज दगाबाज बड़ो।

९९ खूब (फा०)—कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।

१०० हबूब (अ०)—बानो झूठी साँची कोटि उठत हबूब है।

१०१ जमाती (जमाअत—अ०)—जागैं जोगी जंगम
जती जमाती ध्यान धरें।

१०२ चलाकी (चालाक—फा०)—जोग कथा पठई ब्रज को,
सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।

१०३ हलाका (हलाक—अ०)—ऊधोजू! क्यों न कहैं कुबरी
जो बरी नटनागर हेरि हलाकी।

१०४ दीन (अ०)—जो करता भरता हरता
सुर साहिब साहब दीन दुनी को।
१०५ गरद (गर्द—फा०)—भवन मसान गथ गाँठरी गरद की।
१०६ करामाति (करामात—अ०)—कासी करामाति जोगी
१०७ मरद (मर्द—फा०)— जागत मरद की।
१०८ सहर (शहर—फा०)—बूझिये न ऐसी गति
संकर सहर की।
१०९ जहर (जहर—फा)—बानि जानि सुधा तजि
पियनि जहर की।
११० तमा (अ०)—तुलसी तमाहि ताहि काहु बीर आनकी।
१११ चारो (चारः—फा०)—कियो तो तहाँ तुलसी को न चारो।
११२ हुसियार (होशियार—फा०)—दोष सुनायेते आगेहूँ को
हुसियार ह्वै हैं।
११३ तकिया (फा०)—मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिये।
११४ सजाइ (सजा—फा०)—पैहहि सजाइ न तु
कहत बजाइ तोहि।
११५ इताति (इताअत—अ०)—को है जग जाल
जो न मानत इताति है।
११६ दरबार (फा०)—रहौ दरबार परौ लटि लूलो।
११७ दमानक (फा०)—मोहिं पर दवरि दमानक सी दई है।
११८ तराक (अ०)—मोहबस बैठो तोरि तरक तराक हौं।
११९ पाक (फा०)—अञ्जनीकुमार सोध्यो राम पानि पाक हौं।
१२० कसाई (क़साई—अ०)—कासी कामधेनु कलि कुहत
कसाई है।
१२१ आह (अ०)—कुंभकरन आइ रह्यो पाइ आहसी।
१२२ चाकरी (फा०)—चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख।

१२३ हजारी (हजार—फा)—बिस्वजयी रघुनायक से बिनु
हाथ भए हनि हाथ हजारी।
१२४ खवास (अ०)—खोजि के खवास
१२५ खासो (खासा—अ०)— खासो, कूबरी सी वाल को।
१२६ रजाइ (रजा—अ०)—दीन्ही है रजाइ राम
पाइ सो सहाइ लाल।
१२७ गुदरत (गुजारिश—फा०)—ताको जोर देवे दीन
द्वारे गुदरत हैं।
१२८ सक(शक—फा०)—जानकी जीवन जानत हौं,
हम हैं तुम्हरे, तुम में सक नाही।

वैराग्य-सदीपिनी

१ साहिब (साहब—अ०)—तुलसी रत मन होइ रहे,
अपने साहिब माहिं।
२ सहिदानु (शाहिद—फा०)—संतराज सो जानिये,
तुलसी या सहिदानु।
३ दाग (दाग—फा०)—त्याग को भूषन शान्तिपद,
तुलसी अमल अदाग।
४ जहाज (जहाज—फा०)—सो जन जगत जहाज है,
जाके राग न रोष।

रामाज्ञा-प्रश्न

१ गरूर (ग़ुरूर—अ०)—गए गँवाइ गरूर पति,
धनु मिस हये महेस।
२ साहिब (साहब—अ०)—सेवक पाइ सुसाहिबहि।
३ गरीब (गरीब—अ०)—तुलसी राम कृपालु को,
४ नेवाज (निवाजिश—फा०)— बिरद गरीब नेवाज।

५ विदा (विदा—अ०)—सीय-सोधि कपि भालु सब,
विदा किये कपिनाथ ॥

६ रुष (रुख़—फा०)—सुरुष जानकी जानि कपि
कहे सकल संकेत ।

७ निसान (निशान—फा०)—जय धुनि गान निसान सुर
बरषत सुर तरु फूल ।

८ नीक (नेक—फा०)—राम राज सब काल कहि,
नीक एक ही आँक ।

तुलसी-सतसई

१ मामिला (मुआमलः—अ०)—परवस परे परोस बस
परे मामिला जान ॥

२ हजार (हज़ार—फा०)—बहिगे अपर हजार ।

दोहावली

१ गरीब (गरीब—अ०)—नाम गरीब निवाज को,
राज देत जनि जानि ।

२ निवाज (निवाजिश—फा०)— ,, ,,

३ साहिब (साहब—अ०)—साहिब होत सरोष,
सेवक को अपराध सुनि ।

४ फजीहत (फजीहत—अ०)—अंत फजीहति होहिंगे,
गनिका के से पूत ।

५ वाज (वाज—अ०)—बाजराज के बालकहि,
लवा दिखावत आँखि ।

६ इताति (इताअत—अ०)—निसिवासर ताकहँ भलो,
मानै राम इताति ।

७ जोर (जोर—फा०)—बिन ही ऋतु तरुवर फरत
सिला द्रवति जल जोर।

८ गरज (गरज—अ०)—गरज आपनी सबनि को।

६ दाग (दाग—फा०)—तुलसी जो मृगमन मुरै,
परै प्रेम पट दाग।

१० रुखान (फा०)—सुजन, सुतरु, बन ऊष सम,
खल टंटिका रुखान।

११ रुख (रुख—फा०)—रवि रुख लखि दरपन फटिक,
उगिलत ज्वाला जाल।

१२ दगो (दगा—अ०)—लोक बेद हूँ लौं दगो,
१३ पोच (फा०)— नाम भले को पोच।
१४ दरबार (फा०)—बड़े बिबुध दरबार ते भूमि भूप दरबार।
१५ जहान (फा०)—खल उपकार विकार फल,
तुलसो जान जहान।

१६ गुमान (फा०)—तुलसी जुपै गुमान को, होतो कछू उपाय।
१७ तोपर्ची (तोप—फा०)—काल तोपची तुपक महि।
१८ पलीता (फा०)—पाप पलीता कठिन गुरु,
१६ गोला (फा०)— गोला पुहमीपाल।

२० मवासे (मवास—फा०) मनहुँ मवासे मारि कलि,
राजत सहित समाज।

२१ कुमाच (अ०)—काम जु आवै कामरी, को लै करै कुमाच।
२२ पाही (फा०)—पाही खेती लगनवट,
मन कुब्याज मग खेत।

२३ रैयत (फा०)—रैयत राज समाज घर,
तन, धन, धरम, सुबाहु।

पार्वती-मङ्गल

१ सही (सहीह—अ०)—हिमवान कन्या जोग बर
बाउर बिबुध बंदित सही।

२ सहमे (सहम—फ़ा०)—सुनि सहमे परि पाइँ
कहत भये दम्पति।

३ निसान (निशान—फा०)—चली बरात निसानु
गहागहि बाजहि।

४ सहनाइ (शहनाई—फ़ा०)—करहि सुमङ्गल गान
सुघर सहनाइन्ह।

रामलला-नहछू

१ लायक (लायक़—अ०)—भई निछावरि बहु बिधि
जो जस लायक हो।

२ हजार (हज़ार—फा०)—भरिगे रतन पदारथ सूप हजार हो।

३ निहाल (फा०)—परिजन करहि निहाल असीसत आवइ हो।

४ मौज (अ०)—तापर करहि सु मौज बहुत दुख खोवहि हो।

जानकी-मङ्गल

१ लायक (लायक—अ०)—बधी ताड़का, राम
जानि सब लायक।

२ कमानै (कमान—फा०)—तिलक ललित सर भ्रुकुटी
काम कमानै।

३ रुख (रुख़—फा०)—सुरतरु रुख सुर बेलि पवन जनु फेरइ।

४ ढोल-(दुहूल—अ०)—बाजहिं ढोल निसान
सगुन सुभ पाइन्हि।

५ निसान (निशान—फा०)—परेउ निसानहिँ घाउ
राउ अवधहिँ चले।

श्रीकृष्ण-गीतावली

१ दगा (दगा—अ०)—लव पलकनि हठि दगा दई ।

२ मिलिक (अ०)—यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सों,
मदन मिलिक करि पाई ।

३ वैरख (वैरक—अ०)—वैरख तडित सोहाई ।

४ नकीब (अ०)—बोलत पिक नकीब ।

५ बारिक (बारीक—फ़ा०)—है निर्गुन सारी बारिक वलि
धरी करौ हम जोही ।

६ सही (सहीह—अ०)—बात सही उर आनी ।

७ गरीब (गरीब—अ०)—गई बहोरि ग़रीब निवाजी ।

८ निवाजी (निवाजिश—फा०)— ,,

९ साज (साज—फा०)—सयन कलेस कुसाज सुसाजी ।

१० राजी (फा०)—कृष्ण कृपालु भगति पथ राजी ।

११ सूरति (सूरत—अ०)—सारद अमित शेष नहिं कहि
सकत अंग अँग सूरति ।

१२ चारो (चारः—फा०)—लौ सुनिवो देखिवो बहुत अब
कहा करम सों चारो ।

१३ साहिब (साहब—अ०)—तऊ न होत कान्ह को सो मन
सबै साहिबहि सोहै ।

१४ बकुचा (बुकचः—तुरकी)—राखी सचि कूबरी पीठ पर
ये बातैं बकुचौंहीं ।

१५ चलाकी (चालाक—फा०)—ये अब लही चतुर चेरी पै
चोखी चालि चलाकी ।

बरवै-रामायण

१ कमान (फा०)—भाल तिलक सर सोहत भौंह कमान ।

२ अँदेस (अन्देशा—फा०)—कमठ पीठ धनु सजनी कठिन अँदेस ।

३ नीक (नेक—फा०)—लोक सकल कल्यान, नीक परलोक ।

विनय-पत्रिका

१ लायक (लायक़—अ०)—कृपासिंधु सुन्दर सब लायक ।

२ निवाजिबो (निवाजिश—फा०)—ता ठाकुर को रीझि निवाजिबो।

३ निसानी (निशान—फा०)—जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।

४ जोर (जोर—फा०)—जनरंजन अरिगनगंजन मुख भंजन खल गन बरजोर को ।

५ साहेब (साहब—अ०)—साहेब कहूँ न राम से तोसे न वसीले।

६ वसीले (वसीला—अ०) ,,

७ परदा (फा०)—सेवक को परदा फटै ।

८ सही (सहीह—अ०)—अधिक आपुते आपुनो सुनि मान सही ले ।

९ तकिया (फा०)—तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे ।

१० दरबार (फा०)—प्रीति पहिचानि यह रीति दरबार की ।

११ गुलाम (गुलाम—अ०)—राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।

१२ गरीब (गरीब—अ०)—न्यारो कै गनिबो जहाँ, गने गरीब गुलाम ।

१३ दाग (दाग—फा०)—ब्राम विधि भाल हू न कर्म दाग दागि हैं।

१४ खलल (अ०)—देखि खलल अधिकार प्रभू सों मेरी भूरि भलाई भानि हैं।

१५ दिरमानी (दरमान—अ०)—जस आमय भेषज न कीन्ह
तस दोस कहा दिरमानी।

१६ सरम (शर्म—फा०)—तेहि प्रभु को होहि
जाहि सब ही की सरम।

१७ साज (फा०)—जो साज सब सब को सजै।

१८ दादि (दाद—फा०)—कृपासिंधु ! जन दीन दुवारे
दादि न पावत काहे।

१९ बैरक (अ०)—दीजै भगति बाँह बैरक ज्यों।

२० कबूलत (कुबूल—अ०)—हौं न कबूलत बाँधि कै
मोल करत करेरो॥

२१ जेरो (जेर—फा०)—नाम ओट अब लगि बच्यो
मल जुग जग जेरो।

२२ दाम (फा०)—तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो।

२३ बाजीगर (बाजीगर—फा०)—बाजीगर के सूम ज्यों।

२४ कुल (अ०)—काल करम कुल कारनी।

२५ खाको (खाक—फा०)—बालिस बासी अवध को
बूझिये न खाको।

२६ निहाल (फा०)—जे जे तैं निहाल किये फूले फिरत पाये।

२७ सहमत (सहम—फा०)—व्रत तीरथ तप सुनि सहमत।

२८ कूच (फा०)—सोच न कूच मुकाम को।

२९ मुकाम (अ०)— ,,

३० खरगोसु (खरगोश—फा०)—चहत केहरि जसहिं सेइ
श्रृगाल ज्यों खरगोसु।

३१ मने (मना—अ०)—नरक जमपुर मने।

३२ गनी (गनी—अ०)—निदरि गनी आदर गरीब पर।

३३ जहान (फा०)—देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं।

३४ बेगारि (बेगार—फा०)—नाहीं तो भव बेगारि महँ परिहौ
छूटत अति कठिनाई रे।

३५ बिलद (बलद—फा०)—मंद बिलंद अमेरा दलकन।

३६ दिवान (दीवान—अ०)—केहि दिवान दिन दीन को।

३७ बाज (अ०)—दीनता दारिद दलै को
कृपाबारिधि बाज।

३८ ताज (अ०)—दानि दसरथ राम के तुम बान
इत सिरताज।

३९ सामो (सामान—फा०)—बालमीकि अजामिल के कछु
हुतो न साधन सामो।

४० बाग (अ०)—विषय बबूर बाग मन लायो।

४१ सतरज (शतरज—अ०)—सतरंज को सो राज।

४२ बाजी (फा०)—महाराज बाजी रची प्रथम न हति।

४३ पील (फा०)—पील उद्धरन सीलसिंधु ढील देखियत।

४४ रुख (फा०)—सुरुख सुमुख एक रस एक रूप तोहि।

४५ सहरु (शहर—फा०)—राजा मेरे राजा राम अवध सहरु।

४६ जहरु (जहर—फा०)—सुधा सो भरोसो एहु दूसरो जहरु।

४७ कहरु (कह्र—अ०)—डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु।

४८ दुनी (दुनिया—अ०)—दुनी न दुसह दुख दूषन दरन।

४९ खास (खास—अ०)—साहिब उदास भये दास
५० खीस (फा०)— खास खीस होत।

५१ मिसकीन (मिस्कीन—अ०)—लाभ। जोग छेम को
गरीबी मिसकीनता।

५२ दगाबाजि (दगाबाज—अ०)—सुहृद समाज दगाबाजि ही
५३ सौदा (अ०)— को सौदा सूत।

५४ फहम (अ०)—मोहि कछु फहम न तरनि तमी को।
५५ नीके (नेक—फा०)—रोटी लूगा नीके राखैं।
५६ गरम (फा०)—जूड़ होत थोरे ही थोरे हीं होत गरम।
५७ पोच (फा०)—भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो वाम रे।

तुलसीदास का वाणी-विलास

यद्यपि तुलसीदास ने अवधी मे अपनी रचनाये की; पर संस्कृत-साहित्य से वे जहाँ तक शब्दो और भावो को लेकर अपनी अवधी को मधुर और मनोहर बना सके हैं, उसमे उन्होंने जरा भर भी कसर नही रक्खी है। उन्होंने अपनी भाषा को नाना-प्रकार के अलङ्कारों, हृदयस्पर्शी मुहावरों, भावो पर चमक देनेवाली कहावतो और रस बरसानेवाले शब्दो से ख़ूब सजाया है।

कही हम तुलसीदास में एक विद्वान् और विवेकशील वक्ता की प्रगल्भता पाते हैं, तो कहीं एक शोख़ कवि का-सा वाग्विलास, कही हम उन्हे भक्ति की अगाध धारा में नहाते पाते है, तो कही देवताओं की खिल्ली उड़ाते हुये। उपहास करने मे न उन्होंने विष्णु को छोड़ा, न ब्रह्मा को, न शिव को और न इन्द्र को। देवताओं से तो उन्होंने सारे रामचरितमानस भर मे केवल डुगडुगी बजाने और फूल बरसाने ही का काम लिया है। इससे भी अधिक उनके स्वभाव का सौन्दर्य वहाँ खिल उठता है, जहाँ हम उन्हे अपने पाठको को थोड़ी देर के लिये कौतूहल मे डाल देनेवाले दो अर्थों के शब्दों का प्रयोग करते हुये पाते हैं। जान पड़ता है, ऐसे शब्दों को वे चुन-चुनकर रखे रहते थे, और जहाँ कुछ भाषा-सम्बन्धी चमत्कार दिखलाना चाहते थे, वहाँ उन्हे जड़ देते थे। उनके इस शब्द-कौतुक मे रामचरितमानस के बहुत-से टीकाकार फँस भी गये हैं, यह देखकर और भी कौतूहल होता है।

यहाँ ऐसे कुछ शब्द दिये जाते हैं।—

भरनी—

रामकथा कलि पन्नग भरनी।
पुनि विवेक पावक कहँ अरनी॥

(बाल-कांड)

टीकाकारों ने 'भरनी' का अर्थ 'भरणी' नक्षत्र किया है। और कइयों ने अपनी यह जानकारी भी घोषित कर दी है कि भरणी नक्षत्र में साँप का नाश हो जाता है; यद्यपि कहा यह जाता है कि भरणी ही नक्षत्र में साँप अंडे देता है। पर तुलसीदास ने यह शब्द मोरनी के अर्थ में प्रयुक्त किया है।—

भरणी मयूरपत्नी स्यात्।

(मेदिनी-कोष)

छत्रबन्धु—

छत्रबंधु तैं विप्र बोलाई।
घालै लिए सहित समुदाई॥

(बाल-कांड)

टीकाकारों ने 'छत्रबन्धु' का अर्थ राजा लिखा है, पर इसका अर्थ होता है, महानीच क्षत्रिय। छत्रबन्धु शब्द का प्रयोग तुलसीदास ने निस्सन्देह नीच क्षत्रिय ही के अर्थ में किया था, क्योंकि उस स्थान पर ऐसा ही सम्बोधन उपयुक्त है।

इसी तरह 'विप्रबन्धु' शब्द 'विनय-पत्रिका' में नीच ब्राह्मण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।—

वेदविदित जगविदित अजामिल विप्रबंधु अवधाम।

पनग—

करहिं गान बहु तान तरंगा।
बहु विधि क्रीडहिं पानि पतंगा॥

(बाल-कांड)

इसमे 'पतग' शब्द का अर्थ किसी टीकाकार ने गुलाबी, किसीने सूर्याकार और किसीने चिनगारी किया है और किसीने यही लिखा है कि पतङ्ग (कनकौआ) उड़ाती हुई वे नाच रही थीं। साधारणतः पतङ्ग शब्द उन्हीं अर्थों में व्यवहृत होता भी है; पर तुलसीदास ने यह शब्द गेंद के अर्थ मे प्रयुक्त किया है और सम्भवतः उन्होने इसे भागवत से लिया होगा। भागवत मे कई स्थानो में यह शब्द गेंद के अर्थ में आया है। जैसे—

नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं
भ्रन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम्।
मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतम्
शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः॥
(स्कन्ध ३, अध्याय २०, श्लोक ३६)

लड़ाइके—

सनमानि सकल बरात आदर
दान विनय बड़ाइकै।
प्रमुदित महा मुनिवृन्द बन्दे
पूजि प्रेम लड़ाइकै॥
(बाल-कांड)

टीकाकारो ने इसका अर्थ 'प्रेम और लाड़ से' तथा 'प्रेम के साथ' किया है, पर अवध मे लड़ाना शब्द ढुलकाने के अर्थ म प्रयुक्त होता है। जैसे, पानी लड़ाइ ग। यहाँ भी 'प्रेम को पानी की तरह ढुलका कर' ही अर्थ उपयुक्त होगा।

सोना—

नींदहु बदन सोह सुठि लोना।
मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥
(बाल-कांड)

इसमे 'सरसीरुह सोना' से बहुतों को सुनहले कमल का धोखा होगया है, पर यह सोना संस्कृत के शोण का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है, लाल।

कूट—

कमठ पीठि पवि कूट कठोरा।
नृप समाज महँ सिव धनु तोरा॥

(बाल-कांड)

कूट शब्द प्रायः पर्वत के अर्थ मे आता है, पर यहाँ लौह के अर्थ में आया जान पड़ता है। आपटे ने कूट का अर्थ A hammer; an iron mallet भी किया है।

भूमिनाग—

सो मै कहउँ कवन बिधि बरनी।
भूमिनाग सिर धरइ कि धरनी॥

(बाल-कांड)

भूमिनाग का शाब्दिक अर्थ है—पृथ्वी का साँप। पर कोष मे इसका अर्थ है, केंचुआ। साधारण पाठक को भूमि और नाग शब्दों के अन्दर से केंचुआ निकालना बहुत कठिन होगा।

चाकी—

चितवनि चारु भौंह बर बाँकी।
तिलक रेख सोभा जनु चाकी॥

(बाल-कांड)

टीकाकारों ने चाकी शब्द के अनेक अर्थ किये हैं। किसीने चक्राकार लिखा है, किसीने चाकना, गोंठना, घेरा देना इत्यादि। तुलसीदास ने इसका प्रयोग गोंठने के अर्थ मे भी किया है।—

तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा
सकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो ॥
(कवितावली)

पर अवध में चाकी बिजली को कहते हैं। बिजली से तिलक की उपमा ठीक भी जान पड़ती है।

घृनी—

सब निरदम्भ धर्मरत घृनी।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
(उत्तर-कांड)

घृनी शब्द घृणा से सम्बन्ध रखता है, पर यहाँ अन्य अच्छे विशेषणों के बीच में घृनी शब्द घृणा-सूचक के रूप में नहीं बैठ सकता। इससे टीकाकारों ने अनेक जटिल कल्पनाएँ करके घृनी को अघृणी बनाने की उपहासास्पद चेष्टा की है। पर घृणी शब्द घृणा का वंशज होने पर भी अच्छा अर्थ रखता है। जैसे—

घृणि=प्रकाश प्रकाश की किरण लहर। (दे० आप्टे की डिक्शनरी)

किन—

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ
परसि मुनि पतिनी तरी।
नखनिर्गता मुनिबंदिता
त्रैलोक पावनि सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कञ्ज जुत
बन फिरत कंटक किन लहे।
पदकंज द्वंद मुकुन्द राम-
रमेस नित्य भजामहे॥
(उत्तर-कांड)

इसके तीसरे चरण में एक 'किन' शब्द आया है। उसने रामचरितमानस के कितने ही टीकाकारों को खूब छकाया है। कइयों ने इसका अर्थ 'किनने,' 'किन्होंने' या 'क्यों न' किया है, पर यह संस्कृत के 'किण' शब्द का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है, घट्ठा।

संस्कृत में इस शब्द का प्रयोग कई स्थानों में मिलता है। आलमन्दार-स्तोत्र और गीत-गोविन्द के श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।—

आलमन्दार-स्तोत्र—

शरासनज्याकिणकर्कशैः शुभैः
चतुर्भिराजानुविलम्बिभिर्भुजैः।
प्रियावतंसोत्पलकर्णभूषणैः
श्लथालकाबन्धविमर्दशंसिभिः॥

गीत-गोविन्द—

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे।
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे।
केशव, धृतकच्छपरूप, जय जगदीश हरे!

चलि—

सीतल सुरभि पवन बह मन्दा।
गुञ्जत अलि लइ चलि मकरन्दा॥

(उत्तर-कांड)

इसमें 'चलि' शब्द ऐसे स्थान पर रख दिया गया है, जहाँ वह क्रिया-सा जान पड़ता है। पर यह अर्थ करने पर कि भौंरे मकरन्द लेकर गूँजते हुये चले जा रहे थे, यह शङ्का होती है, कि कवि को क्या पता कि भौंरा खाली मुँह जा रहा है, या मुँह

मे मकरन्द भरकर ? भौरे का तो केवल गुञ्जन ही कवि का विषय है। यहाँ पर 'चलि मकरन्दा' का अर्थ होगा, मकरन्द से लिपा हुआ। भौरे के शरीर पर पुष्प-रस चुपड़ा हुआ है, वह लय से गुञ्जार कर रहा है।

श्रीमद्भागवत् मे भी यह शब्द इसी अर्थ मे व्यवहृत हुआ है।—

चलत्पद्मरजः पयः। (स्कंध ८, अ० २, श्लोक १७)

चरम—

चरम देह द्विजकर मैं पाई।
सुर दुरलभ पुरान स्तुति गाई॥
(उत्तर-कांड)

जो लोग सस्कृत के 'चरम' शब्द का अर्थ नहीं जानते, वे तो 'चमड़े की देह' ही समझेंगे। संस्कृत मे 'चरम' शब्द 'अन्तिम' का बोधक है।

आप—

आपन छोड़ो साथ जब,
तादिन हितू न कोइ।
तुलसी अम्बुज अम्बु बिन,
तरनि तासु रिपु होइ॥

यहाँ 'आपन' शब्द के दो अर्थ हैं, अपने लोग और जल।

कन्द—

यज्ञोपवीत विचित्र हेममय
मुक्तामाल उरसि मोहिँ भाई।

कंद-तड़ित विच जनु सुरपति धनु
रुचिर बलाक पाँति चलि आई ॥
(गीतावली)

'कद' का प्रचलित अर्थ मूल या जड़ है, पर यहाँ 'बादल' है। कद के बदले जलद या मेघ से काम चल सकता था, पर इससे कवि के विनोद की पूर्त्ति न होती।

नर-नारि—

विपुल भूपति सदसि महँ
नर नारि कह्यो 'प्रभु पाहि'।
(विनय-पत्रिका)

साधारणतः नर-नारि का लोक-प्रचलित अर्थ स्त्री-पुरुष है। पर यहाँ 'नर' से तुलसीदास का अभिप्राय 'अर्जुन' से है। अर्जुन और श्रीकृष्ण 'नर' और 'नारायण' कहे जाते हैं। अतएव 'नर-नारि' का अर्थ हुआ, द्रौपदी।

यह शब्द केवल साहित्यिक विनोद के लिये ही यहाँ रख दिया गया है। 'कवितावली' में भी एक स्थान पर यह शब्द इसी अर्थ मे आया है।—

नर नारि उघारि सभा महँ होत
दियो पट सोच हर्‌यो मन को।
(कवितावली)

केश—

केशवं क्लेशहं केशवंदित पद द्वंद
मंदाकिनी मूलभूतं।
(विनय-पत्रिका)

केश का साधारण अर्थ बाल है, पर यहाँ विनोद-प्रिय तुलसीदास ने उसे क+ईश=ब्रह्मा और शिव के अर्थ मे लिया है।

सकल—

जहँ सुख सकल सकल दुख नाही।

(रामचरितमानस)

संस्कृत मे सकल का अर्थ होता है, सम्पूर्ण और शकल का अर्थ होता है, खंड, जरा-सा। अर्थ हुआ—जहाँ सर्व सुख है, पर दुःख कुछ भी नहीं है।

सरल—

बाँम पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे।

(विनय-पत्रिका)

इसमे 'सरल' शब्द बड़ा ही मनोरंजक है। सरल का साधारण अर्थ है, सीधा। पर तिकोने का विशेषण सरल कैसे होगा? या तो यह संस्कृत का 'शरल' शब्द है, जिसका अर्थ है, टेढा। (दे० आपटे की डिक्शनरी) या यह काशी की घरेलू बोली का शब्द है, जिसका अर्थ है, सड़ा हुआ।

भूँजब—

राज कि भूँजब भरत पुर,
नृप कि जिअहिं बिनु राम।

(अयोध्या-कांड)

'भूँजब' शब्द जान-बूझकर पाठकों के साथ विनोद करने के लिये ही यहाँ बैठाया गया है। साधारण बोलचाल मे इसका

अर्थ है, भूनना, जलाना। पर यह संस्कृत के 'भुज्' धातु का शब्द है, और इसका अर्थ है, भोग करना।

बाहेर—

लोक बेद बाहेर सब भाँती।

(अयोध्या-कांड)

बाहर अर्बी भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ है, प्रकट, जाहिर, रोशन आदि। तुलसीदास ने इसका इसी अर्थ में यहाँ प्रयोग किया है। बाहर का अर्थ यदि बहिष्कृत लगायें तो ठीक नहीं। क्योंकि केवट वेद के बाहर हो सकता है, लोक के बाहर वह नहीं था।

जान—

जग जाँचिये कोउ न, जाँचिये जो

जिय जाँचिये जानकी जानहि रे।

(कवितावली)

जान शब्द फारसी का है, जिसका अर्थ है, प्राण। पर फारसी और उर्दू-कविता में यह प्रेमिक या माशूक के लिये भी आता है। संस्कृत में 'जानि' शब्द 'जाया' से बनता है। यहाँ अर्थ हुआ 'जानकी जाया है जिसकी'। तुलसीदास ने इस शब्द को दोनों भाषाओं के अर्थों को ध्यान में रखकर यहाँ रखा है।

लेखा—

सब कोउ राम प्रेममय पेखा।

भये अलेख सोच बस लेखा॥

(अयोध्या-कांड)

संस्कृत में लेखा शब्द का देवता अर्थ होता है। 'लेखा' के लिये 'अलेख' शब्द रखकर तुलसीदास ने 'लेखा' को अधिक चमत्कृत कर दिया है।

स्वान, मघवान, जुवानू—

लखि हिअँ हँसि कह कृपानिधानू।
सरिस स्वान मघवान जुवानू॥

पाणिनि का एक सूत्र है—श्वयुवमघोनामतद्धिते। अर्थात् श्व (कुत्ता), युवा और मघवा (इन्द्र) इन तीनों शब्दों के तद्धित-भिन्न मे समान रूप होते हैं।

इन्द्र का तिरस्कार करना था। उसके लिये तुलसीदास ने यहाँ पाणिनि के उक्त सूत्र का सुंदर-सा उपयोग कर लिया है। यद्यपि पाणिनि ने इन्द्र को श्व (कुत्ते) की श्रेणी में रखने के इरादे से उक्त सूत्र नहीं लिखा था, पर तुलसीदास ने पाणिनि ही के मुख से इन्द्र का तिरस्कार कराके अपने रचना-चातुर्य का सुन्दर प्रदर्शन कर दिया है।

दिनचारी—

यह सपना मैं कहउँ पुकारी।
होइहिं सत्य गये दिन चारी॥
(सुन्दर-कांड)

दिनचारी शब्द यहाँ दो अर्थों को लेकर बैठा है।—चार दिन और वानर (हनुमान)। अर्थात् यह स्वप्न दो ही चार दिन बीतने पर सत्य होगा। बानर रात मे नहीं देखते, इससे उन्हे 'दिनचारी' कहा गया है।

'सोन, सोने—

संग सुतिय जाके तनु तें लही है
दुति सोन सरोरुह सोने।
(गीतावली)

इसमे 'सोन' का अर्थ है, शोण, लाल, और सोने का अर्थ है, सुवर्ण। सोन और सोने को इतना निकट रखकर कवि ने इस वाक्य मे सोने मे सुगध उत्पन्न कर दिया है।

मति—

धूम समूह निरखि चातक ज्यों
तृषित जानि मति घन को।
(विनय-पत्रिका)

धूम, समूह और तृषित आदि सस्कृत शब्दों के बीच में मति शब्द अपने सस्कृत अर्थ का भ्रम उत्पन्न करता है। और सभवतः इसी चोज के लिये इसे यहाँ स्थान दिया भी गया है। पर यह पूरबी हिन्दी के शब्द 'मतिन' का सक्षिप्त रूप है, जिसका अर्थ होता है, सदृश, समान या तुल्य।

बनी—

जनक बाम दिसि सोह सुनयना।
हिमगिरि संग बनी जनु मयना॥
(बाल-कांड)

टीकाकारो ने इस चौपाई मे आये हुये 'बनी' शब्द पर ध्यान नहीं दिया। यह अचानक यहाँ नहीं आ पड़ा है, बल्कि इसको यहाँ बैठाने में तुलसीदास की लालित्य-प्रियता कारण हुई है। 'बनी' का अर्थ हिन्दी मे 'बनी हुई' और 'सुशोभित' होता है, पर राजपूताने में दूल्हे को 'बना' और दुलहिन को

'बनी' कहते हैं। अवश्य ही यहाँ यह दुलहिन के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

इस प्रकार यहाँ तुलसीदास के वाणी-विलास के थोड़े-से नमूने दिये गये हैं। इनमें पाठकों या श्रोताओं में कौतूहल उत्पन्न करनेवाली उनकी मनोवृत्ति की झलक दिखाई पड़ती है। तुलसीदास की तो सारी कविता इस प्रकार के शब्द-सौन्दर्य से जगमगा रही है। ध्यान देकर पढ़ने से सर्वत्र ऐसे विनोद-वर्द्धक शब्द मिल सकते हैं।

तुलसीदास का बहिर्जगत्

कवि दो जगतों का अधिपति होता है—बहिर्जगत् और अन्तर्जगत् का। उसका बहिर्जगत् जितना ही अधिक विस्तार-वाला होता है, उतना ही उसका अन्तर्जगत् विशाल और कल्पना-मय होता है।

कवि के बहिर्जगत् का अनुभूत ज्ञान ही उसके अंतर्जगत् का मूल आधार है। चाहे अध्ययन से, चाहे देख-सुनकर, वह बहिर्जगत् का जो ज्ञान सम्पादन करता है, वही अंतर्जगत् में विकसित होकर अनेक कल्पनाओं का नीड़ बन जाता है।

जो कवि बहिर्जगत को सूक्ष्म-भेदक दृष्टि से नहीं देखता, वह अच्छा कवि नहीं हो सकता। स्वाभाविकता कविता का प्राण है, वह बहिर्जगत् का सूक्ष्म-निरीक्षण किये बिना सिद्ध नही हो सकती। जिस व्यक्ति ने कभी किसी से प्रेम नहीं किया, जिसने विरह की आँच नहीं सही, वह प्रेम और विरह की बाते यदि सरसता से वर्णन करता है तो कहना होगा कि वह अन्य अनुभवी व्यक्तियो का जमा किया हुआ धन लेकर बाँट रहा है। उसमें उसकी निजी सपत्ति कुछ भी नहीं है।

ग्रन्थों के अध्ययन और मौखिक कथाओ के श्रवण और तर्क-वितर्क से कवि को इस प्रकार का धन प्रचुरता से प्राप्त होता रहता है। अन्तर्जगत् की कोई कल्पना बहिर्जगत् की सीमा को अतिक्रम नहीं कर सकती। ब्रह्म-सुख आदि कुछ अनुभूतियाँ अवश्य अन्तर्जगत् की निजी संपत्ति हैं, पर उनका वर्णन उतना ही किया जा सकता है, जितना बहिर्जगत् के शब्द-समूह होने

देंगे। अतएव कल्पना का आधार हर हालत में किसी न किसी की अनुभूति ही है, जो शब्दों के रूप में कभी न कभी मूर्त हो चुकी है। इसलिये अन्तर्जगत् के विकास के लिये बहिर्जगत् का सूक्ष्म-निरीक्षण कवि के लिये परमावश्यक है।

संस्कृत कवियों में कालिदास को हम बहिर्जगत् के विस्तृत ज्ञान से ओत-प्रोत पाते हैं। इसके प्रमाण हम उनके सूर्योदय, चंद्रोदय, ऋतु, पर्वत, वन, उपवन, सरोवर, सरिता, आश्रम, नगर, संग्राम, राज्य, समाज, यात्रा और विवाह आदि के वर्णनों में प्रचुरता से पाते हैं। अपने नाटकों और काव्यों में उन्होंने नगरों और नगर-निवासियों की ऐसी-ऐसी साधारण बातों का उल्लेख किया है, जिन्हें साधारण-जन नगण्य समझते हैं। मेघदूत में ऐसे कौतूहल-वर्द्धक वर्णन बहुत हैं। यहाँ उनके कुछ उदाहरण अवश्य रुचिकर होंगे।—

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ता
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः॥

यक्ष मेघ को कहता है।—

हे मेघ! तुम्हारे पहुँचने से दशार्ण देश बहुत रमणीय हो जायगा। वहाँ के उपवनों के अधखिले केवड़ों के पत्तों की बाड़ें पाण्डुरंग की हो जायँगी। गाँव के निकटवर्ती मार्ग के वृक्ष पक्षियों के घोंसलों से भर जायँगे। फलों के पक जाने से जामुनों का वन श्याम-वर्ण का हो जायगा और हंस भी कुछ दिनों के लिये रुक जायँगे।

सिद्ध कवि ने वर्षाकाल में दशार्ण देश में होनेवाली कितनी

ही घटनाये एक साँस मे कह दी। इससे पता चलता है कि कवि की दृष्टि बहिर्जगत मे कहाँ कहाँ का रस पान कर चुकी थी।

और देखिये।—

तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।

'हे मेघ! बारम्बार विलास करने से थकी हुई अपनी प्यारी बिजली के साथ वहाँ (उज्जयिनी मे) किसी महल की छत पर, जिस पर कबूतर सोये हो, रात्रि बिताकर'—

यहाँ कवि उज्जयिनी मे छत पर सोये हुये कबूतरो को नही भूला, जिनके कारण रात्रि की गभीर निस्तब्धता प्रमाणित होती है।

तुलसीदास की दृष्टि भी कालिदास से कम व्यापक नही थी। बल्कि यदि कोई जोड़कर बताये तो तुलसीदास के देखे हुये दृश्यों की सख्या कालिदास से अधिक निकलेगी। इस पर भी तुलसीदास मे हम एक विशेषता और पायेंगे। वे जो कुछ देखते हैं, उसमे से जीवन के लिये एक कल्याणकारी भाव निकालने की चेष्टा करते हैं, और उसे सुन्दर से सुन्दर छन्दो के पिटारों में भरकर हमारे लिये उन्होंने सुरक्षित रख भी दिया है।

यहाँ हम कुछ ऐसे उदाहरण देना चाहते हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि तुलसीदास अपने बाह्य जगत् को कैसी सतर्कता और सजगता से देखते थे, और उससे क्या लाभ लेते थे।—

हम लोग गाँवों के आस-पास पानी के गड्ढे प्रायः देखते रहते हैं। उनमें जल सूख जाने पर जो कीचड़ रह जाता है, वह भी जब सूख जाता है, तब उसमे दरारे पड़ जाती हैं। यह इतनी साधारण-सी-प्राकृतिक घटना है कि हम उससे अपने जीवन का

कोई सम्बन्ध अनुभव नही करते। पर तुलसीदास ने उसमे से जो रहस्य निकालकर हमें दिखाया है, उससे एक अत्यन्त तुच्छ कीचड़ का मोल सुवर्ण से भी अधिक हो गया है।—

राम को बन मे छोड़कर जब सुमन्त लौटे हैं, उस समय की उनकी मनोवेदना के साथ तुलसीदास ने कीचड़ की अन्तर्पीड़ा जोड़ दी है।—

हृदय न बिदरेउ पंक जिमि,
बिछुरत प्रियतम नीर।
(अयोध्या-कांड)

'प्रियतम जल के बिछुड़ने से जैसे कीचड़ का हृदय फट गया, वैसा मेरा नही फटा।'

अहो! कीचड़ ने सच्चे प्रेम और सच्ची मैत्री का कैसा सुन्दर रूप दिखलाया है! इसे पढ़कर तो भर्तृहरि का यह श्लोक फीका लगता है।—

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिला.
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवत् दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी॥

अब आगे आइये।—

हम लोग प्रारम्भिक पाठशालाओं में गिनती और पहाड़े पढते हैं। तुलसीदास ने कभी किसी पाठशाला मे पैर रक्खा था, या नहीं, यह हमें नहीं मालूम। पर नौ के पहाड़े मे उन्होंने जो एक नई बात खोज निकाली, वह अब पुरानी हो जाने पर भी हमारे लिये तो नई ही है और जबतक वह पहाड़ा रहेगा, तबतक नई ही रहेगी।

नौ के पहाड़े को हम चाहे जिस अङ्क से गुणा करें, उसके गुणनफल के अंकों का जोड़ नौ ही होगा। इस रहस्य को तुलसीदास ने समझकर, उसे एक अच्छे उपदेश के साथ, हमारे लिये एक दोहे में बन्द करके रख दिया है।—

तुलसी राम सनेह करु,
त्यागि सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नौ,
नौ के लिखत पहार॥

(दोहावली)

भावार्थ यह कि, जैसे नौ का अङ्क चाहे जिस दशा में हो, सब में उसका निजत्व कायम रहता है। उसी तरह मनुष्य को भी सुख-दुःख, लाभ-हानि, अधिकार और दासता इत्यादि सब दशाओं में अपना राम-स्नेह स्थिर रखना चाहिये।

अथवा इसे ऐसा समझिये कि नौ नाम का एक मनुष्य है। वह संसार में प्रवेश करता है। वह संसार के आघात-प्रतिघात में पड़कर १८ हुआ, तो उसकी दैवी सम्पत्ति १ थी और आसुरी सम्पत्ति ८। उसने अपने आत्म-सुधार का प्रयत्न किया। २७ तक पहुँचने पर उसकी दैवी सम्पत्ति में एक की वृद्धि हुई और आसुरी सम्पत्ति में एक का ह्रास। उसका प्रयत्न जारी रहा और उसकी इच्छित दैवी सम्पत्ति एक-एक करके बढ़ती रही। उसी प्रकार क्रम से आसुरी सम्पत्ति घटती रही। अन्त में ९० तक पहुँचते-पहुँचते वह कल्मष-हीन होगया। सोचिये, ९ के अङ्क की कैसी महिमा है! यह तो प्रत्येक मनुष्य के लिये उसके जीवन का एक पथ-प्रदर्शक-सा है।

अब आगे आइये।—

तुलसीदास ने कभी लड़कों को ढेले से आम झोरते देखा

होगा। इस साधारण-सी बात को लेकर भी उन्होंने हमें आम से भी अधिक सरस और मधुर पदार्थ दे दिया है।—

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु,
फूलि फरहिं पर हेत।
इत ते ये पाहन हनत,
उत ते वे फल देत॥
(दोहावली)

और आगे चलिये।—

कच्चे पोखरों और ताल-तलैयों के किनारे-किनारे प्रायः घास जम जाती है। वह हमेशा तर रहती है, इससे निर्बल बनी रहती है। उसके एक तरफ पानी होने से जानवर उसे चर नहीं सकते। इससे वह बेकार ही-सी पड़ी रहती है। तुलसीदास ने कभी उसे देखा होगा। देखिये, उस दीन-हीन घास को उन्होंने कितना बड़ा महत्त्व का पद दिया है।—

तुलसी तृन जल-कूल को,
निरबल निपट निकाज।
कै राखै कै सँग चलै,
बाँह गहे की लाज॥
(दोहावली)

भावार्थ यह कि जल के किनारे की घास अत्यन्त कमजोर और व्यर्थ होने पर भी इतना आत्म-गौरव रखती है कि जब कोई डूबता हुआ मनुष्य उसे पकड़ लेता है, तब इस विचार से कि इसने मेरी बाँह पकड़ ली है और यह शरण में आया है, वह या तो उसे बचा लेती है, या उसी के साथ उखड़कर चली जाती है।

तुलसीदास ने बाँह पकड़ने का महत्त्व एक लोक-विश्रुत दोहे मे भी कहा है, पर वह उस घास को नहीं पा सकता।—

तुलसी बाँह सपूत की,
जो धोखेहु छुइ जाइ।
आपु निबाहै जनम भरि,
लरिकन से कहि जाइँ॥

अब नाव और नदी की एक बात सुनिये।—

नाव और नदी मे मैत्री नहीं होती। नाव नदी को चीरती-फाड़ती उसके ऊपर से चली जाती है। नदी यह कब सहन कर सकती है? पर जबतक नाव मजबूत है, तबतक नदी कर ही क्या सकती है? किन्तु इसका यह अर्थ नही कि नदी गाफिल है। वह अवसर की ताक मे रहती है और नाव को विपद्ग्रस्त पाते ही वह चारोओर से उसपर चढ़ दौड़ती है। हमने सैकडो बार नाव से नदी को पार किया होगा; पर नाव और नदी के संघर्ष पर हमने कब ध्यान दिया है? तुलसीदास की सूक्ष्म दृष्टि से नदी का प्रयत्न छिपा नही रहा और उन्होंने उसको हमे इन शब्दों में बता भी दिया।—

सत्रु सयानो सलिल ज्यों,
राख सीस रिपु नाव।
बूड़त लखि पग डगत लखि,
चपरि चहूँ दिसि धाव॥
(दोहावली)

और देखिये।—

किसान लोग खेती को जानवरों से बचाने के लिये उसमे धोखे का एक नक़ली आदमी खडा कर रखते है। तुलसीदास

ने उसे देखा होगा, उन्होंने उसे ध्यान में रख छोड़ा और राम-सीता के विवाह के अवसर जब लक्ष्मण क्रुद्ध हुये, तब उसे ले जाकर उन्होंने राज-मंडली मे खपा दिया।—

कुँवर चढाई भौंहें, अब को बिलोकै सौंहैं,
जहँ तहँ भे अचेत खेत के से धोखे हैं।
(गीतावली)

अर्थात, कुँवर का क्रोध देखकर सब राजा लोग खेत के धोखे की तरह स्तम्भित होगये।

एक नई उक्ति सुनिये।—

किसान जब खेत काट लेते हैं, तब जो दाने खेत में छिटके रह जाते हैं, उन्हे शिला और खेत काटने और काटने की मजदूरी को, जो काटे हुये अनाज के बोझ के रूप में दी जाती है, लौनी कहते हैं। शिला प्रायः स्त्रियाँ बिनतीं हैं और लौनी पुरुष करते हैं। इन दो शब्दों को लेकर तुलसीदास ने अपने राम और सीता के रूप की कैसी सुन्दर प्रशंसा कर डाली है!—

तुलसिदास जोरी देखत सुख
सोभा अतुल न जाति कही री।
रूप रासि बिरची बिरंचि मनो
सिला लवनि रति काम लही री॥
(गीतावली)

भावार्थ यह है कि ब्रह्मा ने सीता और राम को रूप की राशि बनाया है। रूप के छिटके दाने रति ने बिन लिये थे और रूप का खेत काटकर जमा कर देने की लौनी कामदेव ने पाई थी। शिला और लौनी का कितना सुन्दर प्रयोग है!

पतग का परिणाम देखिये ।—

हममें से बहुतों ने पतग उड़ाई होगी। कहा नही जा सकता कि तुलसीदास ने भी उड़ाई थी या नही, पर हवा के अभाव से पतग के करुणाजनक पतन को तुलसीदास ने कैसी सहृदयता से देखा था। इसका पता हमे उनकी इस पक्ति से लगता है ।—

भरत गति लखि मातु सब
रहि ज्यों गुडी बिनु बाय ।
(गीतावली)

अब कछुए की बात सुनिये ।—

कछुवा अपने अडे को किनारे पर ले-जाकर रेत मे ढक आता है और पानी मे रहकर वह निरन्तर मानस-तरङ्गो से उसे सेता रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्र भी अपने भाई भरत का ऐसा ही ध्यान रखते थे ।—

रामहि बंधु सोच दिन राती ।
अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती ।
(अयोध्या-कांड)

तेली के कोल्हू की बात ।—

तेली का कोल्हू देखकर तुलसीदास ने उसे व्यर्थ नहीं जाने दिया। उससे भी उन्होने कुछ रस निचोड़ ही लिया ।—

सुकृत सुमन तिल मोद वासि बिधि
जतन जन्त्र भरि घानी ।
सुख सनेह सब दियो दसरथहि
खरि खलेल थिरथानी ।
(गीतावली)

अर्थात्, पुण्य-रूपी फूलों में मोद-रूपी तिलों को बसाकर, यत्न-रूपी कोल्हू में उसकी घानी भरकर ब्रह्मा ने दशरथ को स्नेह (तेल)-रूपी सुख दिया था और उसकी खली और तेल की गाद को लोक-पालों (स्थिर स्थान-वालों) को दिया था।

सुनार या लोहार सँड़सी से काँटे-जैसी कोई पैनी चीज निकालते हैं। तुलसीदास ने उसे रावण के हाथ में देकर उससे वचन-रूपी वाण निकलवाया था।—

वक्र उक्ति धनु वचन सर,
हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रति उत्तर सडसिन्ह मनहुँ,
काढ़त भट दससीस॥
(लंका-कांड)

बरसात का गोबर न उपले पाथने के काम का होता है, न लीपने के, क्योंकि पानी में भीगकर वह पतला हो जाता है। उसे देखकर तुलसीदास को उस व्यक्ति की याद आई, जो राम के विमुख होने से किसी के काम का नहीं रहता।—

बरषा को गोबर भयो,
को चहै को करै प्रीति।
तुलसी तू अनुभवहि अब,
रामविमुख की रीति॥
(दोहावली)

सदा सत्संग करना चाहिये और गुरु की शिक्षा को ध्यान में रखना चाहिये, न जाने कब जीवन में उनकी आवश्यकता आ पड़े। जैसे, लड़कपन में सीखा हुआ तैरना अनेक अवसरों पर प्राण-रक्षक हो जाता है। किसी लड़के को तैरते हुये देखकर ही

तुलसीदास को यह उक्ति सूझी होगी।—

> सेइ साधु गुरु समुझि सिखि,
> राम भगति थिरताइ।
> लरिकाईं को पैरिबो,
> तुलसी बिसरि न जाइ॥
> (दोहावली)

जोक सरल जल में भी टेढ़े ही टेढ़े चलती है। उसे देखकर तुलसीदास ने दुर्बुद्धि लोगों का रहस्योद्घाटन किया है।—

> सहज सरल रघुबर बचन,
> कुमति कुटिल करि जानि।
> चलै जोंक जिमि बक्र गति,
> जद्यपि सलिल समान॥
> (दोहावली)

जिस तरह तोता पींजडे में क़ैद रहता है, रेशम का कोड़ा कोये में और बन्दर मदारी के हाथ में। उसी तरह आडवरी आदमी अहंकार और अनेक आचार-विचार के घेरे में क़ैद होकर अपने को संसार के लिये बिलकुल अनुपयोगी बना लेता है। उसके लिये रेशम के कीडेवाली मिसाल बिलकुल ही उपयुक्त है।—

> हम हमार आचार बड,
> भूरि भार धरि सीस।
> हठि सठ परबस परत जिमि,
> कीर कोस-क्रिमि कीस॥
> (दोहावली)

दर्पण से तुलसीदास ने जग-जीवों की कैसी सुन्दर उपमा दी है।—

केहि मग प्रबिसति जाति केहि,
कहु दर्पन मे छाँह।
तुलसी त्यों जगजीव गति,
करी जीव के नाह॥
(दोहावली)

छाया को देखकर उन्हें सम्पत्ति के स्वभाव का स्मरण हो आया।—

दिये पीठि पाछे लगै,
सनमुख होत पराय।
तुलसी संपति छाँह ज्यों,
लखि दिन बैठि गँवाय॥
(दोहावली)

स्वामी रामतीर्थ ने भी दुनिया के लिये ऐसा ही कहा था।—

भागती फिरती थी दुनिया,
जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हमने की,
वह बेक़रार आने को है॥

मोरसिखा एक प्रकार की घास होती है, जिसमें जड़ें नहीं होतीं। वह बरसात में बादल की गरज सुनकर पनप उठती है। उसे देखकर सच्चे और सहज स्नेह से प्रकाशमान कवि की वाणी से ऐसा भाव निकलना बिल्कुल स्वाभाविक था।—

तुलसी मिटै न मरि मिटेहु,
साँचो सहज सनेह।

मोरसिखा बिनु मूरिहू,
पलुहत गरजत मेह ॥
(दोहावली)

किसी का नाम गंगा हो तो उसे लोग प्रायः गँगिया और किसी का नाम रघुबर हो तो उसे रग्घू कहकर पुकारने के अभ्यस्त होते हैं। तुलसीदास ने इस पर भी ध्यान दिया और विचार किया कि यह संगति का फल है। गंगा और रघुबर का इसमें निज का कोई दोष नहीं।—

तुलसी गुरु लघुता लहत,
लघु संगति परिनाम।
देवी देव पुकारियत,
नीच नारिनर नाम ॥
(दोहावली)

पतंग के साथ डोर ढीली करना और खींचना दो क्रियायें सम्मिलित हैं। दोनों के दो परिणाम होते हैं। नीच की प्रकृति भी ऐसी ही होती है। पतंग से यह उपदेश लेकर तुलसीदास ने हमें नीच से सावधान रहने की सूचना दी है।—

नीच गुडी ज्यों जानिबो,
सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिये गिरि परत महि,
खैंचत चढ़त अकास ॥
(दोहावली)

आगे की उक्ति सुनिये, कैसी सुन्दर है! कभी जूती पहनते वक्त वह तुलसीदास को सूझी होगी। जूती-जैसे अछूत पदार्थ से उन्होंने ऐसी हृदयस्पर्शी बात निकाली, यह देखकर उनकी प्रतिभा पर मुग्ध होजाना पड़ता है।—

बिनु आँखिन की पानही,
पहिचानत लखि पाय।
चारि नयन के नारिनर,
सूझत मीचु न माय॥

(दोहावली)

बहराइच में गाजी मियाँ (सालार मसऊद गाज़ी) की दरगाह है। आजकल की तरह तुलसीदास के समय में भी हजारों यात्री वहाँ जाते रहे होंगे। उनके अंध-विश्वास की आलोचना इन दो पंक्तियों में करके तुलसीदास ने अपने समाज के अन्दर अपनी जागृति का सुन्दर प्रमाण दिया है।—

लही आँखि कब आँधरे,
बाँझ पूत कब ल्याय।
कब कोढी काया लही,
जग बहराइच जाय॥

(दोहावली)

लकड़ी, डौवा और करछुल के उपयोग को भी उन्होंने ध्यान से देखा था और हमें सिखलाया है कि इसी तरह आवश्यकतानुसार सेवक और मित्र से भी काम लेना चाहिये।—

लकडी डौवा करछुली,
सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु संग्रहहिँ परिहरहिं,
सेवक सखा विचारि॥

(दोहावली)

'रूप का दीपक शोभा की दीयट पर दीप्तिमान् है। वह बाल-विनोद-रूपी वायु के लगने से झलमला रहा है'; कैसी

मनोहर कल्पना है। तुलसीदास ने भावों के भवन में दीयट को कितना ऊँचा उठाकर रख दिया है।—

बालकेलि बातबस झलकि झलमलत
सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है।
(गीतावली)

दूध, दही, मक्खन और मट्ठे को भी उन्होंने अपनी मनोहर उक्तियों से अधिक सरस बना दिया है। शोभा की गाय से शृङ्गार का दूध दुहकर कामदेव ने अमृतमय दही तैयार किया। फिर उसे मथकर उसने उससे सीताराम-रूपी मक्खन निकाल लिया। शेष बचा हुआ मट्ठा सारे त्रिभुवन की छवि है।—

सुखमा सुरभि सिँगार छीर दुहि मयन,
अमियमय कियो है दही री।
मथि माखन सिय राम सँवारे,
सकल भुवन छवि मनहुँ मही री॥
(गीतावली)

किसी शिशु को उसकी माता घूँटी पिला रही होगी, उसे देखकर तुलसीदास को यह उक्ति सूझी।—

तुलसी निरखि सिय, प्रेमबस कहैं तिय,
लोचन सिसुन्ह देहु अमिय घूँटी।
(गीतावली)

दोनी में चरणामृत या अवसर पड़ने पर दूध और जल भी पीने की प्रथा देहात में आमतौर से प्रचलित है। तुलसीदास ने उसे आँख की उपमा देकर अपने उपयोग में ले लिया है।—

तुलसी स्वामी स्वामिनि, जोहे मोही है भामिनि,
सोभा सुधा पिये करि अँखिया दोनी ॥
(गीतावली)

जाल में पड़ा हुआ पक्षी यदि किसी तरह उससे निकलकर उड़ जाय तो बहेलिये की जो दशा होती है, उसे देखे बिना ऐसी उक्ति सूझ ही नहीं सकती, जिसे तुलसीदास ने यहाँ व्यक्त किया है।—

तुलसी सुनि सिख चले चकित चित,
उड़्यो मानो बिहग बधिक भये भोरे।
(गीतावली)

आकाश से रात में तारे टूटकर क्रमशः मन्द पड़ते-पड़ते अदृश्य हो जाते हैं। उन्हें देखकर तुलसीदास ने यह बड़ी ही भाव-पूर्ण कल्पना की है।—

राम सोक सनेह संकुल तनु बिकल मनु लीन।
टूटि तारो गगन मग ज्यों होत छिन छिन छीन ॥
(गीतावली)

कारीगर लोग नापने के लिये सूत रखते हैं। रामचन्द्र की ऊर्ध्वरेखा की उपमा तुलसीदास ने विश्वकर्मा के सूत से दी है, जिसे उसने भानु-मंडल के निर्माण के समय सीधा नापने के लिये लगाया था।—

सकल सुचिन्ह सुजन सुखदायक
ऊरधरेख बिसेष बिराजति।
मनहुँ भानुमंडलहि सँवारत
धरयो सूत बिधिसुत बिचित्रमति ॥
(गीतावली)

जिस गाँव मे धान की जितनी उपज होती है, उसका पता गाँव के बाहर जमा किये गये 'पयाल' ही से चल जाता है। गाँव के बाहर जमा हुये पयाल को देखकर एक नई बात की कल्पना करना तुलसीदास-जैसे रस-सिद्ध कवियो ही का काम था।—

धान को गाँव पयार तें जानिय,
ज्ञान विषय मन मोरे।
तुलसी अधिक कहे न रहै रस,
गूलरि को सो फल फोरे॥
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

अब देखिये, जाल में फँसे हुये परस्पर-विरोधी जलचरों की मनोवृत्ति का अध्ययन इस पद मे कैसी मार्मिकता से किया गया है।—

जलचर बृन्द जाल अंतरगत
होत सिमिटि इक पासा।
एकहि एक खात लालचबस
नहिं देखत निज नासा॥
(विनय-पत्रिका)

आगे के पद मे ससार की उपमा केले से देकर तुलसीदास ने अपनी सूक्ष्म निदर्शन-शक्ति का सुन्दर परिचय दिया है।—

मैं तोहिं अब जान्यो ससार।
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार।
(विनय-पत्रिका)

प्रेत-पावक को देहात मे लुक कहते हैं, जो रात में दलदलों और मैदानो मे जलता हुआ दिखाई पड़ता है। लोग उसे भूत

की आग समझते हैं। तुलसीदास ने उसका उपयोग धन के लिये किया है।—

विषयहीन दुख मिले बिपति अति
सुख सपनेहु नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों
धन दुखप्रद स्रुति गायो॥
(विनय-पत्रिका)

हम बहेलिये की तरह हरिभक्ति-रूपी टट्टी बनाकर, उसे कपट-रूपी हरे पल्लवों से ढँककर, नाम की लग्गी में मधुर वचन-रूपी लासा लगाकर उससे विषय-रूपी पक्षियों को फँसाते हैं। बहेलिये की कला का इतना सुन्दर उपयोग शायद ही किसी कवि ने किया हो।—

बिरचि हरिभगति को बेषवर टाटिका
कपट दल हरित पल्लवनि छावौं।
नाम लगि लाइ लासा ललित बचन कहि
ब्याध ज्यों विषय विहँगनि फँसावौं॥
(विनय-पत्रिका)

रास्ते का पानी मुसाफिरों के पैरों से सदा गँदला बना रहता है। वह कभी थिराने नहीं पाता। उसकी तुलना तुलसीदास अपने हृदय से करते हैं।—

सुख हित कोटि उपाय निरंतर
करत न पायँ पिराने।
सदा मलीन पंथ के जल ज्यों
कबहुँ न हृदय थिराने॥
(विनय-पत्रिका)

पाँसे के खेल मे जीतनेवाला जिस हर्ष और जैसी उतावली से, दोनो हाथो से, जीते हुये धन को समेटता है, उसे तुलसीदास ने शिशु राम के लिये माता कौशल्या के हृदय मे भरकर दिखलाया है।—

सखि बचन सुनि कौसिला
लखि सुढर पाँसे ढरनि।
लेति भरि भरि अंक सैतति
पैंत जनु दुहु करनि॥
(गीतावली)

भरत राम से मिलने के लिये चित्रकूट गये है। मनमें मिलने का उत्साह और सकोच दोनों अपना-अपना प्रभाव प्रकट कर रहे हैं। उस समय उनकी दशा दलदल मे फँसे हुये उस व्यक्ति की तरह वर्णन की गई है, जो जोर लगाकर पैर को ऊपर खीच रहा है।—

मन अगहुँड तनु पुलक सिथिल भयो
नलिन नयन भरे नीर।
गडत गोड मानो सकुच पंक महँ
कढत प्रेम बल धीर॥
(गीतावली)

हाथी को पानी बहुत प्रिय होता है। वह बड़े आनन्द से पानी में डुबकियाँ लगाता है। तुलसीदास ने मन-रूपी हाथी को रूप-रूपी समुद्र मे बोह दिलाकर अपनी विषय-साम्य-निर्वाचन की अपूर्व क्षमता दिखलाई है।—

सज्जन चख झख निकेत, भूपन मनिगन समेत
रूप जलधि वपुष लेत मन गयंद बोहै।
(गीतावली)

चित्रकूट मे भरत भाषण कर रहे हैं। उसे सुनते हुये वनवासी, नगर-निवासी और मुनिगण ऐसे निश्चल दिखाई पड़ते थे, मानो काठ मे खचित थे और सुनने के लिये वे उसी तरफ़ कान लगाये हुये थे। तुलसीदास प्रत्येक प्रसग का हूबहू चित्र उतारने मे बडे ही अभ्यस्त थे। उसीसे मिलती-जुलती उनकी उपमाये उनके बहिर्जगत् के ज्ञान की गरिमा को और भी अधिक उज्ज्वल बना देती हैं।

वनवासी पुरलोग महामुनि
किये है काठ के से कोरि।
दै दै स्रवन सुनिबे को जहँ तहँ
रहे प्रेम मन बोरि॥
(गीतावली)

बाजीगर को जो पैसे नहीं देता, उसे कंजूस मानकर वह उस के नाम का एक पुतला बनाकर साथ रखता है। उस पुतले को बाजीगर के साथ जगह-जगह की धूल फॉकनी पड़ती है, और सूम के नाम पर उसे बाजीगर का तिरस्कार भी सहना पड़ता है। जो राम का भक्त नही है, तुलसीदास ने उसकी तुलना उसी पुतले से की है। और कुदाम कहते हैं, खोटे पैसे को। खोटा पैसा कोई अपने पास रखना नहीं चाहता। इससे वह हाथों-हाथ टकराता फिरता है। यही दशा राम के सच्चे भक्त न होनेवालो की होती है।—

जो पै चेराई राम की करतो न लजातो।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो।
बाजीगर के सूम ज्यों खल! खेह न खातो।
(विनय-पत्रिका)

घोर घाम लगने पर प्यासा हाथी किस आतुरता से तड़ाग

की तरफ जाता है, इसे हम तुलसीदास के शब्दों मे राम से मिलने के लिये उत्सुक भरत के चरणों में देख सकते हैं ।—

भोरहि भरद्वाज आश्रम ह्वै
करि निषादपति आगे ।
चले जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज
घोर घाम के लागे ॥
(गीतावली)

तुलसीदास को भिन्न-भिन्न श्रेणी के मनुष्यो की रहन-सहन और उनकी आदतों का सूक्ष्म ज्ञान था । इसके भी कुछ उदाहरण लीजिये ।—

राम और सीता के विवाह का लग्न शोधकर ब्रह्मा ने उसे नारद के हाथ जनक के पास भेज दिया था । वही लग्न जनक के ज्योतिषियों ने भी शोधा था । दोनों का मिलान देखकर जनकपुर के लोगों ने चकित होकर कहा, ज्योतिषी सचमुच ब्रह्मा हैं ।—

सुनी सकल लोगन यह बाता ।
कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता ॥
(बाल-कांड)

राजा दशरथ के मुख से राम को युवराज-पद देने की बात सुनकर कैकेयी को जो मनोव्यथा हुई, उसकी तुलना तुलसीदास ने पके हुये बलतोड़ फोड़े के छू जाने से की है । सचमुच यह पीड़ा कल्पना से नहीं जानी जा सकती ।—

दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू ।
जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥
(अयोध्या-कांड)

कैकेयी ने कपट-स्नेह दिखलाते हुये दशरथ से जब अपना अभिप्राय कहना प्रारम्भ किया, उस समय उसके मुखमंडल पर जो-जो हाव-भाव घटित हुये, उनका उल्लेख करके तुलसीदास ने अपनी लोक-निरीक्षण-शक्ति का मनोहर प्रमाण दिया है।—

कपट सनेह बढाइ बहोरी।
बोली बिहँसि नयन मुँह मोरी॥

(अयोध्या-कांड)

देहात के लोग इतने सरल होते हैं कि जिस व्यक्ति को वे निर्दोष समझते हैं, उसके विरुद्ध जब कोई बात वे सुनते हैं तब तत्काल अपना निर्णय प्रकट कर देते हैं और प्रकट करते समय हाथों से कान मूँद कर दाँतों से जीभ पकड़ लेते हैं। 'राम का वन जाना भरत की सम्मति से हुआ था,' किसीके यह कहने पर अयोध्या के कुछ निवासियों ने उपर्युक्त नाट्य के साथ उसका विरोध किया था। तुलसीदास उनकी उस आदत से परिचित थे।—

एक भरत कर सम्मत कहहीं।
एक उदास भाय सुनि रहहीं॥
कान मूँदि कर रद गहि जीहा।
एक कहहिं यह बात अलीहा॥

(अयोध्या-कांड)

जनक के दूतों को जब दशरथ ने कुछ देना चाहा, तब उन्होंने भी हाथ-कान का ऐसा ही प्रयोग किया था।—

सभा समेत राउ अनुरागे।
दूतन्ह देन निछावरि लागे॥

कहि अनीति ते मूँदहिं काना।
धरमु विचारि सबहिं सुखु माना ॥

(बाल-कांड)

घर में लड़-झगड़कर कभी-कभी लोग घर छोड़कर भाग जाते हैं, और जब क्रोध शात हो जाता है, और अपनी भूल सुझाई पड़ने लगती है, तब वे फिर घर मे वापस आते हैं। उस समय लज्जा से उनकी जो दशा होती है, वैसी ही दशा भरत जब भरद्वाज के निकट गये हैं, तब उनकी भी हुई थी।—

आसन दीन्हि नाइ सिरु बैठे।
चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे ॥

(अयोध्या-कांड)

राम-जन्म के अवसर पर राजा दशरथ के महल मे बड़ी भीड़ थी। उस समय लोग कान से लग-लगकर बाते करते थे।—

ब्राह्मण वेद बंदि विरदावलि
जय धुनि मंगल गान।
निकसत पैठत लोग परसपर
बोलत लगि लगि कान ॥

(गीतावली)

प्राय: देखा जाता है कि नेगियों को जो चीजें विवाह आदि अवसरों पर दी जाती हैं, उनमे से अपने काम की चीजें छॉटकर, बाकी को सस्ते दामों पर, वहीं खड़े-खड़े वे बेंच डालते हैं। तुलसीदास ने उनका चित्र हमारे सामने राम-जन्म के अवसर पर उपस्थित किया है।—

रानिन दिये बसन मनि भूषन राजा सहन भँडार।
मागध सूत भाँट नट जाचक जहँ तहँ करहिं कबार॥
(गीतावली)

मनुष्यों ही पर नहीं, मनोभावों के आवेग से प्रभावित पशु-पक्षियों पर भी तुलसीदास की तीव्र दृष्टि पड़ती थी और वे उनके बाह्य लक्षणों से उनके मनोवेगों को नापते थे।

रामचन्द्र के वन जाने पर उनके घोड़ों की जो दशा हुई, उसका वर्णन तुलसीदास ने बड़ी ही करुणता से किया है।—

सुमन्त खाली रथ लेकर लौट रहे हैं। उस समय घोड़ों की दशा का वर्णन पढ़कर हृदय द्रवित हो जाता है।—

देखि दखिन दिसि हय हिंहिनाहीं।
जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥
(अयोध्या-कांड)

नहिं तृन चरहिं न पियहिं जलु,
मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भये निषाद सब,
रघुबर बाजि निहारि॥
(अयोध्या-कांड)

सुमन्त जब घोड़ों को लेकर घर आये, तब राम की माता कौशल्या के शब्दों में उनकी दशा का वर्णन तुलसीदास ने बड़ा ही हृदय वेधक किया है।—

लोचन सजल सदा सोवत-से
खान-पान बिसराये।

चितवत चौंकि नाम सुनि सोचत
राम सुरति उर आये ॥
(गीतावली)

हर्ष प्रकट करने के लिये पक्षी पख फुलाया करते हैं। पक्षियों के इस स्वभाव को तुलसीदास ने भी हृदयगम किया था। काकभुशुड के मुख से राम-कथा सुनकर गरुड़ को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। आनन्द की अनुभूति को उन्होंने पंख फुलाकर प्रकट किया।—

सुनि भुसुंडि के बचन सुहाये।
हरषित खगपति पंख फुलाये ॥
(उत्तर-कांड)

ये थोड़े-से भिन्न-भिन्न विषयो के एक-एक उदाहरण चुनकर हमने यहाँ दिये हैं। ऐसे उदाहरण तुलसीदास की रचनाओं में हजारो मिलते हैं। जान पड़ता है, वे बाह्यजगत् की प्रत्येक वस्तु को, जो आँख के सामने आती थी, बड़े ही गौर से देखते थे, और उसे स्मरण रखते थे। निरर्थक से निरर्थक वस्तु को भी वे चमका देने में बड़े ही पटु थे। उनके महावरो, कहावतों, रूपकों, उपमाओं, वर्णनों और संवादों में भी उनकी बाह्यजगत् की सूक्ष्म निदर्शन-शक्ति के प्रशस्त प्रमाण मिलते हैं। सबका आनन्द तो ध्यान-पूर्वक उनकी सम्पूर्ण कविता पढ़ने ही से मिल सकता है। दिग्दर्शन के लिये हम आगे कुछ विषयों के अलग-अलग उदाहरण देकर अपने महाकवि की अलौकिक प्रतिभा का चमत्कार देखने के लिये अपने पाठकों को आमन्त्रित करते हैं।

तुलसीदास के समय का हिन्दू-समाज

भारतवर्ष ही के नहीं, ससार के इतिहास मे वह दिन बड़े ही दुर्भाग्य का था, जिस दिन हिन्दुओं की स्वतन्त्रता का अपहरण हुआ। एक समय था, जब मनु ने इस देश के निवासियों के बारे मे अभिमान से यह लिखा था।—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनु ही ने नहीं, इस देश के समस्त ऋषियो, मुनियो, स्मृतिकारों, दार्शनिकों, कवियो और विचारकों ने ससार को सुख और शान्ति से विभूषित करना ही प्रत्येक मनुष्य के जीवन का ध्येय बताया था। हिन्दुओ के पूर्वज आर्यों ने अपने आत्मिक और सामाजिक विकास का लाभ सम्पूर्ण विश्व को देने के लिये अपना यह सिद्धान्त बना रक्खा था।—

कृण्वंतो विश्वमार्यम्।

'ससार को आर्य बनाओ।'

हिन्दू-शास्त्रों के सुप्रसिद्ध यूरोपीय पडित तथा वेद भाष्यकार मैक्समूलर भारतवर्ष के सम्बन्ध मे लिखते हैं।—

If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power, and beauty that nature can bestow—in some parts a very paradise on earth,—I should point to India. If I were asked under what sky,

the human mind has most fully developed some of its choisest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found solutions of some of them which will deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant, I should point to India. And if I were to ask myself from what literature, we, here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans, and of one semitic race, the Jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal, in fact more truly human—a life not for this life only, but a transfigured and internal life—again I should point to India. Whatever sphere of the human mind you select for your special study, whether it be language, or religion or mythology, or philosophy, whether it be laws or customs, primitive art or primitive science, everywhere you have to go to India, whether you like it or not, because some of the most valuable and most instructive materials in the history of man are treasured in India and in India only.

"यदि मुझे उस देश का पता लगाने के लिये, समस्त संसार पर दृष्टिपात करना पड़े, जो सब प्रकार के धन-धान्य, शक्ति और सौन्दर्य से, जिन्हे प्रकृति प्रदान कर सकती है, पूर्ण हो, और जो कुछ अशों तक पृथ्वी पर स्वर्ग-सा हो, तो मैं भारतवर्ष की

ओर संकेत करूँगा। यदि मुझसे पूछा जाय कि किस आकाश के नीचे मनुष्य के मस्तिष्क ने अपने चुने हुये गुणों को पूर्णतः विकसित किया है, किसने जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नो पर गहराई तक मनन किया और उनमे से अनेक को हल किया है, जो उन लोगों का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के योग्य हैं, जिन्होंने प्लेटो और कैन्ट को अध्ययन किया है, तो मैं भारतवर्ष की ओर सकेत करूँगा। यदि मैं स्वयं अपने आप से पूछूँ कि यहाँ (योरप मे) हम लोग, जो कि ग्रीक, यूनानी तथा एक ही सेमेटिक जाति यहूदी ही के विचारो पर सर्वथा शिक्षित हुये हैं, किस साहित्य से वह सत्य, जो कि हमारे आन्तरिक जीवन को अधिक निर्दोष, अधिक व्यापक, अधिक सार्वभौमिक और वास्तव मे विश्वस्तरूप से मानवीय बनाने के लिये आवश्यक है, तथा वह जीवन जो केवल इसी जीवन के लिये न हो, बल्कि एक आदर्श (रूपान्तरित) एव आभ्यन्तरीय (आन्तरिक) जीवन हो, किस साहित्य से प्राप्त कर सकते हैं, तो मै पुनः भारतवर्ष की ओर सकेत करूँगा। अपने विशेष अध्ययन के लिये मनुष्य की मेधा-शक्ति के जिस पहलू को भी आप पसन्द करे, चाहे वह भाषा हो, चाहे धर्म, चाहे पुराण, चाहे दर्शन, चाहे कानून हो या लोक-रीति, चाहे प्राचीन कला हो या प्राचीन विज्ञान, सब के लिये आपको भारतवर्ष जाना पड़ेगा; चाहे आप इसे पसन्द करे या न करे, क्योंकि मनुष्य-जाति के इतिहास की अमूल्य और शिक्षाप्रद सामग्रियाँ भारतवर्ष में और केवल भारतवर्ष ही मे, संचित (संगृहीत हैं) ।"

पर समय के प्रभाव से सामाजिक शक्ति क्षीण होती गई और जनता पर से समाज-निर्माताओं का नियंत्रण ढीला पड़ गया। यकायक एक भिन्न सभ्यता और भिन्न साहित्य का

आगमन इस देश में हुआ, जिससे हमारी शृंखला ही नहीं टूट गई, हमारा नैतिक पतन भी प्रारभ होगया। तुलसीदास के समय तक पहुँचते-पहुँचते तो हममे अनेक बुराइयो ने घर कर लिया और हम सर्वनाश की ओर डका बजाते हुये दौड़ने लगे। तुलसीदास ने हमारे पतन का जो शब्द-चित्र खींचा है, उसे देखकर अपने प्राचीन गौरव से अभिज्ञ जन पीड़ित हो उठते हैं।

उनके समय में राज्य-शासन एसे हाथो में था, जो हिन्दुओ की सभ्यता की उपेक्षा ही नही, उसके नष्ट करने का भी पूरा प्रयत्न करता था।

शासक-समुदाय के लोग बड़ा उपद्रव करते थे और अनेक प्रकार के ढोंग रचकर, धर्म को निर्मूल करने के लिये वेद-विरुद्ध कार्य करते थे। जहाँ कहीं वे गायें और ब्राह्मणों को पाते थे, चाहे वह शहर हो या गाँव या पुरवा, उसमे आग लगा देते थे।—

करहि उपद्रव असुर निकाया।
नाना रूप धरहि करि माया॥
जेहि विधि होइ धरम निरमूला।
सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥
जेहि जेहि देस धेनु दिज पावहिं।
नगर गाँव पुर आगि लगावहि॥
(बाल-कांड)

न कोई अच्छे आचरण कर पाता था, न देवता, ब्राह्मण और गुरु का सत्कार ही होने पाता था। न किसी मे हरि-भक्ति थी, न कोई यज्ञ, जप और दान ही करता था। वेदों और पुराणों को तो कोई स्वप्न में भी नही सुनता था।—

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई।
देव विप्र गुरु मान न कोई॥

नहिं हरि भगति जग्य जप दाना।
सपनेहुँ सुनिय न बेद पुराना॥
(बाल-कांड)

शासक लोग रावण की तरह अत्याचारी हो रहे थे। जप, योग, वैराग्य, तप और यज्ञ की चर्चा सुनकर वे स्वयं उठ दौड़ते थे और जप आदि करनेवालों को वे रहने नहीं देते थे। संसार का आचार-विचार भ्रष्ट होगया था, धर्म कहीं कान से भी नहीं सुनाई पड़ता था। जो कोई वेद और पुराण का मर्म समझाता था, वह बहुत प्रकार से भयभीत किया जाता था और देश से निकाल दिया जाता था।—

जप जोग बिरागा तप मख भागा
स्रवन सुनइ दससीसा।
आपुन उठि धावइ रहइ न पावइ
धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा, भा संसारा
धरम सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ
जो कह बेद पुराना॥
(बाल-कांड)

जनता पर होनेवाले अत्याचार इतने बढ़ गये थे कि उनका पूरा-पूरा वर्णन तुलसीदास भी नहीं कर सके। हिंसा ही जिनकी प्रीति का विषय था, उनके पापों की सीमा ही क्या हो सकतीथी।—

बरनि न जाइ अनीति,
घोर निसाचर जो करहिं।

हिंसा पर अति प्रीति,
तिनके पापहिं कवनि मिति ॥
(बाल-कांड)

शासन की प्रतिकूलता से दुष्ट, चोर, जुआरी और परधन और परदारा के अपहरण करनेवाले बढ़ गये थे। माता, पिता और देवता का सम्मान नहीं था। लोग साधुओं से सेवा-कार्य लेने लगे थे।—

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।
जो लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
(बाल-कांड)

हिन्दुओं का शासन न रहने से धार्मिक प्रतिबंध उठ गया था। शासक-जाति के भय से सद्ग्रंथ लुप्त हो गये थे और दंभियों ने अपनी-अपनी बुद्धि से कल्पना कर-करके नये मत और पंथ चला लिये थे।—

कलिमल ग्रसे धरम सब,
लुप्त भये सद्ग्रन्थ।
दंभिन निज मति कलप करि,
प्रगट किये बहु पंथ॥
(उत्तर-कांड)

वर्णाश्रम धर्म का नाश हो गया था, लोग वेदों के विरोध में लग गये थे, ब्राह्मण वेद-द्वारा धन प्राप्त करने लगे थे और राजा लोग प्रजा ही का भक्षण करने लगे थे। वेदों के नियंत्रण में कोई नहीं था।—

बरन धरम नहिं आस्रम चारी।
स्रुति बिरोध रत सब नरनारी॥
द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन।
कोउ न मान निगम अनुसासन॥
(उत्तर-कांड)

जिसे जो पसद होता था, उसे ही वह अपने जीवन का मार्ग मानता था। जो तर्क-वितर्क में बहुत निपुण होता था, वही पडित कहलाता था। झूठे टकोसलेवाले पाखडी लोगो को सब लोग सत समझते थे।—

मारग सोइ जाकहुँ जो भावा।
पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभरत जोई।
ताकहुँ संत कहहिं सब कोई॥
(उत्तर-कांड)

जो हँसी-मजाक मे पटु और झूठा होता था, वही गुणवत कहा जाता था। जिसके बड़ी-बड़ी जटायें और लबे-लबे नख होते थे, वही तपस्वी समझा जाता था।—

जो कछु झूठ मसकरी जाना।
कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥
जाके नख अरु जटा बिसाला।
सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥
(उत्तर-कांड)

शूद्र लोग ब्राह्मणों को ज्ञानोपदेश करते थे, जनेऊ पहनकर वे भूमि का दान लेते थे, स्त्रियाँ दुराचारिणी हो गई थीं, सौभाग्यवती स्त्रियाँ तो गहनों से रहित थी और विधवायें नित्य

नये-नये सिंगार किया करती थीं ।—

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना ।
मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी ।
भजहिं नारि परपुरुष अभागी ॥
सौभागिनी विभूषन हीना ।
बिधवन्ह के सिंगार नवीना ॥

(उत्तर-कांड)

लोग ब्रह्म-ज्ञान के सिवा दूसरी बात ही नहीं करते थे, पर वे एक कौड़ी के लिये ब्राह्मण और गुरु की हत्या कर डालते थे। शूद्र ब्राह्मणों से बहस करते थे कि क्या हम तुमसे घटकर हैं ? जो ब्रह्म को जाने, वही ब्राह्मण, यह कहकर वे भुड़ककर आँखें दिखलाते थे ।—

ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर,
कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि मोह बस,
करहिं बिप्र गुरु घात ॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन,
हम तुम तें कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर,
आँखि देखावहिं डाँटि ॥

(उत्तर-कांड)

नीच वर्ण के लोग स्त्री के मर जाने और घर की सपत्ति नष्ट होजाने पर सिर मुड़ाकर सन्यासी होजावे थे। ब्राह्मण अक्षर-ज्ञान से रहित, लोभी, कामी, आचारहीन और पुंश्चली

स्त्रियों से प्रेम रखनेवाले होगये थे। सब लोग स्वकल्पित आचार-विचार करते थे। अवर्णनीय अनाचर फैला हुआ था।—

नारि मुई घर संपति नासी।
मूँड मुडाय भये संन्यासी॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी।
निराचार सठ बृषली स्वामी॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा।
जाइ न बरनि अनीति अपारा॥

(उत्तर-कांड)

यती लोग खूब धन लगाकर सुदर-सुंदर महल बनवाते थे, तपस्वी धनी थे और गृहस्थ गरीब हो गये थे, राजा पापी हो गये थे, उनमे धर्म रह नहीं गया था, वे सदा दंड दे-देकर प्रजा की विडबना किया करते थे।—

बहु दाम सँवारहिं धाम जती।
विषया हरि लीन्हि रही बिरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही।
कलि कौतुक तात न जात कही॥
नृप पाप परायन धर्म नही।
करि दड बिडंब प्रजा नितहीं॥

(उत्तर-कांड)

बार-बार अकाल पड़ता था, सब लोग अन्न बिना दुःखी होकर मर रहे थे, लोग रोगो से पीड़ित थे, सुख का कही नाम नहीं था, अकारण ही उनमे अभिमान और क्रोध उत्पन्न होता था, उनकी आयु छोटी होगई थी, पर वे समझते थे कि कल्पात तक उनका नाश न होगा। उनमे न सतोष था, न विवेक और

न नम्रता, सुजाति और कुजाति सभी तरह के लोग भिखमगे होगये थे।

प्रीति, विवाह-सबंध, सब गुण और व्यापार आदि अनेक उपायो से लोग एक दूसरे को कल, बल और छल से ठगते रहते थे।—

प्रीति, सगाई, सकल गुन,
बनिज उपाय अनेक।
कल बल छल कलिमल मलिन,
डहकत एकहि एक॥
(दोहावली)

दभ-सहित धर्म, छल-युक्त व्यवहार, स्वार्थमय स्नेह और रुचि के अनुसार आचार रह गया था। चोर, चतुर, ठग, नट, भँडुवे और भॉड ही स्वामी को प्रिय लगते थे। जो सर्वभक्षी होता था, वही परमार्थी कहलाता था। पाखड ही सुपथ था।—

दंभ सहित कलि धरम सब,
छल समेत व्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब,
रुचि अनुहरत अचार॥
(दोहावली)

चोर चतुर बटमार नट,
प्रभु प्रिय भँडुवा भंड।
सब भच्छक परमारथी,
कलि सुपंथ पाखंड॥
(दोहावली)

कलियुग के भक्त लोग (कबीरपंथी, गोरखनाथी आदि) साखी, शब्द, दोहरे और किस्से-कहानियाँ कहकर भक्ति का निरूपण करते हुये वेदों और पुराणों की निंदा करते थे।—

साखी सबदी दोहरा,
कहि किहिनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि
निंदहिं बेद पुरान॥
(दोहावली)

मन्दिरों और तीर्थों में बड़ा ही दुराचार फैल गया था। मानों कलियुग अपने दल-बल-सहित वहाँ किला बाँधकर बैठ गया था।—

सुर सदननि तीरथ पुरिन,
निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि,
राजत सहित समाज॥
(दोहावली)

गोंड़ और गँवार तो राजा थे और यवन महाराजाधिराज। साम, दाम और भेद से काम नहीं लिया जाता था, केवल कराल दंड ही राज्य-शासन का आधार था।—

गोंड गँवार नृपाल महि,
यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि,
केवल दंड कराल॥
(दोहावली)

यवन शासकों के सहधर्मी लोग मूर्ति के सदेह में हिन्दुओं के घर के सिल और बट्टे तक फोड़ डालते थे। उनके टुकड़ो के पहाड़ खडे होगये थे। हिन्दू लोग कायर, क्रूर और कुपुत्र होरहे थे, उनके घर-घर मे सैकड़ो रास्ते थे। लोगों मे एका नही था।—

फोरहि सिल लोढा सदन,
लागे अढुक पहार।
कायर क्रूर कपूत कलि,
घर घर सहस डहार॥
(दोहावली)

तुलसीदास के समय मे गोरख-पथियो के प्रभाव से हिन्दू-समाज में जो उच्छृङ्खलता फैल गई थी, तुलसीदास ने उसका चित्र इन छदो में खींचा है।—

बरन धरम गयो आस्रम निवास तज्यो
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो ज्ञान
बचन बिराग बेष जगत हरो सो है॥
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि
रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है॥
(कवितावली)

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ
कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल कृपाल न
राज समाज बडोई छली है॥

ब्रर्न बिभाग न आस्रम धर्म
दुनी दुख दोष दरिद्र दली है।
स्वारथ को परमारथ को
कलि राम को नाम प्रताप बली है॥
(कवितावली)

उस समय लोगों की आर्थिक स्थिति बडी ही शोचनीय हो गई थी।—

किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाँट
चाकर चपल नट चोर चार चेटकी।
पेट को पढत गुन गढत चढत गिरि
अटत गहन गन अहन अखेटकी॥
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की॥
(कवितावली)

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोचबस
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी।
बेदहू पुरान कही लोकहू बिलोकियत
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु
दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी॥
(कवितावली)

साम्प्रदायिक मत-मतान्तरों के प्राबल्य से समाज की बौद्धिक प्रगति डॉवाडोल हो रही थी। परस्पर राग-द्वेष की वृद्धि हो रही

थी, और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायवाले अपने-अपने विचारो का समर्थन और अन्यो का खडन कर रहे थे। कुछ मुनिगण अपने को देव-कोटि मे गिनने लगे थे और अपने अनुयायियो से पूजा प्राप्त करने लगे थे।—

आगम बेद पुरान बखानत
मारग कोटिन जाहिँ न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको
ईस कहावत सिद्ध सयाने।
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे
जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै तुलसी
हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने॥

(कवितावली)

शैवों और वैष्णवों का विरोध निर्गुण और सगुण का खडन-मडन चरम सीमा तक पहुँच चुका था। परस्पर कलह, वितंडावाद, निंदा-अपवाद, हिसा और प्रतिहिंसा, ये ही शिक्षित-समाज के बौद्धिक विषय बन गये थे। तुलसीदास ने मानस के उत्तर-काड मे कागभुसुंडि का उनके गुरु के साथ जो विवाद वर्णन किया है, वैसी घटनाये तुलसीदास को नित्य ही देखने को मिलती होगी।

एक बार गुरु लीन्ह बोलाई।
मोहिं नीति बहु भाँति सिखाई॥
सिवसेवा कै फल सुत सोई।
अबिरल भगति रामपद होई॥
हर कहुँ हरिसेवक गुरु कहेऊ।
सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ॥

एक बार हरमंदिर,
जपत रहेउँ हरनाम।
गुरु आयेउ अभिमान ते,
उठि नहि कीन्ह प्रनाम ॥
(उत्तर-कांड)

पुनि पुनि सगुन पच्छ मै रोपा।
तब मुनि बोलेउ वचन सकोपा ॥
मूढ परम सिख देउँ न मानसि।
उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि ॥
सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला।
सपदि होहु पच्छी चंडाला ॥
(उत्तर-कांड)

ऊपर के उद्धरणो से हमारे पाठक अनुमान कर सकेगे कि तुलसीदास के समय के और आजकल के समाज मे इतना ही अन्तर है कि यद्यपि महात्मा तुलसीदास की कृपा से अब हम मे तत्कालीन शैवों और वैष्णवो की कटुता नही रह गई है, पर अन्य विषयों मे हम उस समय की अपेक्षा अधिक पतितावस्था मे पहुँच गये हैं। तुलसीदास से अपने तत्कालीन समाज की दुर्दशा देखी न गई। वे व्यथित हुये, उद्विग्न हुये, पर कायर की तरह मन मसोस कर नही रह गये, उन्होंने अपना जीवन अपने समाज पर निछावर कर दिया। वे अशरण के शरण, भक्त-वत्सल राम को लेकर हमारे बीच मे आ बैठे और उनके जीवन के प्रकाश से हमारे दुःख-पूर्ण घर के कोने-कोने को भरना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि हमारे दुःख कम नही हुये, पर जहाँतक तुलसीदास का प्रकाश पहुँचा है, वहाँ तक हम में दुःख को धैर्य के साथ सहने की शक्ति और दुःख से निवृत्ति पाने की लालसा बढ़ गई है।

तुलसीदास के समय की सामाजिक रहन-सहन

एक अद्‌भुत बात है कि हिन्दू-जाति पर उसके ऋषि-मुनियो और समाज-संस्कारकों द्वारा निश्चित नियमो का ऐसा प्रभाव पड़ा हुआ है कि उसकी रहन-सहन मे परिवर्तन बहुत ही मद-गति से होता है। दो हजार वर्षों के अन्दर यहाँ कई वार सामाजिक क्रातियाँ हुई; बुद्ध आये, शङ्कराचार्य आये, रामानन्द और कबीर आये, दयानन्द और राममोहन राय आये, शक, हूण और यवन आये, अरब आया, योरप आया, पर कुछ तो इसमें समा-कर समाप्त हो गये और कुछ ऊपर ही ऊपर तैरते रहे। समाज के अतस्तल मे कोई प्रवेश नहीं कर पाया और हिन्दुओं की दुनिया अभी ज्यो की त्यो है। थोडे-से लोग, जो राज्य-शासन मे भाग लेने के इच्छुक होते हैं, वे भले ही विकृत हो जायँ, पर जिनका सम्बन्ध समकालीन शासक-जाति से नही होता, वे अपने प्राचीन रहन-सहन ही मे सन्तुष्ट रहते हैं और किसी की नकल करना उन्हे अरोचक लगता है। जो बैलगाड़ी हम आज देखते हैं, वह शायद दशरथ महाराज के समय मे भी ऐसी ही रही होगी। इसका एक भी कील-काँटा किसी ने बदला नहीं है। इसी तरह सामाजिक छकड़े की बहुत-सी बाते पूर्वकाल से ज्यों की त्यो चली आ रही हैं। यदि विदेशियो के ससर्ग से कहीं कुछ परिवर्तन हुआ भी है तो वह मिलता-जुलता ही-सा जान पड़ता है। अतएव तुलसीदास के समय के और आजकल के हिन्दू-समाज मे थोड़ा ही बहुत अन्तर मिलेगा। कुछ बातें जो

तुलसीदास की कविता से जानी जा सकी हैं, यहाँ दी जा रही हैं। उनसे हमारे कथन की तथ्यता पर प्रकाश पड़ेगा।—

पुत्र-जन्म, यज्ञोपवीत और विवाहादि संस्कार उन दिनों भी आज ही कल की तरह होते थे। घर-गिरस्ती की बातों में उस समय भी स्त्रियाँ कुशल थीं।—

अरुंधती मिलि मैनहि बात चलाइहि।
नारि कुसल इहि काजु, काजु बनि आइहि॥
(पार्वती-मंगल)

नाक में गहने पहने जाते थे।—

नृप न सोह बिनु बचन, नाक बिनु भूषन॥
(जानकी-मंगल)

छोटे बच्चों के पैर में नूपुर, कमर में करधनी, हाथ में पहुँची और गले में बाघ-नख पिरोकर हार पहनाने का रिवाज था। बच्चों को पीले रंग की कुरती पहनाई जाती थी। वे दुपट्टा भी ओढ़ते थे, जो पीले रंग का होता था।—

पग नूपुर कटि किंकिनी,
कर कंजनि पहुँची मंजु।
हिय हरिनख अद्भुत बन्यों,
मानो मनसिज मनि गन गंजु॥
(गीतावली)

नव नील कलेवर पीत झँगा।
(कवितावली)

धनुहीं कर तीर निषंग कसे
कटि पीत दुकूल नबीन फबै।
(कवितावली)

आँखों में काजल, भौं के बीच में काजल का विंदा और माथे पर गोरोचन का तिलक देने का रिवाज भी था ।—

लोयन नील सरोज से,
भ्रू पर मसि विंद विराज ।
(गीतावली)

भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ।
रंजित अंजन कंज विलोचन ॥
(गीतावली)

गौने की प्रथा उन दिनों भी थी ।—

गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ के ।
(कवितावली)

पुनर्विवाहित पुरुष 'खसम' कहलाता था । आज-कल भी गाँवों की बोल-चाल में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है ।—

राम के प्रसाद गुरु गौतम खसम भये ।
(कवितावली)

बेटा-बेटी को जमानत के तौर पर रखने का रिवाज था ।—

तुलसी तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजा,
बाजे बाजे राजनि के बेटा-बेटी ओल हैं ।
(कवितावली)

ओल = प्रतिज्ञापूर्त्ति की जीवित जमानत । प्रतिज्ञा पूरी न होने पर जामिनदार ज़मानत के जीव का स्वेच्छापूर्वक उपयोग कर सकता था ।

नगर तोरण और झंडियों-पताकाओं से सजाये जाते थे ।—

मनि तोरन बहु केतु पताकनि पुरी रुचिर करि छाई ।
(गीतावली)

बाजो मे घंटे, घंटियाँ, पखावज, तासा, झाँझ, बीन, डफ और मजीरे का चलन था ।—

घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार ।
नूपुर धुनि मंजीर मनोहर कर कंकन झनकार ॥
(गीतावली)

पुत्र-जन्म पर छठे और बारहवे दिन उत्सव होते थे ।—

छठी बारहौ लोक वेद विधि करि सुबिधान विधानी ।
(गीतावली)

जंत्र-मंत्र और टोना-टोटके उस समय भी प्रचलित थे, और बच्चों को नजर भी लगती थी ।—

आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके ।
देव पितर ग्रह पूजिये तुला तौलिये घी के ।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि
अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के ॥
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह
मंत्र पढ़े जो सुमिरत भय भी के ।
जासु नाम सर्बस सदा सिव पारवती के ।
ताहि झरावति कौसिला यह रीति
प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के ॥
(गीतावली)

ज्योतिषियो की पूछ तब भी थी ।—

अवध आजु आगमो एकु आयो ।
करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन परिचौ पायो ॥

बूढो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो ।
सँग सिसु सिष्य सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो ॥
(गीतावली)

बच्चों की नाक में नथुनी पहनाने का भी रिवाज था ।—

रुचिर चिबुक रद अधर मनोहर,
ललित नासिका लसति नथुनियाँ ॥
(गीतावली)

सिर पर ऊँची दीवार की टोपी पहनने की चाल थी, जिसे टिपारा कहते थे ।—

सिरसि टिपारो लाल नीरज नयन विसाल,
सुन्दर बदन ठाढ़े सुरतरु सियरे ।
(गीतावली)

आजकल का हॉकी का खेल अँग्रेज़ों की ईजाद नहीं है । यह हिन्दुओं में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है । केशवदास ने भी रामचंद्रिका में इसका वर्णन किया है और तुलसीदास ने भी लिखा है ।—

सरजु तीर सम सुखद भूमिथल
गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ।
राम लखन इक ओर भरत रिपु-
दवन लाल इक ओर भये ।
कंदुक केलि कुसल हय चढ़ि चढ़ि
मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये ॥
एक लै बढ़त एक फेरत सब
प्रेम प्रमोद बिनोद मये ॥
(गीतावली)

एक हाथ मे कमल का फूल लेने की भी प्रथा थी। विष्णु के चारो हाथो मे शङ्ख, चक्र और गदा के साथ पद्म भी है। प्राचीन चित्रो मे भी चित्रित व्यक्ति के हाथ म कमल का पुष्प पाया जाता है। यह प्रथा यद्यपि आजकल इस रूप मे नहीं है, और सौन्दर्य-वृद्धि के लिये पुरुष लोग कोट मे गुलाब के फूल लगाने लगे हैं और स्त्रियाँ बालो मे फूल खोसने लगी हैं; पर प्राचीन काल के हिन्दुओ मे जब कोट आदि सिले हुये वस्त्रो का चलन नहीं था, तब पुरुष हाथो मे कमल का फूल रखते थे और बालक और स्त्रियाँ सिर के बालो मे फूलो के गुच्छे खोसती थीं। दक्षिण की स्त्रियो मे यह प्रथा अब भी पाई जाती है। इससे विदित होता है कि हिन्दुओ मे फूलों के प्रति सहज अनुराग था, और वे सदा फूलो के अधिक से अधिक निकट रहना पसद करते थे। बच्चों के सिर मोरपख से भी सजाये जाते थे। योरप की स्त्रियो मे पक्षियो के सुन्दर पखों से टोपियाँ सजाने का शौक प्रसिद्ध ही है।—

अंसनि धनु सर कर कमलनि
कटि कसे हैं निखंग बनाई।
(गीतावली)

सिरनि सिखंड सुमन दल मंडन
बाल सुभाय बनाये।
(गीतावली)

सिर पर लम्बे-लम्बे बाल रखकर, बीच मे माँग निकालकर पट्टा रखने का भी शौक था।—

काकपच्छ सिर सोहत नीके।
गुच्छे बिच बिच कुसुम कली के॥
(बाल-कांड)

सिर पर चौगोशिया टोपी, पल्लव और प्रसून, कानों में कुंडल और सोने की कील भी पहनने का रिवाज था ।—

चौतनि सिरनि कनक कली काननि
कटि पट पीत सोहाये।
(गीतावली)

गोबर की गौर से सगुन निकालने और गणक से भविष्य पूछने की भी प्रथा थी ।—

लेत फिरत कनसुई सगुन सुभ
बूझत गनक बोलाइकै।
(गीतावली)

आजकल मिलने पर जैसे नमस्कार, प्रणाम, सलाम और 'जैरामजी की' आदि कहने का रिवाज है, वैसे ही उस समय 'जयजीव' कहकर प्रणाम किया जाता था ।—

मुदित महीपति मंदिर आये।
सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाये॥
कहि 'जयजीव' सीस तिन्ह नाये।
भूप सुमंगल बचन सुनाये॥
(अयोध्या-कांड)

देखि सचिव 'जयजीव' कहि
कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति,
कहु सुमंत्र कहँ रामु॥
(अयोध्या-कांड)

तीन सौ वर्ष पहले भी होली का उत्सव आजकल ही की

तरह मनाया जाता था। उस समय स्त्रियाँ दल बाँधकर पुरुषों से होली खेलती थीं और पुरुष गधे पर सवार होते और गालियाँ बकते थे।—

खेलत वसंत राजाधिराज।
देखत नभ कौतुक सुर-समाज॥

सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ।
झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ॥

बाजहिं मृदंग डफ ताल बेनु।
छिरकैं सुगंध-भरे मलय-रेनु॥

उत जुवति-जूथ जानकी संग।
पहिरे पट भूषन सरस रंग॥

लिए छरी बेंत सोधैं बिभाग।
चाँचरि झूमक कहैं सरस राग॥

नूपुर-किंकिनि-धुनि अति सोहाइ।
ललना-गन जब जेहि धरइँ धाइ॥

लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ।
छाँड़हिं नचाइ हाहा कराइ॥

चढ़े खरनि बिदूषक स्वाँग साजि।
करैं कूटि, निपट गइ लाज भाजि॥

नर नारि परसपर गारि देत।
सुनि हँसत राम भाइन समेत॥

वर्णन

तुलसीदास में वर्णन-शक्ति अद्भुत थी। बाह्य-जगत् का सूक्ष्म निरीक्षण किये बिना कवि में ऐसी वर्णन-शक्ति का विकास नहीं हो सकता। तुलसीदास ने जिस विषय को हाथ में लिया, उसका उन्होंने एक जीता-जागता चित्र-सा खींचकर खड़ा कर दिया है। इससे उनकी सुरुचि और प्रत्येक विषय को सांगोपांग देखने और उसमें निहित सौन्दर्य को हृदयंगम करने की अद्भुत पिपासा का प्रमाण मिलता है। उनके वर्णनों के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।—

राम के नहछू का प्रसंग है। महाराज दशरथ के रनिवास के साथ तत्कालीन समाज की सब श्रेणियों की स्त्रियाँ, ऊँच-नीच का भेद-भाव रक्खे बिना, मंडप के नीचे अपने-अपने जातीय वेष में उपस्थित हैं। तुलसीदास ने उस समारोह का बड़ा ही ललित वर्णन किया है।—

बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो॥

अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो॥

रूपसलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि साथहि हो॥

दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगंधन बोरा हो॥

मोचिनि बदन-सकोचिनि हीरा माँगन हो।
पनहि लिहे कर सोभित सुन्दर आँगन हो॥

बतिया कै सुघरि मलिनिया सुन्दर गातहि हो।
कनक रतनमनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥

कटि कै छीन बरिनिश्राँ छाता पानिहि हो।
चंद्रवदनि मृगलोचनि सब रसखानिहि हो॥

नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो॥

कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो।
"नहछू जाइ करावहु बैठि सिँहासन हो"॥

गोद लिहे कौसल्या बैठी रामहि बर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो॥

नाउनि अति गुनखानि तौ बेगि बोलाई हो।
करि सिँगार अति लोन तौ बिहसति आई हो॥

कनक चुनिन सोँ लसित नहरनी लिये कर हो।
आनँद हिय न समाइ देखि रामहि बर हो॥

काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो।
गजमुकुता कर हार कंठ मनि मोहइ हो॥

कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हो।
रानी कै दीन्ही सारी तौ अधिक बिराजइ हो॥

(रामलला-नहछू)

नहछू के वक्त राम का नख काटा जा रहा है। चारोंओर स्त्रियों की भीड़ जमा है, राम बाल-स्वभाव-वश तिरछी चितवन से देखते और मुसकुराते हैं।—

अति बड़भाग नउनियाँ छुऐ नख हाथ सों हो।
नैनन्हि करति गुमान तौ श्री रघुनाथ सों हो॥

अतिसय पुहुप क माल राम उर सोहइ हो।
तिरछी चितवनि आनँद मुनि मुख जोहइ हो॥

नख काटत मुसुकाहिं बरनि नहिं जातहि हो।
पदुम पराग मनि मानहुँ कोमल गातहि हो॥

(रामलला-नहछू)

पार्वती को व्याहने के लिये शिवजी बरात सजाकर हिमवान् के घर गये। उस बरात का वर्णन तुलसीदास ने बड़े ही विनोद-पूर्ण ढग से किया है।—

प्रमथनाथ के साथ प्रमथगन राजहिं।
बिबिध भाँति मुख, बाहन, बेष बिराजहिं॥

कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं।
नर कपाल जल भरि भरि पियहि पियावहिं॥

बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा।
सुनि हिय हँसत महेस, केलि कौतुक महा॥

बड बिनोद मग मोद न कछु कहि आवत।
जाइ नगर नियरानि बरात बजावत॥

पुर खरभर, उर हरषेउ अचलु अखंडलु।
परब उदधि उमगेउ जनु लखि बिधुमंडल॥

प्रमुदित गे अगवान बिलोकि बरातहि।
भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहि॥

चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत।
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत॥

दीन्ह जाइ जनवास सुपास किए सब।
घर घर बालक बात कहन लागे तब॥

प्रेत बैताल बराती, भूत भयानक।
बरद चढा बर बाउर, सबइ सुबानक॥

कुसल करइ करतार कहहिँ हम साँचिय।
देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय॥

समाचार सुनि सोचु भयउ मन मैनहिं।
नारद के उपदेस कवन घर गे नहिं?

घरघाल चालक कलहप्रिय,
कहियत परम परमारथी।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि
मुनि सात स्वारथ सारथी॥

उर लाइ उमहिं अनेक बिधि,
जलपति जननि दुख मानई।
हिमवान कहेउ "इसान महिमा,
अगम निगम न जानई"॥

सुनि मैना भइ सुमन, सखी देखन चली।
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गली॥

श्रीपति, सुरपति, बिबुध बात सब सुनि सुनि।
हँसहिं कमलकर जोरि, मोरि मुख पुनि पुनि॥

जरा 'मोरि मुख पुनि पुनि' पर ध्यान दीजियेगा। रामचरित-मानस में भी इस प्रसग की कविता बड़ी ही मधुर है।—

सिवहिं सभुगन करहिं सिंगारा।
जटामुकुट अहि मौर सँवारा॥

कुण्डल कंकन पहिरे ब्याला।
तन बिभूति पट केहरि छाला॥

ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा।
नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥

गरल कंठ उर नर-सिर-माला।
असिव वेष सिवधाम कृपाला॥

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा।
चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा॥

देखि सिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं।
बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥

बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता।
चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥

सुर समाज सब भाँति अनूपा।
नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥

बिस्नु कहा अस बिहँसि तब,
बोलि सकल दिग्गिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब,
निज निज सहित समाज॥

बर अनुहारि बरात न भाई।
हँसी करइहहु परपुर जाई॥

बिस्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने।
निज निज सेन सहित बिलगाने॥

मनहीं मन महेस मुसुकाहीं।
हरिके ब्यंग बचन नहिं जाहीं॥

अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे।
भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥

सिव अनुसासन सुनि सब आये।
प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाये॥

नाना वाहन नाना वेषा।
बिहँसे सिव समाज निज देखा॥
कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू।
बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
बिपुलनयन कोउ नयनबिहीना।
रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना॥

तन खीन कोउ अति पीन पावन
कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर सब
सद्य सोनित तन भरे।
खर स्वान सुअर सृगाल मुख
गन वेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि
जमात बरनत नहिं बनै॥

नाचहिं गावहिं गीत,
परम तरंगी भूत सब।
देखत अति विपरीत,
बोलहिं बचन विचित्र बिधि॥

नगर निकट बरात सुनि आई।
पुर खरभर सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सब वाहन नाना।
चले लेन सादर अगवाना॥
हिय हरषे सुरसेन निहारी।
हरिहि देखि अति भये सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे।
बिडरि चले वाहन सब भागे॥

धरि धीरज तहँ रहे सयाने।
बालक सब लइ जीव पराने॥

गये भवन पूछहिं पितु माता।
कहहिं बचन भय कंपित गाता॥

कहिय कहा कहि जाइ न बाता।
जम कर धारि किधौं बरिआता॥

बर बौराह बरद असवारा।
ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥

तन छार ब्याल कपाल भूषन
नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि
बिकट मुख रजनीचरा।

जो जियत रहिहि बरात देखत
पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाह घर घर
बात असि लरिकन्ह कही॥

विवाहोपरान्त सीता को राम के साथ विदा करते समय उनके माता-पिता और जनकपुर-निवासियों की वियोग-व्यथा के वर्णन में तुलसीदास ने प्रत्येक माता और पिता का हृदय निचोड़कर रख दिया है।—

प्रात बरात चलिहि, सुनि भूपति भामिनि।
परि न बिरह बस नींद, बीति गइ जामिनि॥

खरभर नगर, नारि नर बिधिहि मनावहिं।
बार बार ससुरारि राम जेहि आवहिं॥

सकल चलन के साज जनक साजत भए।
भाइन्ह सहित राम तब भूप भवन गए॥

सासु उतारि आरती करहिं निछावरि।
निरखि निरखि हिय हरपहिं मूरति सॉवरि॥

मॉगेउ बिदा राम तब, सुनि करुना भरी।
परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी॥

सीय सहित सब सुता सौंपि कर जोरहि।
बार बार रघुनाथहि निरखि निहोरहिं॥

तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन।
अनुचर जानब राउ सहित पुर परिजन॥

जन जानि करब सनेह, बलि
कहि दीन बचन सुनावहीं।
अति प्रेम बारहिं बार रानी
बालकन्हि उर लावहीं।
सिय चलत पुरजन नारि हय
गय बिहँग मृग व्याकुल भए।
सुनि बिनय सासु प्रबोधि तब
रघुबंसमनि पितु पहिं गए॥

'मानस' मे भी इसका वर्णन बड़ा सरस है।—

पुनि धीरज धरि कुअँरि हँकारी।
बार बार भेटहिं महतारी॥

पहुँचावहिं फिर मिलहिं बहोरी।
बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी॥

पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई।
बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥

प्रेम विवस नरनारि सब,
सखिन्ह सहित रनिवास।
मानहुँ कीन्ह विदेहपुर,
करुना - विरह - निवास॥

सुक सारिका जानकी ज्याये।
कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाये॥
व्याकुल कहहिं कहाँ वैदेही।
सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥
भये विकल खग मृग एहि भाँती।
मनुजदसा कैसे कहि जाती॥

निषादराज की कथा को थोड़ा विस्तार देकर साधारण कोटि के भक्त मनुष्यों के स्वभाव को तुलसीदास ने अधिक खोलकर दिखाने का प्रयत्न किया है। कवितावली और मानस, दोनों में इस प्रसंग की कथा बड़ी ही सरसता से लिखी गई है।

केवट राम को पार उतारने के पहले उनका चरण धो लेना चाहता है और अत्यंत प्रेमालु हृदय से कहता है।—

एहि घाट ते थोरिक दूर अहै,
कटिलौं जल-थाह देखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरे तरनी,
घरनी घर क्यों समुझाइहौ जू?
तुलसी अवलंब न और कछू,
लरिका केहि भाँति जिआइहौ जू?
बरु मारिये मोहि, बिना पग धोए
हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौ जू॥
रावरे दोष न पायँन को,
पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।

पाहन ते बन-बाहन काठ को
　　　　कोमल है जल खाइ रहा है।
शवन पायँ पखारि कै नाव
　　　　चढाइहौं, आयसु होत कहा है?
तुलसी सुनि केवट के बर बैन
　　　　हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
　　　　केवट की जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू!
　　　　हौ दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढाइहौं?
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
　　　　प्रभु सों निषाद ह्वै कै बाद न बढाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरे सों साँची कहौं,
　　　　बिना पग धोए नाथ नाव न चढाइहौं॥
　　　　　　　　　　　　(कवितावली)

'मानस' मे इस प्रसग का यह वर्णन है।—

मॉगी नाव न केवटु आना।
कहइ तुम्हार मरमु मै जाना॥
चरन-कमल-रज कहँ सबु कहई।
मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई।
पाहन ते न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई।
बाट परैं मोरि नाव उडाई॥
एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू।
नहि जानउँ कछु अउर कबारू॥

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू ।
मोहि पदपदुम पखारन कहहू ॥

पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव,
न नाथ उतराई चहउँ ।
मोहि राम राउर आन दसरथ,
सपथ सब साँची कहउँ ।
बरु तीर मारहु लषनु पै,
जब लगि न पाय पखारिहउँ ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ
कृपालु पारु उतारिहउँ ॥

सुनि केवट के बयन,
प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहँसे करुना अयन,
चितइ जानकी लषन तन ॥

हनुमान् ने लंका में आग लगा दी थी। उसका वर्णन तुलसीदास ने ऐसी सजीव भाषा में किया है, मानो आग उनके सामने ही लगी थी, और वे आग में व्याकुल स्त्री-पुरुषों की दशा को अपनी आँखों से देखकर लिखते जाते थे :—

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत
जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे !
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी भाभी,
ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे !
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे !
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे !

'पानी पानी पानी सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति है परानी, गति जानि गजचालि है।
बसन बिसारैं, मनि भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं "क्यों हूँ कोऊ पालिहै?"
तुलसी मँदोवै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै
"काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है"।
बापुरो बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो,
"बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै" ॥

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिँ,
सकै ना बिलोकि बेष केसरीकुमार को।
मीजि मीजि हाथ, धुनैं माथ दसमाथ तिय,
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को।
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो,
जिय की परी सँभार, सहन भँडार को?
खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनाद,
"बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को" ॥

हाट, बाट, कोटि ओट, अट्टनि, अगार, पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सों तहाँ लोग चले भागि हैं ॥
बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं
बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं
"चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागिहैं" ॥

'लागि लागि आगि' भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।

छूटे बार, बसन उघारे, धूमधुंध अंध,
कहै बारे बूढ़े 'बारि बारि' बार बार ही।
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति
"तात तात ! तौंसियत, झौंसियत झारहीं" ॥

लपट कराल ज्वाल जालमाल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे ?
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
"परे पाइमाल जात, "भ्रात ! तू निबाहि रे।
प्रिय। तू पराहि, नाथ नाथ ! तू पराहि, बाप,
बाप ! तू पराहि, पूत पूत ! तू पराहि रे"
तुलसी बिलोकि लोग ब्याकुल बिहाल कहैं
"लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे" ॥

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए।
अध ऊर्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिये।
मूँदे आँखि हीय मे, उघारे आँखि आगे ठाढो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोऊ को किये ?
"लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए" ॥

एक करै धौंज, एक कहै काढौ सौंज,
एक औंजि पानी पीकै कहै 'बनत न आवनो'।
एक परे गाढ़े, एक डाढत ही काढ़े, एक
देखत हैं ठाढ़े, कहैं 'पावक भयावनो'।

तुलसी कहत एक "नीके हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छाँडै बाल गाल को बजावनो।
"धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हौ रावरे या,
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो" ॥

कोपि दसकंध तब प्रलय पयोद बोले,
रावन रजाइ धाइ आए जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति "लंक बरत बुताओ बेगि,
बानर बहाइ मारौ महा बारि बोरि कै"।
"भले नाथ!" नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ,
बरषैं मुसलधार बार बार घोरि कै।
जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै॥

पान, पकवान बिधि नानाको, सँधानो, सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।
कनक किरीट कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ
काढत कहार, सब जरे भरे भारहीं।
प्रबल अनल बाढै, जहाँ काढै तहाँ डाढै,
झपट लपट भरे भवन भँडारहीं।
तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारहीं॥

हाट बाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि पागि ढेरी कीन्ही भली भाँति भाय सों।
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेवाये चित चाय सों।

तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं,
"बावरे सुरारि बैर कीन्हों रायराम सों" ॥
(कवितावली)

देखिये, कैसा सजीव वर्णन है। हनुमान् कितनी तेजी से दौड-दौड़कर आग लगा रहे थे, इसे 'मूँदे आँखि हीय मे उघारे आँखि आगे ठाढ़ो' इस एक चरण मे कहकर तुलसीदास ने स्फूर्ति-कल्पना की हद कर दी। मानस मे इस प्रसग का ऐसा सजीव वर्णन नहीं है।

अब जरा राम के शिशु-रूप का वर्णन सुनिये।—

कटि किंकिनि पग पैंजनि बाजै।
पंकज पानि पहुँचियाँ राजै॥
कठुला कंठ बघनहा नीके।
नयन सरोज मयन सरसी के॥
लटकन लसत ललाट लटूरीं।
दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं॥
मुनि मन हरत मंजु मसि बुन्दा।
ललित बदन बलि बालमुकुन्दा॥
कुलही चित्र बिचित्र झँगूली।
निरखत मातु मुदित मन फूली॥
गहि मनि खंभ डिंभ डगि डोलत।
कलबल बचन तोतरे बोलत॥
किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि।
देत परम सुख पितु अरु अबनि॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है।
गावत प्रेम पुलकि तुलसी है॥

एक दूसरे गीत में और भी चित्ताकर्षक वर्णन है। इसकी सरसता का अनुभव किसी माता ही का हृदय सबसे अधिक कर सकता है।—

ललित सुतहि लालति सचु पाये।
कौसल्या कल कनक अजिर महँ
सिखवत चलन अँगुरियाँ लाए॥
कटि किंकिनी, पैंजनी पाँयनि
बाजति रुनझुन मधुर रेंगाए।
पहुँची करनि कंठ कठुला बन्यो
केहरि नख मनि जरित जराए॥
पीत पुनीत बिचित्र झँगुलिया
सोहति स्याम सरीर सोहाए।
दँतियाँ द्वै द्वै मनोहर मुख छबि
अरुन अधर चित लेत चोराए॥
चिबुक कपोल नासिका सुन्दर
भाल तिलक मसि बिंदु बनाए।
राजत नयन मंजु अञ्जनजुत
खंजन कंज मीन मद नाए॥
लटकन चारु भ्रुकुटिया टेढ़ी,
मेढ़ी सुभग सुदेस सुभाए।
किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि
डरपति जननि पानि छुटकाए॥
गिरि घुटुरुवनि टेक उठि अनुजनि
तोतरि बोलत पूप देखाए।
बाल-केलि अवलोकि मातु सब
मुदित मगन आनँद न अमाए॥

एक गीत और।—

छोटी-छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीलीं छोटी,
नख जोति मोती मानो कमल दलनि पर।
ललित आँगन खेलें, ठुमुक ठुमुक चलै
झुँझुनु झुँझुनु पॉय पैंजनी मृदु मुखर॥

किंकिनी कलित कटि हाटक जटित मनि,
मंजु कर कंजनि पहुँचियाँ रुचिर तर।
पियरी झीनी झँगुली सॉवरे सरीर खुली,
बालक दामिनी ओढी मानो बारे बारि धर॥

उर बघनहा, कंठ कठुला, झँडुले केस,
मेढी लटकन मसि बिंदु मुनि मन हर।
अंजन रंजित नैन, चित चोरै चितवनि,
मुख सोभा पर वारौं अमित असमसर॥

चुटकी बेंजावती नचावती कौसल्या माता,
बालकेलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि किलकि हँसैं, द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं,
तुलसी के मन बसैं तोतरे वचन वर॥
(गीतावली)

अब राम के बाल-स्वभाव का चित्र देखिये। राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम की ओर जा रहे हैं। वे वन की शोभा देखते हुए, पानी पीते, फल खाते, नाचते-कूदते और कलोलें करते हुये चले जा रहे हैं। मुनि भयभीत होकर, कि कहीं ये वन में भटक न जायँ, उनको बुला-बुलाकर साथ कर लिया करते हैं। तुलसीदास ने इस अवसर पर बालक की कौतूहल-प्रियता का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन किया है।—

पैठत दरनि, मिलनि चढ़ि चितवत
खग मृग बन रुचिराई।
सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि
पुनि पुनि लेत बुलाई॥

खेलत चलत करत मग कौतुक,
बिलँबत सरित सरोवर तीर।
तोरत लता सुमन सरसीरुह,
पियत सुधा सम सीतल नीर॥

बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर,
पुनि पुनि बरनत छाँह समीर।
देखत नटत केकि, कल गावत,
मधुप मराल कोकिला कीर॥

नयननि को फल लेत निरखि खग,
मृग सुरभी ब्रजबधू अहीर।
तुलसी प्रभुहि देत सब आसन,
निज निज मन मृदु कमल कुटीर॥

(गीतावली)

दोनों राजकुमारों के शरीर में कहीं धूल लगी है, कहीं कीचड़। ये इस बात के प्रमाण हैं कि वे मुनि से लुक-छिपकर खेल खेल लिया करते थे।—

सिरनि सिखंड सुमन दल मंडन,
बाल सुभाय बनाए।
केलि अंक तनु रेनु पंक जनु,
प्रगटत चरित चोराए॥

एक ओर तुलसीदास राम के सरल बाल-स्वभाव का चित्र

खींचते हैं, तो दूसरी ओर वे श्रीकृष्ण-के नटखटपन को भी व्यक्त करने में अपना जोड़ नहीं रखते। ऐसे अवसरों पर हम तो अपने महाकवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा देखकर चकित हो जाते हैं।

कोई ग्वालिन यशोदा से श्रीकृष्ण की शिकायत कर रही है।—

तोहिं स्याम की सपथ जसोदा,
आइ देखु गृह मेरे।
जैसी हाल करी यहि ढोटा
छोटे निपट अनेरे॥
गोरस हानि सहौं न कहौं कछु
यहि ब्रजबास बसेरे।
दिनप्रति भाजन कौन बेसाहै
घर निधि काहूके रे?
किए निहोरो हँसत, खिझे तें
डाटत नयन तरेरे।
अबहीं तें ये सिखे कहाधौं
चरित ललित सुत तेरे॥
बैठो सकुचि साधु भयो चाहत
मातुबदन तन हेरे।
तुलसिदास प्रभु कहौं ते बातें
जे कहि भजे सबेरे?

(श्रीकृष्ण-गीतावली)

देखिये, श्रीकृष्ण उसका प्रतिवाद कैसे वाक्-चातुर्य से करते हैं।—

मोकहँ झूठेहुँ दोष लगावहिं।
मैया! इन्हहि बानि परगृह की,
नाना जुगुति बनावहिं॥

इन्हके लिये खेलिबो छाँड्यौं
तऊ न उबरन पावहिं ।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस
देन उरहनो आवहिं ॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि
मिस करि उठि उठि धावहिं ।
करहि आपु सिर धरहिं आन के
बचन बिरंचि हरावहिं ॥
मेरी टेव बूझि हलधर को,
संतत संग खेलावहिं ।
जे अन्याउ करहिं काहूको,
ते सिसु मोहिं न भावहिं ॥
सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि
हँसि हँसि बदन दुरावहिं ।
बाल गोपाल केलि कल कीरति
तुलसिदास मुनि गावहिं ॥
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

देखिये न, प्रत्येक वाक्य में श्रीकृष्ण का नटखटपन झलक रहा है। 'जे अन्याउ करहिं काहू को, ते सिसु मोहिं न भावहिं' में तो सफाई की हद हो गई है।

राम के विवाह के लिये जो मंडप बनाया गया था, तुलसीदास ने एक चतुर कारीगर की तरह उसको सुन्दर से सुन्दर बनाने में अपनी सम्पूर्ण कला-निपुणता लगा दी है।—

पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना ।
जे बितान बिधि कुसल सुजाना ॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा ।
बिरचे कनक-कदलि के खंभा ॥

हरित मनिन्ह के पत्र फल,
पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति,
मन बिरंचि कर भूल॥

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे।
सरल सपरव परहिं नहिं चीन्हे॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई।
लखि नहिं परइ सपरन सुहाई॥
तेहिके रचि पचि बंध बनाये।
बिच बिच मुकुता दाम सुहाये॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा।
चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥
किये भृंग बहुरंग बिहगा।
गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥
सुर प्रतिमा खभन्हि गढ़ि काढी।
मंगल द्रव्य लिये सब ठाढी॥
चौके भाँति अनेक पुराई।
सिंधुर मनि-मय सहज सुहाई॥

सौरभ पल्लव सुभग सुठि
किये नीलमनि कोरि।
हेमबौर मरकत घवरि
लसत पाटमय डोरि॥

रचे रुचिर बर बंदनवारे।
मनहुँ मनोभव फन्द सवाँरे॥
मंगल कलस अनेक बनाये।
ध्वज पताक पट चँवर सुहाये॥

दीप मनोहर मनिमय नाना ।
जाइ न बरनि विचित्र बिताना ॥

एक गरीब गृहस्थ के घर में जन्म लेकर, आजीवन दीनता ही को मनुष्यता का शृंगार समझनेवाले कवि का इस प्रकार मंडप सजाना एक कौतूहल की बात है। इस मंडप ने कवि की प्रतिभा को भी अलंकृत कर दिया है।

अब नगर की शोभा के वर्णन के साथ स्त्रियों के एक रस्म का वर्णन भी सुनिये ।—

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि ।
रामपुरी मंगलमय पावनि ॥
तदपि प्रीति कै रीति सुहाई ।
मंगल रचना रची बनाई ॥
ध्वज पताक पट चामर चारू ।
छावा परम विचित्र बजारू ॥
कनक कलस तोरन मनिजाला ।
हरद दूब दधि अच्छत माला ॥

मंगलमय निज निज भवन
लोगन्ह रचे बनाइ ।
वीथी सींची चतुरसम
चौके चारु पुराइ ॥

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि ।
सजि नवसप्त सकल द्युति दामिनि ॥
बिधुबदनी मृग-सावक-लोचनि ।
निजसरूप रति-मान-बिमोचनि ॥
गावहिं मंगल मंजुल बानी ।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी ॥

भूप भवन किमि जाइ बखाना ।
बिस्वबिमोहन रचेउ बिताना ॥
मंगल द्रव्य मनोहर नाना ।
राजत बाजत बिपुल निसाना ॥
कतहुँ बिरद बंदी उच्चरहीं ।
कतहुँ वेदधुनि भूसुर करहीं ॥
गावहिं सुन्दरि मंगलगीता ।
लेइ लेइ नाम राम अरु सीता ॥
बहुत उछाहु भवन अति थोरा ।
मानहु उमगि चला चहुँ ओरा ॥
सजि आरती अनेक बिधि,
मंगल सकल सवाँरि ।
चलीं मुदित परिछन करन,
गजगामिनि बरनारि ॥
बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि ।
सब निज तनछबि रति मद मोचनि ॥
पहिरे बरन बरन बर चीरा ।
सकल बिभूषन सजे सरीरा ॥
सकल सुमंगल अंग बनाये ।
करहिं गान कलकंठ लजाये ॥
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं ।
चाल बिलोकि काम गज लाजहिं ॥

जगत् के प्रपंच से तटस्थ रहनेवाले भक्त और चरित्रवान तुलसीदास ने जगत् के सहज सौन्दर्य से अपनी दृष्टि नहीं फेरी थी, और इसीसे प्रमाणित होता है कि वे सर्वांश में कवि थे। मंगल-कार्यों के लिये होनेवाले समारोह में उन्होंने स्त्रियों को

विधुवदनी, मृगशावक-लोचनी, रति-मान-मोचिनी और गज-गामिनी आदि विशेषणों से सजाकर ही बाहर आने दिया है। और 'विधुवदनी सब, सब मृगलोचनि' में दो बार 'सब' रखकर तो उन्होंने अपने हृदयस्थ शृंगार-समुद्र को हमारे सामने उँडेल ही-सा दिया है।

आगे की चौपाइयों में तुलसीदास स्वयं, सुकवि की हैसियत से, सीता के सौन्दर्य-वर्णन में प्रवृत्त होते हैं। इस भय से कि कहीं सहृदय-जन उन्हें कुकवि न कह बैठे, सुकवि की जिम्मेदारी अनुभव करते हुये उनकी दृष्टि सौन्दर्य के भिन्न-भिन्न केन्द्रों पर दौड रही है, पर नर-लोक और देव-लोक, कहीं पर भी उन्हें कोई सौन्दर्य-राशि सीता की उपमा को नहीं मिलती। साथ ही, प्रारंभ ही में 'जगदंबिका' शब्द डालकर वे अपनी खोज को सात्विकता की पोशाक भी पहना लेते हैं।—

सियसोभा नहिं जाइ बखानी।
जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी।
प्राकृत - नारि - अंग - अनुरागी॥
सिअ बरनिअ तेहि उपमा देई।
कुकबि कहाइ अजस को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय महँ सीया।
जग अस जुअति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तनुअरध भवानी।
रति अतिदुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही।
कहिय रमा सम किमि बैदेही॥

जौं छबि-सुधा-पयोनिधि होई ।
परम - रूप - मय कच्छप सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू ।
मथई पानिपंकज निज मारू ॥
एहि बिधि उपजइ लच्छि जब,
सुन्दरता - सुख - मूल ।
तदपि सकोचसमेत कबि,
कहहिं सीय सम तूल ॥

देखिये न, इतने पर भी कवि को सकोच ही रहा । और भी देखिये, कवि ने किस चतुराई से गिरा, भवानी, रति और रमा के दोष दिखाकर उन्हे सीता की तुलना के अनुपयुक्त साबित किया है ।

जरा कवि के शब्द-कौशल पर भी ध्यान दीजिये । छवि के जितने पर्यायवाची शब्द है, जैसे, रूप, शोभा, शृङ्गार और सुन्दरता, प्रायः वे सब इस वर्णन में आगये हैं और साथ ही शृङ्गार का देवता 'मार' भी ।

रामचन्द्र से धनुष टूटेगा या नहीं, इस असमजस मे पडी हुई सीता के मन के उतार-चढ़ाव का वर्णन भी देखिये, कैसा मनोहर है ।—

देखि देखि रघुबीर तन
सुर मनाव धरि धीर ।
भरे बिलोचन प्रेमजल
पुलकावली सरीर ॥
नीके निरखि नयन भरि सोभा ।
पितु पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥

अहह तात दारुन हठ ठानी।
समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥

सचिव सभय सिख देइ न कोई।
बुध समाज बड अनुचित होई॥

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा।
कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा॥

बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा।
सिरिस-सुमन-कन बेधिय हीरा॥

सकल सभा कै मति भइ भोरी।
अब मोहि संभु चाप गति तोरी॥

निज जडता लोगन्ह पर डारी।
होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी॥

अति परिताप सीय मन माहीं।
लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥

राम ने धनुष तोड डाला। सीता का मनोरथ पूरा हुआ। अब सीता जयमाल पहनाने के लिये अपने हृदय के देवता के सम्मुख खड़ी होती है। कवि अपने कार्य में लगा और वह एक नवोढा के हृदय मे बैठकर उसके हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को ध्वनित करने लगा।—

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी।
छबि-गन-मध्य महाछबि जैसी॥

कर सरोज जयमाल सुहाई।
बिस्व-बिजय-सोभा जनु छाई॥

तन सकोच मन परम उछाहू।
गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू॥

जाइ समीप राम छबि देखी ।
रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी ॥
चतुर सखी लखि कहा बुझाई ।
पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत जुगल कर माल उठाई ।
प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला ।
ससिहि सभीत देत जयमाला ॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली ।
सिय जयमाल राम उर मेली ॥

कवि ने यहाँ कवि-कौशल की इति कर दी है । जयमाल लेकर सीता का राम के सम्मुख जाना, उन का रूप देखकर आनंद-विभोर हो जाना, सखी का उन्हे सचेत करना, और जयमाल पहनाने के लिये सीता का हाथ उठाना, पर प्रेम-विवश होकर पहना न सकना, ये एक-से-एक मनोहर दृश्यो की लड़ी कवि हमारे सामने उपस्थित कर देता है, और दो नाल सहित कमल चद्रमा को जयमाल पहनाने के लिये बहुत धीरे-धीरे उठ रहे हैं, इसके लिए 'सभीत' शब्द डालकर वह इस तमाम दृश्य मे जान डाल देता है । इस छवि को देखकर सहेलियाँ ही नहीं, कवि भी गा उठा है, और हम भी उसका साथ देंगे ।

राम और सीता विवाह के अवसर पर परिक्रमा कर रहे हैं । उस अवसर पर सीता के मन की दशा कवि के शब्दो में कैसी सरस होगई है ।—

कुँअरु कुँअरि कल भावँरि देहीं ।
नयन लाभु सब सादर लेहीं ॥

जाइ न बरनि मनोहर जोरी।
जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी॥

राम सीय सुन्दर परिछाहीं।
जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं॥

मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा।
देखत राम बिबाहु अनूपा॥

दरस लालसा सकुच न थोरी।
प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥

वाह वा, इस प्रसग पर कवि के हृदय की प्रत्येक शिरा मादक रस का पान कर रही है; और उसकी हृत्तंत्री के प्रत्येक तार से आनद की झकार निकल रही है।—

भये मगन सब देखनिहारे।
जनक समान अपान बिसारे॥

प्रमुदित मुनिन्ह भावँरी फेरी।
नेग सहित सब रीति निबेरी॥

रामु सीय सिर सेंदुर देहीं।
सोभाँ कहि न जात बिधि केहीं॥

अरुन पराग जलजु भरि नीके।
ससिहि भूष अहि लोभ अमीके॥

निज पानि मनि महँ देखि प्रति-
मूरति सुरूप निधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि
बिरह भय बस जानकी।
कौतुक विनोद प्रमोद प्रेम
न जाइ कहि जानहिं अली।

बर कुँअरि सुन्दर सकल सखी
लिवाइ जनवासहिं चली ॥

राम सीता की माँग मे सिंदूर डाल रहे है। सीता ककण के मणि मे राम का प्रतिबिम्ब देख रही हैं और इस खयाल से हाथ नहीं हिलने देतीं, कि कहीं वह प्रतिमूर्त्ति दृष्टि से हट न जाय। कैसी मधुर कल्पना है! सीता के अनर्जगत् मे जो कुछ घटनाये हो रही हैं, कवि एक चतुर जासूस की तरह उनको लिखता चला जा रहा है।

'न जाइ कहि जानहि अली' मे कुछ और गूढ बाते हैं, कवि ने उनकी ओर इशारा करके अपनी वह जानकारी भी प्रकट कर दी है।

यही भाव कवितावली मे कुछ अधिक स्पष्टरूप मे व्यक्त किया गया है।—

दूलह श्री रघुनाथ बने
दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि,
वेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाही ॥
राम को रूप निहारति जानकी
ककन के नग की परछाहीं।
या ते सबै सुधि भूलि गई
कर टेकि रही पल टारति नाहीं ॥

अब जरा महाराज दशरथ की मनोवेदना का चित्र देखिये। राम को वनवास देने के लिये कैकेयी का माँग सुनकर महाराज की जो दशा हुई है, कवि ने उसके एक-एक अङ्ग को एक-एक उपमा के साथ जोड़कर उसे करुणरस से ओतप्रोत कर दिया है।—

सुनि मृदु वचन भूप हिय सोकू ।
ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा ।
जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू ।
दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन ।
तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथ सुर-तरु-फूला ।
फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई ।
दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई ॥
कवने अवसर का भयउ
गयउँ नारि बिस्वास ।
जोग-सिद्धि-फल-समय जिमि
जतिहि अविद्या नास ॥

निषाद एक ग्रामीण गृहस्थ था। राज-परिवार के सुखों से वह शायद ही परिचित रहा हो। फिर भी वनवास के अवसर पर राम, लक्ष्मण और सीता के शारीरिक कष्टों का उसने जो अनुभव किया है, उसे पढ़कर हृदय आर्द्र हो उठता है। तुलसीदास हरएक श्रेणी के लोगों के मनोभावों से खूब ही अवगत थे। देखिये।—

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू ।
भयउ प्रेमबस हृदय बिषादू ॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई ।
बचन सप्रेम लषन सन कहई ॥

भूपति भवनु सुभाय सुहावा।
सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौवारे।
जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥

आगे के दोहे मे अनुप्रास की भी छटा देखने योग्य है।—

सुचि सुबिचित्र सुभोगमय
सुमन सुगन्धु सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ
सब बिधि सकल सुपास।

बिबिध बसन उपधान तुराई।
छीरफेन मृदु बिसद सुहाई॥
तहँ सियराम सयन निसि करहीं।
निज छबि रति मनोज मदु हरहीं॥
तेइ सिय रामु साथरी सोये।
स्रमित बसन बिनु जाहिं न जोये॥
मातु पिता परिजन पुरबासी।
सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं।
महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ।
ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥
रामचंदु पति सो बैदेही।
सोवत महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू।
करमु प्रधान सत्य कह लोगू॥

कैकयनंदिनि मंदमति,
कठिन कुटिलपन कीन्ह ।
जेहि रघुनंदनु जानकिहिं,
सुखु अवसरु दुखु दीन्ह ॥

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी ।
कुमति कीन्ह सबु विस्व दुखारी ॥

भयउ विषादु निषादहि भारी ।
रामु सीय महि सयन निहारी ॥

अब हम एक लम्बा वर्णन देते हैं, जिसमे मानस-जगत् के राजकवि तुलसीदास ने हमे ग्रामीण मनुष्यों के स्वभाव की अद्भुत छटा दिखलाई है। गाँव के भोले-भाले, सरल स्वभाववाले, सेवाभाव से तरगित स्त्री-पुरुषों के वचन, व्यवहार और अकृत्रिम युक्तियों का जो दिग्दर्शन कवि ने कराया है, वह ऐसा स्वाभाविक है कि उसे बार-बार पढकर भी तृप्ति नहीं होती। प्रत्येक चौपाई के साथ गाँव के मनोहर दृश्य पाठक के सामने आते रहते हैं।

भरद्वाज से मिलकर, यमुना को पार करके, लक्ष्मण और सीता-सहित राम आगे जा रहे हैं। उस समय का वर्णन है।—

सुनत तीरवासी नरनारी ।
धाये निज निज काज बिसारी ॥

वे नाम और ग्राम पूछने मे सकुचाते हैं।—

अति लालसा सबहिं मन माहीं ।
नाउ गाउँ बूझत सकुचाहीं ॥

जे तिन्ह महँ बयबृद्ध सयाने ।
तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने ॥

सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई ।
बनहि चले पितु आयसु पाई ॥

गाँव के बुड्ढों से सब हाल सुनकर वे पछताते और आश्चर्य करते हैं।—

सुनि सविषाद सकल पछिताहीं।
रानी राय कीन्ह भल नाहीं।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे।
जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥

राम को रास्ते में जो पथिक मिलते हैं, वे संकोच छोड़कर, भोलेपन में, राम से बातें करते हैं, और परिचय प्राप्त करना चाहते हैं।—

पथिक अनेक मिलहिं मगु जाता।
कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राजलखन सब अङ्ग तुम्हारे।
देखि सोचु अति हृदय हमारे॥
मारग चलहु पयादेहि पायें।
ज्योतिष झूठ हमारेहि भायें॥
अगमु पन्थु गिरि कानन भारी।
तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥

पथिकगण स्वेच्छा से अपने साथी पथिक राम को सहायता देने को तत्पर हो जाते हैं। गाँववालों की सिधाई और उनकी सात्विक भावनाओं का इससे अच्छा चित्र और क्या होगा ?—

करि केहरि बन जाइ न जोई।
हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई।
फिरब बहोरि तुम्हहिं सिरु नाई॥

राम एक आदर्श शिष्ट पुरुष की तरह उनको धन्यवाद देते हैं।—

एहि बिधि पूछहि प्रेम बस,
पुलकगात जल नैन।
कृपासिन्धु फेरहिं तिन्हहि,
कहि बिनीत मृदु बैन॥

रास्ते में गाँव भी मिलते हैं। गाँववाले इन तीनों पथिकों को देखने के लिए दौड़ आते हैं।—

सीता - लषन - सहित रघुराई।
गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी।
चलहिं तुरत गृहकाज बिसारी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं।
लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥

कोई राम के साथ चलते हैं, कोई प्रेम-वश शिथिल हो जाते हैं और कोई बरगद की छाया में पत्ते बिछाकर उनको बैठने को कहते हैं।—

रामहिं देखि एक अनुरागे।
चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी।
होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

एक देखि बट छाँह भलि,
डासि मृदुल तृन पात।
कहहि गवाँइय छिनकु स्रमु,
गवनब अबहि कि प्रात॥

'गवनब अबहिं कि प्रात' मे ग्रामीण जनो के स्वभाव की सरलता साहित्यिक मधुरता की स्रोतस्विनी-सी हो गई है।—

कोई दौड़कर जल लाते हैं और उनकी थकान मिटाना चाहते है।—

एक कलस भरि आनहिं पानी।
अँचइय नाथ कहहिं मृदु बानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी।
राम कृपालु सुसील बिसेखी॥
जानी स्रमित सीय मन माहीं।
घरिक बिलम्बु कीन्ह बट छाहीं॥
मुदित नारि नर देखहि सोभा।
रूप अनूप नयन मनु लोभा॥

गाँव की भोली-भाली स्त्रियाँ राम के पास न जाकर सीता के निकट जाती है और स्त्री-स्वभाव-सुलभ लज्जाशीलता, ग्राम्य जीवन-सुलभ भीरुता और स्वाभाविक सकोच और नम्रतापूर्वक एक अपरिचित का परिचय पूछती हैं।—

सीय समीप ग्राम तिय जाहीं।
पूछत अति सनेह सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिं पाये।
कहहिं बचन मृदु सरस सुभाये॥

स्त्रियाँ कैसा स्वाभाविक प्रश्न और कितने विनय-पूर्वक पूछती हैं।—

राजकुमारि बिनय हम करहीं।
तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं॥

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी ।
बिलगु न मानब जानि गवाँरी ॥

राजकुँवर दोउ सहज सलोने ।
इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने ॥

स्यामल गौर किसोर बर,
सुंदर सुखमा अयन ।
सरद सर्बरी नाथ मुखु,
सरद सरोरुह नयन ॥

कोटि मनोज लजावनि हारे ।
सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ॥

उनके प्रश्नो के उत्तर देते समय सीता की स्त्री-सुलभ लज्जा उनके अग-अग मे चमत्कृत हो उठती है ।—

सुनि सनेहमय मंजुल बानी ।
सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥

तिन्हहि बिलोकि बिलोकत धरनी ।
दुहुँ सकोच सकुचति बर बरनी ॥

सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी ।
बोली मधुर बचन पिकबयनी ॥

सहज सुभाय सुभग तन गोरे ।
नामु लषनु लघु देवर मोरे ॥

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी ।
पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥

खंजन मंजु तिरीछे नयननि ।
निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि ॥

सीता का मन मे मुसकाना और ग्राम्य स्त्रिया की ओर देखकर पृथ्वी की ओर देखने लगना यह कितना स्वाभाविक है ! कवि ने इस अवसर पर सुन्दर स्वभाव के स्वर्ग की-सी सृष्टि की है।

सीता का मौन उत्तर सुनकर गाँव की स्त्रियाँ पुलकित हो उठती हैं ।—

भईं मुदित सब ग्राम बधूटी ।
रंकन्ह रायरासि जनु लूटी ॥

अति सप्रेम सिय पाय परि,
बहु बिधि देहिं असीस ।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह,
जब लगि महि अहि सीस ॥

राम सुस्ताकर आगे चले । गाँव के स्त्री-पुरुष बहुत उदास होकर, दैव को दोष देते हुए, वापस गए ।—

फिरत नारि नर अति पछिताहीं ।
दैयहि दोषु देहिं मन माहीं ॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं ।
बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥
निपट निरंकुस निठुर निसंकू ।
जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥
रूखु कलपतरु सागरु खारा ।
तेहि पठये बन राजकुमारा ॥
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू ।
कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना ।
रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥

ए महि परहिं डासि कुस पाता ।
सुभग सेज कत सृजत विधाता ॥
तरु-बर-बास इन्हहिं विधि दीन्हा ।
धवल धामु रचि रचि स्रमु कीन्हा ॥

जौं ए मुनिपट धर जटिल,
सुन्दर सुठि सुकुमार ।
बिबिध भाँति भूषन बसन,
बादि किये करतार ॥

जौं ए कन्द मूल फल खाहीं ।
बादि सुधादि असन जग माहीं ॥

विधाता की इससे अधिक मर्मभेदिनी भर्त्सना और क्या हो सकती है ।

एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय,
लेहिं नयन भरि नीर ।
किमि चलिहहिं मारग अगम,
सुठि सुकुमार सरीर ॥

सीता की दशा देखकर स्त्रियाँ विशेषरूप से आहत होती हैं ।—

नारि सनेह बिकल बस होहीं ।
चकई साँझ समय जनु सोहीं ॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी ।
गहबरि हृदय कहहिं बर बानी ॥
परसत मृदुल चरन अरुनारे ।
सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥

जौं जगदीस इन्हहिं बनु दीन्हा ।
कस न सुमनमय मारग कीन्हा ॥
जौ मॉगा पाइय बिधि पाहीं ।
ए रखिअहि सखि आँखिन्ह माहीं ॥

गॉव के कुछ लोग, जो पीछे आये, देखनेवालों से तीनों पथिको की प्रशसा सुनकर उन्हे देखने के लिये आगे दौडे गये ।—

जे नरनारि न अवँसर आये ।
तिन्ह सियरामु न देखन पाये ॥
सुनि सरूप बूझहिं अकुलाई ।
अब लगि गये कहॉ लगि भाई ॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाईं ।
प्रमुदित फिरहिं जनम फलु पाई ॥
अबला बालक बृद्ध जन,
कर मीजहि पछितातहिं ।
होहिं प्रेम बस लोग इमि,
राम जहॉ जहँ जाहिं ॥

रास्ते मे जितने गॉव मिले, सब की ऐसी ही दशा हुई ।—

गॉव गॉव अस होइ अनंदू ।
देखि भानु कुल कैरव चंदू ॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं ।
ते नृप रानिहिं दोपु लगावहिं ॥
कहहिं एक अति भल नरनाहू ।
दीन्ह हमहिं जेहि लोचन लाहू ॥

कहहिं परस्पर लोग लोगाई ।
बातैं सरल सनेह सुहाई ॥
ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये ।
धन्य सो नगरु जहाँ तें आये ॥
धन्य सो देसु सैलु वन गाऊँ ।
जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ ॥
सुखु पायेउ विरचि रचि तेही ।
ए जेहि के सब भाँति सनेही ॥
राम लषन पथि कथा सुहाई ।
रही सकल मग कानन छाई ॥

कवितावली में भी इस प्रसंग का वर्णन है; पर इतना मधुर नहीं। गीतावली के पदों में कवितावली से अधिक रस है जरूर, पर वह भी मानस के वर्णन के समकक्ष नहीं कहा जा सकता। कवितावली और गीतावली से इस प्रसंग के थोड़े-से उदाहरणों का यहाँ दिया जाना पाठकों के लिए सम्भवतः रुचिकर होगा।—

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच,
विलोकहु री सखी ! मोहिं सी ह्वै ।
मग जोग न कोमल क्यों चलिहैं
सकुचात मही पदपंकज छ्वै ॥
(कवितावली)

'विलोकहु री सखी ! मोहिं सी ह्वै' में गूढ़ मनोभाव व्याप्त है। लैला काली थी, किसी ने मजनूँ से यह कहा, तब उसने जवाब दिया—मेरी आँखों से देखो। यद्यपि ठीक यही भाव यहाँ घटित नहीं होगा, क्योंकि यहाँ तो लैला की तरह काला दृश्य नहीं है, बल्कि परम आकर्षक सौन्दर्य है। पर देखनेवाले की

तुलना अवश्य मजनूँ से की जा सकती है: क्योंकि प्रिय के दर्शन में जो सुख हृदय में उमड़ता है, वह जब शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, तब कहना ही पड़ता है कि मेरे नेत्रों से देखो, या मेरे-जैसा होकर देखो।—

सॉंवरे गोरे सलोने सुभाय
मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे
सिर सोहैं जटा मुनि वेष कियो है।
संग लिये बिधु बैनी बधू
रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि
क्यों चलिहैं, सकुचात हियो है॥
(कवितावली)

चलता है कौन ? हृदय दुखता है किसका ? देखिये न, कैसी सुकुमार कल्पना है !

सखि ! नीके कै निरखि
कोऊ सुठि सुंदर बटोही।
मधुर मूरति मदनमोहन जोहन जोग
बदन सोभा सदन देखि हौं मोही॥
सखिहि सुसिख दई प्रेम मगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनी ओही।
तुलसी रही है ठाढ़ी, पाहन गढ़ी सी काढ़ी,
कौन जानै कहाँ ते आई कौन की को ही॥
(गीतावली)

आत्म-विस्मरण का कैसा सुन्दर चित्र है !

सखि ! सरद विमल बिधुबदनि वधूटी ।
ऐसी ललना सलोनी, न भई है, न है, न होनी,
रत्यो रची विधि जो छोलत छबि छूटी ॥
तुलसी निरखि सिय, प्रेमबस कहै तिय,
लोचन सिसुन्ह देहु अमिय घूटी ॥
(गीतावली)

सीता को बनाते समय ब्रह्मा ने उनकी मूर्ति को छील-छाल कर ठीक किया था, उसी छीलन को लेकर उसने रति का निर्माण किया। इस कथन में सत्य और अत्युक्ति दोनो का रस मिला हुआ है। लोचन-रूपी शिशुओ को अमृत की घूँटी पिलाने की कल्पना नई और बड़ी ही मनोहर है।

सजनी ! हैं कोउ राजकुमार ।
पंथ चलत मृदु पद कमलनि दोउ
सील रूप आगार ॥
जुगल बीच सुकुमारि नारि इक
राजति बिनहिँ सिँगार ।
इन्द्रनील हाटक मुकुतामनि
जनु पहिरे महि हार ॥
(गीतावली)

जरा इस उत्प्रेक्षा का आनन्द लीजिये—नील-मणि की तरह श्याम वर्ण के राम आगे चल रहे हैं, सुवर्ण के रग की सीता मध्य में हैं, और मोतियो की तरह गौर वर्ण के लक्ष्मण पीछे हैं, ऐसा जान पड़ता है, मानो पृथ्वी ने तीन रग के रत्नो का हार पहन रक्खा है !

जेहि जेहि मग सिय राम लखन गये
तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे ।

निरखि निकाई अधिकाई विथकित भये
　　बच बिय नैनसर सोभा सुधा भरिगे ।
जोते बिनु बये बिनु निफन निराये बिनु
　　सुकृत सुखेत सुख सालि फूलि फरिगे ॥
　　　　　　　　　　　　(गीतावली)

आली ! काहू तौ बूझौ न पथिक कहाँ धौं सिधैहैं ।
कहाँ ते आये हैं, को हैं, कहा नाम स्याम गोरे ,
　　काज कै कुसल फिरि एहि मग ऐहैं ।
　　　　　　　　　　　　(गीतावली)

गाँवो को पारकर राम जब वन मे पहुँचे, तब कोल-भीलों ने उनका कैसा स्वागत किया, इसके वर्णन में कवि ने वन-जीवन से भी अपनी विशेपज्ञता प्रकट करके हमे मुग्ध कर लिया है ।—

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई ।
हरषे जनु नवनिधि घर आई ॥

कन्द मूल फल भरि भरि दोना ।
चले रंक जनु लूटनु सोना ॥

तिन्ह मँह जिन्ह देखे दोउ भ्राता ।
अपर तिन्हहिं पूछहिं मगु जाता ॥

कहत सुनत रघुबीर निकाई ।
आइ सबन्हि देखे रघुराई ॥

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे ।
प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे ॥

चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े ।
पुलक सरीर नयन जल बाढ़े ॥

वे बेचारे वचन-रचना मे निपुण न होने से मन के भावों

को व्यक्त करने मे असमर्थ थे। राम ने अपने मधुर वचनो से उनकी प्रेम-समाधि भंग की।—

राम सनेह मगन सब जाने।
कहि प्रिय वचन सकल सनमाने॥

कोल-भील बोले।—

प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी।
बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥

अब हम नाथ सनाथ सब,
भये देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु,
राउर कोसलराय॥

हम सब धन्य सहित परिवारा।
दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥

वन मे एक नवागन्तुक के साथ इन वनचरो ने जैसी सहानुभूति प्रकट की है, वह सभ्य-समाज के लिए स्पर्द्धा की वस्तु होगई है। कोल-भील पहले तो स्थान के चुनाव के लिए राम की प्रशसा करते हैं, फिर सेवा करने की अपनी उत्कट इच्छा प्रकट करते हुये कहते हैं।—

कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी।
इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥

हम सब भाँति करबि सेवकाई।
करि केहरि अहि बाघ बराई॥

वन बेहड़ गिरि कन्दर खोहा।
सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥

जहँ तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब।
सर निरझर भल ठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता।
नाथ न सकुचव आयसु देता॥

शील के समुद्र, दीनों के बंधु राम उनके प्रेम को देखकर इस तरह पुलकित हुये, जैसे बालक के वचन सुनकर पिता होता है।—

बेदबचन मुनिमन अगम,
ते प्रभु करुनाअयन।
बचन किरातन्हके सुनत,
जिमि पितु बालक बयन॥

अब जरा राम के घोड़ों की मनोव्यथा का चित्र देखिये। राम को वन में पहुँचाकर सुमंत अयोध्या को लौटने लगे. उस समय रथ के घोड़ों की क्या दशा हुई, उसे तुलसीदास ने व्यक्त करके मनुष्य और पशु की एकात्मता चित्रित की है।—

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे।
बनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे।
राम वियोग बिकल दुख तीछे॥
जो कहु रामु लषनु बैदेही।
हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि बिरहगति किमि कहि जाती।
बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती॥
(अयोध्या-कांड)

गीतावली में इसका और भी सरस वर्णन है। कौशल्या कहती हैं।—

आली ! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे ?
लेत हिये भरि भरि पति को हित,
मातुहेतु सुत जैसे ॥
बार बार हिहिनात हेरि उत
जो बोलै कोउ द्वारे।
अंग लगाइ लिए बारे तें
करुनामय सुत प्यारे ॥
लोचन सजल, सदा सोवत से,
खान पान बिसराए।
चितवत चौंकि नाम सुनि सोचत
राम-सुरति उर आए ॥
तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि
राजहंस से जोरे।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति
राम लषन के धोरे ॥
(गीतावली)

राघौ ! एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने
बहुरो बनहिं सिधावौ ॥
जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज
बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाड़िले !
ते अब निपट बिसारे ॥

भरत सौगुनी सार करत हैं
अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिँ दिन होत झाँवरे
मनहुँ कमल हिम मारे ॥

सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन
कहियो मातु सँदेसो ।
तुलसी मोहिं और सबहिन तेँ
इन्हको बडो अँदेसो ॥
(गीतावली)

राम के प्यारे घोड़ों पर ममतामयी माता का ऐसा अनुराग होना प्रेम के राज्य मे बिल्कुल स्वाभाविक बात है ।

भरत राम को मनाने जा रहे हैं । उनको भी रास्ते मे वे ही गॉव मिले, जिन गॉवों से राम होकर गये थे । गॉववाले दौड़ लगे और भरत और शत्रुघ्न को देखकर सोचने लगे ।—

यहॉ यह बात ध्यान देने की है कि राम की कथा से स्त्रियॉ ही अधिक प्रभावित हुई हैं; क्योकि करुणा की मात्रा उनमें अधिक होती है । कवि को इस बात का पता है ।—

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं ।
राम लखनु सखि होहिं कि नाहीं ॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली ।
सील सनेहु सरिस सम चाली ॥

राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्न में शारीरिक समानता देखकर भी स्त्रियॉ उनके चेहरों पर वह हर्ष न पा सकी, जिसे उन्होंने राम के चेहरे पर देखा था । वे तर्क-वितर्क करने लगती हैं ।—

बेषु न सो सखि सीय न संगा।
आगे अनी चली चतुरंगा॥

नहिं प्रसन्नमुख मानस खेदा।
सखि संदेहु होइ येहि भेदा॥

तासु तरक तियगन मनमानी।
कहहिं सकल तोहि सम न सयानी॥

तेहि सराहि बानी फुरि पूजी।
बोली मधुर बचन तिय दूजी॥

कहि सप्रेम सब कथाप्रसंगू।
जेहि बिधि राम-राज-रस-भगू॥

भरतहि बहुरि सराहन लागी।
सील सनेह सुभाय सुभागी॥

चलत पयादेहि खात फल,
पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं,
भरत सरिस को आजु॥

भायप भगति भरत आचरनू।
कहत सुनत दुख दूषन हरनू॥

जो किछु कहबि थोर सखि सोई।
रामबंधु अस काहे न होई॥

हम सब सानुज भरतहि देखे।
भइन्ह धन्य जुबतीजन लेखे॥

सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं।
कैकेइ जननि जोग सुत नाहीं॥

वन में पहुँचने पर भरत को भी कोल; किरात और भील

मिले। उन्होंने भरत का भी वैसा ही स्वागत किया, जैसा राम का किया था।—

कोल किरात भिल्ल बनवासी।
मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि परनपुटी रचि रूरी।
कंद मूल फल अंकुर जूरी॥
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा।
कहि कहि स्वादभेदु गुन नामा॥

भरत के साथ के लोग उनके लाये हुये मधु, कंद, फल, मूल और अंकुरों का दाम देने लगे, तब उन्होंने बड़ी नम्रता से निवेदन किया।—

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं।
फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिं सनेह मगन मृदुबानी।
मानत साधु प्रेम पहिंचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा।
पावा दरसनु राम प्रसादा॥
हमहिं अगम अति दरसु तुम्हारा।
जस मरुधरनि देव धुनि धारा॥
रामकृपाल निषाद नेवाजा।
परिजन प्रजउ चहिय जस राजा॥

यह जिय जानि सँकोचु तजि,
करिय छोहु लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि,
फल तृन अंकुर लेहु॥

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पगु धारे ।
सेवा जोगु न भाग हमारे ॥

देब काह हम तुम्हहिं गोसाईं ।
ईंधनु पात किरात मिताईं ॥

यह हमारि अति बडि सेवकाई ।
लेहिं न बासन बसन चोराई ॥

हम जड़ जीव जीव गन घाती ।
कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥

पाप करत निसिबासर जाहीं ।
नहि पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥

(अयोध्या-कांड)

अपनी सामाजिक अवस्था का उन्होंने कैसा यथारूप वर्णन किया है ! नहि पट कटि नहिं पेट अघाहीं' में तो उनकी निर्धनता का जीता-जागता चित्र ही उतर आया है।

अब एक दृश्य और लीजिये, जिसमें कवि ने सीता-हरण के बाद राम की व्याकुलता का प्रभावशाली वर्णन किया है। और राम के विलाप में उसने चुपके से सीता का नखशिख भी पिरो दिया है।—

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ ।
गोदावरितट आस्रम जहवाँ ॥

आस्रम देखि जानकीहीना ।
भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥

हा गुनखानि जानकी सीता ।
रूप सील ब्रत नेमु पुनीता ॥

लछिमन समुझाए बहु भाँती ।
पूछत चले लता तरु पाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकरस्रेनी ।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना ।
मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
कुन्द कली दाडिम दामिनी ।
कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
बरुनपास मनोजधनु हंसा ।
गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं ।
नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू ।
हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं ।
प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥

(अरण्य-कांड)

गीतावली में भी कई प्रसंगों के वर्णन बड़े ही हृदय-स्पर्शी हैं। खेद है, स्थानाभाव से हम यहाँ उनमें से एक शबरी-मिलन ही का वर्णन दे सकेंगे।

शबरी से राम के मिलन का वर्णन 'मानस' की अपेक्षा गीतावली में अधिक सरस है।—

सबरी सोइ उठी, फरकत बाम बिलोचन बाहु ।
सगुन सुहावने सूचत मुनि मन अगम उछाहु ॥

प्रानप्रिय पाहुने ऐहैं राम लषन मेरे आजु।
जानत जन-जिय की मृदु चित राम गरीबनिवाजु॥
दोना रुचिर रचे पूरन कन्द मूल फल फूल।
अनुपम अमियहु तें अबक अवलोकत अनुकूल॥

अनुकूल अंबक अम्ब ज्यों
निज डिंभ हित सब आनिकै।
सुन्दर सनेह सुधा सहस जनु
सरस राखे सानिकै॥

छन भवन, छन बाहर बिलोकति
पन्थ भू पर पानिकै।
दोउ भाइ आये शबरिका के
प्रेम पन पहिचानिकै॥

-जरा 'भूपर पानि कै' का दृश्य ध्यान के नेत्रो से देखिये।

स्रवन सुनत चली आवत देखि लषन रघुराउ।
सिथिल सनेह कहै, 'है सपना बिधि कैधों सतिभाउ'॥
प्रेम पट पाँवड़े देत सुअरघ विलोचन बारि।
आसम लै दिए आसन. पंकज पाँय पखारि॥
सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदिन सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात॥

बालक सुमित्रा कौसिला के
पाहुने फल साग के।
सुनु समुझि तुलसी जानु रामहि
स असल अनुराग के॥

-(गीतावली)

इतने बड़े महाकाव्य मे, जिसमे कवि का बाह्य-जगत् स्थान-स्थान पर सजीव हो रहा है, कहीं-कहीं अस्वाभाविकता का

आजाना असंभव नहीं। पर अस्वाभाविता के अधिक प्रसंग ऐसे अवसरों पर आये हैं, जिनमें बीच-बीच में कवि अपने आराध्य नायक के प्रति नवोद्भूत श्रद्धा और भक्ति के प्रवाह में ऐसा समाधिस्थ हो जाया करता था कि उसे ध्यान ही नहीं रहता था कि वह कहाँ है और कौन-सी अप्रासंगिक बात कह रहा है। ऐसे उदाहरण बहुत नहीं हैं; और इसमें रुचिभेद भी पाया जा सकता है। संभव है, जो बात मुझे अस्वाभाविक जान पड़ती हो, वह स्वयं कवि को अस्वाभाविक न लगी हो और आजकल भी बहुतों को अस्वाभाविक न लगे। पर विचार के लिये ऐसे प्रसंगों का कुछ विवरण दे देना मैं अनुचित नहीं समझता।—

उदाहरण।—

सो सुखधाम राम अस नामा।
अखिल लोक दायक बिस्रामा॥
बिस्व भरन पोषन कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन ते रिपु नासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥
लच्छन धाम रामप्रिय,
सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा,
लछिमन नाम उदार॥
(बाल-कांड)

इसमें जन्म-क्रम से चारों भाइयों में लक्ष्मण का तीसरा नंबर होने पर भी शत्रुघ्न का नामकरण लक्ष्मण से पहले किया गया है। -

यहाँ यह दलील देना कि लक्ष्मण के लिये कुछ अधिक

कहना था, इससे कवि को दोहे के अधिक स्थान की आवश्यकता थी, एक महाकवि की असमर्थता स्वीकार करनी है।

राम के वन-गमन के समय का वर्णन देखिये।—

राम चलत अति भयेउ बिषादू।
सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू।
हरष बिषाद बिबस सुरलोकू॥
(अयोध्या-कांड)

यहाँ शोक के अवसर पर लका का स्मरण बिल्कुल ही अस्वाभाविक जँचता है। लंका मे कुशकुन होना तो कवि और देवता दोनों के लिये हर्ष की बात है। विपाद के अवसर पर हर्ष का स्मरण स्वाभाविक नही कहा जा सकता। और अवध का शोक तो सामयिक भी था, पर लका का अशकुन उस समय से बहुत दूर था।

रामचरितमानस भर मे तुलसीदास सदैव इस बात से आशकित दिखाई पड़ते है कि कही लोग राम को मनुष्य न समझने लगे। कवि के इस भय का उद्घाटन कही-कही बड़े बेमौके हो गया है।

सीता-हरण के बाद राम जब एक विरहाकुल प्रणयी की तरह विलाप करते हैं, तब भी तुलसीदास भयभीत हो जाते हैं और कहते हैं।—

पूरन काम राम सुखरासी।
मनुज चरित कर अज अबिनासी॥

यह रहस्य बेमौके खोला गया है। राम के विलाप से जो

करुण-रस उत्पन्न हो रहा था, इस चौपाई ने उसमें व्याघात उत्पन्न कर दिया है।

सुन्दर-काड में हनुमान् जब लका मे पहुँचते हैं और कूदकर एक पर्वत पर चढ़ जाते हैं, तब तुलसीदास शिव के मुँह से कहलाते हैं।—

उमा न कछु कपि कै अधिकाई।
प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥

यहाँ यह सफाई देने की आवश्यकता ही नहीं थी। इससे तो हनुमान् जी का व्यक्तिगत महत्त्व कम ही हुआ, बढ़ा नहीं।

आगे देखिये।—

युद्ध में मेघनाद ने राम को नाग-पाश मे बाँध लिया था। युद्ध के लिए यह एक साधारण-सी बात है। मौका मिलने पर निर्बल भी सबल को परास्त कर सकता है। पर तुलसीदास यहाँ फिर भी डरे और कहते हैं।—

नट इव कपट चरित कर नाना।
सदा स्वतन्त्र रूप भगवाना॥

इसके कहने की क्या आवश्यकता थी? यदि तुलसीदास अपनी शङ्का न उठाते, तो हमें ध्यान भी न आता कि मेघनाद के नाग-पाश से बँधने पर राम की ईश्वरता को कोई धक्का लगा। जब राम ने 'विप्र, धेनु, सुर, सत' के लिये मनुष्य का अवतार लिया है और मनुष्य ही की तरह वे चरित्र कर रहे हैं, तब मनुष्य के सुख-दुःख भी उन्हें भोगने ही चाहिये। तुलसीदास की पहरेदारी देखकर तो यह भ्रम होने लगता है कि राम जो कुछ करते थे, सब ढोंग था।

अरण्य-काण्ड में जब लक्ष्मण कन्द मूल-फल लेने के

लिये बन मे गये हुए थे, तब राम के इशारे से असली सीता अग्नि मे प्रवेश कर गई, और उनके स्थान पर वैसे ही रूप-रग की एक नकली सीता आश्रम मे बैठ गई। लक्ष्मण आये तो उन्होंने नकली सीता ही को असली समझा। इस पर तुलसीदास कहते हैं।—

लछिमन हू यह मरम न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना॥

यद्यपि राजनीति की दृष्टि से राम ने ठीक ही किया होगा, पर कवि ने यह कहकर कि राम ने जो कुछ किया, उसे लक्ष्मण भी नहीं जान पाये, क्या कवित्व दिखलाया ? कवि के इस कथन के बाद तो यही अनुभव होने लगता है कि राम बडे दुनियादार थे। उन्होंने अपने अनन्य भक्त और आजीवन विश्वासपात्र भाई का भी विश्वास नहीं किया। तथा सीता-हरण के समय उन्होंने जो विलाप किया, वह भी सब उनका दिखावा था।

असली सीता को कलङ्क से निर्मुक्त रखने के लिए ही कवि का यह प्रयास जान पड़ता है। पर इससे उसके मुख्य चरितनायक राम की नैतिक उच्चता कम हो जाती है। यदि यह चौपाई यहाँ न कही जाती तो कथा-प्रवाह मे कोई बाधा भी नहीं पड़ती थी।

इसी प्रकार इस अगली चौपाई मे भी राम का लक्ष्मण के साथ छल करना पाया जाता है।—

रघुपति अनुजहिं आवत देखी।
बाहिज चिन्ता कीन्ह बिसेखी॥

अर्थात्, भाई को आता देखकर रामचन्द्रजी ने बनावटी भाव धारण कर लिया।

मुझे विश्वास नहीं पड़ता कि राम के जीवन-चरित मे इस

प्रकार की बातो का होना किसी भी सत्पुरुष को सुन्दर लगेगा।

तुलसीदास सर्वत्र राम की सुन्दरता ही पर सब को मुग्ध दिखाते है, चाहे वह शत्रु हो या मित्र, देवता हो या दानव, राक्षस हो या असुर, जो कोई उनके सामने आता है, वह उनके रूप पर पहले मुग्ध हो लेता है, पीछे अन्य काम करता है।

बचपन में और विवाह के अवसर पर सौन्दर्य का निदर्शन स्वाभाविक है; पर जब खरदूषण अत्यन्त आवेश में अपनी चौदह हजार सेना लेकर राम से लडने आता है और यकायक क्रोध को भूलकर उनके रूप पर आसक्त हो जाता है और कहने लगता है।—

हम भरि जनम सुनहु सब भाई।
देखी नहिं असि सुन्दरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

तब एक राक्षस मे इस तरह का भाव-परिवर्तन अस्वाभाविक जान पड़ता है। यहाँ रौद्र-रस मे श्रृङ्गार-रस का यह मिश्रण कविता के प्रभाव को क्षीण कर रहा है।

राम का सौन्दर्य देखकर विभीषण भी मोहित हो जाता है। जब वह राम से मिलने के लिए आया, तब।—

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी।
रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी॥

इसके पहले वह विचार करता हुआ आया था कि।—

जिन्ह पायन्ह के पादुकनि,
भरत रहे मन लाय।

ते पद आज बिलोकिहौं,
इन्ह नयनन्हि अब जाय ॥

पर सामने आते ही वह चरणों को भूल गया और मुँह देखने लगा। पता नहीं, तुलसीदास क्यो सबको राम के सौन्दर्य पर लुभाया हुआ दिखलाते थे। यहाँ तक कि ससार से विरक्त वनवासी ऋषि-मुनि भी एकटक से राम की रूप-सुधा का पान करने लगते थे।—

अत्रि के आस्रम जब प्रभु गयऊ।
सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने।
सादर निज आस्रम तब आने॥
(अरण्य-कांड)

पुनि आये जहँ मुनि सरभंगा।
सुन्दर अनुज जानकी संगा॥
देखि राम मुख पंकज,
मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति,
धन्य जनम सरभंग॥
(अरण्य-कांड)

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाये।
हरि बिलोकि लोचन जल छाये॥
मुनि समूह महँ बैठे,
सनमुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत,
मानहुँ निकर चकोर॥
(अरण्य-कांड)

अयोध्या-काण्ड में राम को पृथ्वी पर शयन करते हुये देखकर निषाद को बड़ा विषाद हुआ था। तब लक्ष्मण ने ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस में सना हुआ एक लम्बा-सा व्याख्यान उसको सुनाया था। उसकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं।—

बोले लषन मधुर मृदु बानी।
ग्यान बिराग भगति रस सानी॥

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करमु भोग सबु भ्राता॥

जोग बियोग भोग भल मन्दा।
हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा॥

जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू।
संपति बिपति करमु अरु कालू॥

धरनि धामु धनु पुर परिवारू।
सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं।
मोह मूल परमारथ नाहीं॥

सपने होइ भिखारि नृपु,
रंकु नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु,
तिमि प्रपंच जिय जोइ॥

मोह निसा सबु सोवनिहारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपंच बियोगी॥

जानिय तबहिं जीव जग जागा।
जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

सखा परम परमारथु एहू ।
मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥
राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।
अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥

ये बातें तो किसी पहुँचे हुए संत के मुँह से शोभा देगी, न कि एक तेजस्वी नवयुवक के मुँह से, जो अभी दो ही एक दिन पहले अपने पिता को फटकार कर आया है ।

जो लक्ष्मण निषाद को एक ऋषि-मुनि की तरह अपना भाषण सुना चुके थे, वही अरण्य-कांड में राम से पूछते हैं ।—

कहहु ज्ञान बिराग अरु माया ।
कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥

इस अवसर पर राम ने जो कुछ लक्ष्मण को समझाया है, उससे अधिक अयोध्या-कांड में लक्ष्मण स्वयं निषाद को बता चुके हैं। कवि का लक्ष्य किसी न किसी प्रकार से ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की बातों को, जो उसके मस्तिष्क में थीं, बाहर निकालना था। पर उस के लिए उसने व्यक्ति और अवसर का जो चुनाव किया है, वह ठीक नहीं था। ऐसी बातें तुलसीदास राम से लक्ष्मण को न कहलाकर किसी अन्य व्यक्ति को कहलाते, तो उसमें अधिक औचित्य होता। आश्चर्य की बात है कि वही ज्ञान, भक्ति और वैराग्य में सने हुये लक्ष्मण चित्रकूट में, राम से मिलने के लिए भरत को आते हुये देखकर, एकदम विक्षुब्ध हो उठे थे।

आगे देखिये,

शूर्पणखा ने खरदूषण-वध के बाद रावण के पास जाकर कहा ।—

राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा ।
हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी ।
नासहि वेगि नीति अस सुनी ॥

यहाँ एक राक्षसी के मुँह से 'हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा' का गीता-पाठ बिल्कुल अस्वाभाविक है। और क्रोध और उत्तेजना उत्पन्न करने के अवसर पर धर्म, विद्या, विवेक, ज्ञान, प्रीति और प्रणय का स्मरण दिलाना भी नितान्त असामयिक है।

लंका-कांड में मन्दोदरी ने रावण को जो उपदेश दिया था, वह उपनिषद् का एक अध्याय-सा हो गया है; जो एक राक्षस-स्त्री के लिये बिल्कुल ही अस्वाभाविक था। और यदि न भी रहा हो, तो तुलसीदास की दृष्टि से तो होना ही चाहिये था। मन्दोदरी का उपदेश।—

विस्वरूप रघुबंसमनि,
करहु बचन बिस्वासु ।
लोक कल्पना बेद कर,
अङ्ग अङ्ग प्रति जासु ॥

पद पाताल सीस अज धामा ।
अपर लोक अँग अँग विश्रामा ॥

भृकुटि विलास भयङ्कर काला ।
नयन दिवाकर कच घन माला ॥

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा ।
निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥

स्रवन दिसा दस बेद बखानी ।
मारुत स्वास निगम निज बानी ॥

अधर लोभ जम दसन कराला ।
माया हास बाहु दिगपाला ॥

आनन अनल अम्बुपति जीहा ।
उतपति पालन प्रलय समीहा ॥

रोमराजि अष्टादस भारा ।
अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥

उदर उदधि अधगो जातना ।
जगमय प्रभु की बहु कलपना ॥

अहङ्कार सिव बुद्धि अज
मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास चर अचरमय
रूप राम भगवान ॥

अस बिचारि सुनु प्रानपति,
प्रभु सन बैर बिहाइ ।
प्रीति करहु रघुबीर पद,
मम अहिबात न जाइ ॥

लङ्काकाड मे जब राम वानर-सेना के साथ समुद्र पार करके, सुवेल पर्वत पर डेरा डाले पडे थे, तब वहाँ पर युद्ध-सम्बन्धी कोई चर्चा न करके चन्द्रमा पर जो तरह-तरह की कल्पनाये भिड़ाई गई हैं, वह अस्वाभाविक और असामयिक दोनो है। राम ने वहाँ इस स्वच्छन्दता से बाते की हैं, जैसे वे अयोध्या मे अपने अन्तरङ्ग मित्रों के साथ अपने महल की छत पर बैठे हों और समस्या-पूर्त्तियाँ करके मन बहला रहे हों। देखिये।—

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी ।
परम प्रताप तेज बलरासी ॥

मत्त नाग तम कुम्भ बिदारी ।
ससि केसरी गगन बनचारी ॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा ।
निसि सुन्दरी केर सिगारा ॥
कह प्रभु ससि महँ मेचकताई ।
कहहु काह निज निज मति भाई ॥
कह सुग्रीवँ सुनहु रघुराई ।
ससि महँ प्रगट भूमि कै झाँई ॥
मारेहु राहु ससिहि कह कोई ।
उर महँ परी स्यामता सोई ॥
कोउ कह जब बिधिरतिमुख कीन्हा ।
सार भाग ससि कर हरि लीन्हा ॥
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर माही ।
तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं ॥
प्रभु कह गरल बधु ससि केरा ।
अतिप्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥
बिष संयुत कर निकर पसारी ।
जारत बिरहवंत नरनारी ॥

कह मारुत सुत सुनहु प्रभु,
-ससि तुम्हार निज दास ।
तव मूरति बिधु उर बसति,
सोइ स्यामता अभास ॥

इस तरह की उद्भावनाये रण-भूमि मे शोभा नहीं देती । लङ्का-काड मे भरती के शब्द सर्वत्र मिलते है । जैसे ।—

मन्दोदरी ने रावण को समझाते हुये कहा ।—

पति रघुपतिहि नृपति मत मानहु ।
अग जग नाथ अतुल बल जानहु ॥

बान प्रताप जान मारीचा ।
तासु कहा नहिं मानेहु नीचा ॥

मन्दोदरी के मुख से अपने पति रावण के लिये नीच शब्द कहलाना बहुत ही अनुचित मालूम देता है। मन्दोदरी से तुलसीदास ने राम के मनुष्य न होने का कई बार फतवा दिलाया है। तुलसीदास को यहाँ उस राम की भक्तिन निरपराधिनी मन्दोदरी की मर्यादा तो सँभालनी ही चाहिये थी।

रावण जब मारा गया और राम के बाण उसके सिर को मन्दोदरी के आगे रखकर चले गए, तब मन्दोदरी ने विलाप करते-करते फिर वेदान्त का एक प्रवचन-सा कह डाला है। उसे सुनकर।—

मन्दोदरी बचन सुनि काना ।
सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना ॥

पर सुर, मुनि और सिद्धों के कान वहाँ इतने निकट थे कहाँ ?

भक्त कवि तुलसी का रोचक विषय युद्ध नहीं था, इसीसे उसमें शिथिलता और विरसता आ गई है। रावण और हनूमान् के युद्ध का वर्णन सुनिये।—

देखा स्रमित बिभीषन भारी ।
धायेउ हनूमान गिरिधारी ॥

रथ तुरङ्ग सारथी निपाता ।
हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता ॥

पुनि रावन तेहि हतेउ पचारी ।
चला गगन कपि पूँछ पसारी ॥
गहेसि पूँछ कपि सहित उडाना ।
पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना ॥

हनुमान का उछलना और रावण का उनकी पूँछ पकड़कर ऊपर उड़ना यह गँवारो और लड़कों के लिये मनोरंजक हो सकता है, पर तुलसीदास-जैसे महाकवि के लिये गौरव-स्वरूप नहीं हो सकता । हास्य-रस वीर-रस का सहायक भी नहीं, बल्कि बाधक होता है ।

कागभुशुण्डि की एक बात तो मुझे बड़ी ही बीभत्स जान पड़ी, जो वे कौआ होते हुये बालक राम के मुँह के अन्दर उस समय जा घुसे, जब राम हँस रहे थे, और राम को मालूम भी न हुआ । एक भक्त के लिये यह धृष्टता कहाँ तक उचित है ?

मोहिं बिलोकि राम मुसुकाहीं ।
बिहँसत तुरत गयेउँ मुख माहीं ॥

कहीं-कहीं शब्दों के प्रयोग में भी असावधानी की गई है जैसे ।—

जब सीता को विभीषण अशोक-वाटिका से राम के पास ला रहा था, तब राम ने कहा ।—

कह रघुबीर कहा मम मानहु ।
सीतहिं सखा पयादे आनहु ॥
देखहिं कपि जननी की नाईं ।
बिहँसि कहा रघुबीर गोसाईं ॥

इसमें बिहँसकर कहने की क्या बात थी ? इससे तो हँसने-

वाले का बड़ा हलकापन साबित होता है। और ऊपर की चौपाई मे 'कह' तो एक बार आ ही चुका था, दूसरी बार तो 'कहा' व्यर्थ ही आया।

तुलसीदास ने 'नाना' शब्द का प्रयोग भी बहुत किया है। कहीं-कहीं 'नाना' केवल तुक की पूर्ति के लिये रख लिया गया है, पर कहीं-कहीं वह विशेष्य से इतना दूर जा पड़ा है कि विनोद-प्रिय रसिक को मामा के पिता का अर्थ देने लगता है।—

गावहिं गीत मनोहर नाना।
अति आनन्द न जाइ बखाना॥
(बाल-कांड)

सेवक सकल बजनिया नाना।
(अयोध्या-कांड)

गगन देव मुनि किन्नर नाना।
तेहि छन हृदय हारि भय माना॥
(अरण्य-कांड)

औषध मूल फूल फल पाना।
कहे नाम गनि मंगल नाना॥
(अयोध्या-कांड)

धनिक बनिकबर धनद समाना।
बैठे सकल वस्तु लेइ नाना॥
(बाल-कांड)

ए कपि सब सुग्रीव समाना।
इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
(सुन्दर-काड)

संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना ।
उपजहिं जासु अंस ते नाना ॥
(बाल-कांड)

कहुँ माल देह बिसाल सैल
समान अति बल गर्जहीं ।
नाना अखारेन्ह भिरहिं
बहु बिधि एक एकन्ह तर्जहीं ॥
(सुन्दर-कांड)

चले पराइ भालु कपि नाना ।
त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना ॥
(लंका-कांड)

कहत चले पहिरे पट नाना ।
हरषि हने गहगहे निसाना ॥
(बाल-कांड)

व्यास आदि कपिपुंगव नाना ।
जिन्ह सादर हरिचरित बखाना ॥
(बाल-कांड)

नाना खग बालकन्हि जियाये ।
बोलत मधुर उड़ात सुहाये ॥
(उत्तर-कांड)

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना ।
देखत रन नभ चढ़े बिमाना ॥
(लंका-कांड)

तहँ सुग्रीव चरन गहि नाना ।
भाँति बिनय कीन्हीं हनुमाना ॥
(किष्किंधा-कांड)

सती बिलोके ब्योम बिमाना।
चले जात सुन्दर बिधि नाना॥
(बाल-कांड)

नट इव कपट चरित कर नाना।
सदा स्वतंत्र राम भगवाना॥
(लंका-कांड)

इहाँ दसानन सुभट पठाये।
नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाये॥
(लंका-कांड)

कहीं-कहीं पुनरुक्तियाँ भी हैं।—

वायस पलियहि अति अनुरागा॥
होहि निरामिष कबहुँ कि कागा।
(बाल-कांड)

इसमे 'वायस' और 'कागा' दोनों एकार्थवाची शब्द हैं। इसीसे 'मानस' के किसी-किसी सस्करण मे 'वायस' के स्थान पर 'पायस' पाठ कर दिया गया है।

नीचे की चौपाइयाँ साधारण भेद के साथ दो बार आई हुई हैं।—

उभय बीच श्री सोहइ कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
(बाल-कांड)

उभय बीच सिय सोहति कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
(अयोध्या-कांड)

तथा ।—

धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा।
तव प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा॥
(लंका-कांड)

धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा।
तव प्रभु सर हति कृत जुग खंडा॥
(लंका-कांड)

कहीं-कहीं क्रम-दोष भी है। जैसे।—

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय।
भूप सुसेवित पुनि पुनि लेखिय॥
राखिय नारि जदपि उर माहीं।
जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥

इसके चौथे चरण में पहले के तीन चरणों में आये हुये 'शास्त्र, भूप और नारी' के क्रम का ध्यान नहीं रक्खा गया है। तुलसीदास ने ध्यान दिया होता, तो 'सास्त्र, नृपति, जुवती बस नाहीं' लिखना उनके लिये एक साधारण-सी बात थी। जिस श्लोक का भाव लेकर यह चौपाई रची गई है, उसमें क्रम ठीक है।—

शास्त्रं सुचिंतितमथोपरिचिंतनीय—
माराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः।
क्रोडे कृताऽपि युवती परिरक्षणीया।
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्॥
(शुक्र-नीति)

कुछ स्थानों पर ऐसे विशेषण भी प्रयुक्त हुये हैं, जो विशेष्य से सानुकूलता नहीं रखते। जैसे।—

जनकसुता कै सुधि भामिनी।
जानहि कहु करिवरगामिनी॥

वृद्धा तपस्विनी शबरी के लिये 'करिवरगामिनी' विशेषण एक परिहास-सा लगता है।

गीतावली मे शबरी को राम और लक्ष्मण ने माता के समान मानकर उसका आदर किया है।—

सो जननि ज्यों आदरी सानुज
राम भूखे भाय के।
(गीतावली)

अति प्रीति मानस राखि रामहिँ
रामधामहिँ सो गई।
तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने
हाथ जल अञ्जलि दई॥
(गीतावली)

तुलसीदास ने कहीं-कहीं ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है, जिनके अर्थों का समर्थन केवल कोष ही से हो सकता है, उनके समकालीन रूढियों से नहीं। जैसे, मदिर शब्द को लीजिये। कोष मे 'मंदिर' भवन का पर्यायवाची शब्द है।--

गृहं गेहोदवशिते वेश्म सद्म निकेतनम्।
निशान्तपस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्॥
(अमर-कोष)

यद्यपि वाल्मीकि, व्यास और कालिदास ने 'मंदिर' शब्द को गृह का पर्यायवाची मानकर स्वच्छन्दता से प्रयोग किये हैं, पर तुलसीदास के समय तक यह शब्द देव-स्थान के लिये रूढ़ हो चुका था। लोक मे 'मन्दिर' कहने से देव-स्थान ही का बोध

होता था, साधारण गृह का नहीं। पर तुलसीदास ने सुन्दर-काड मे राक्षसों का निवास मन्दिर मे बताया है, जिनको वे असाधु, चरित्र-हीन, निर्दय और सर्वथा बध्य ही मानते थे।

मदिर मंदिर प्रति करि सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयेउ दसानन मन्दिर माँहीं।
अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥
सयन किये देखा कपि तेही।
मन्दिर महँ न दीख बैदेही॥

और बेचारे विभीषण के लिये उन्होंने लिखा है कि वह गृह में रहता था; यद्यपि उसने गृह की दीवारों पर, आजकल के कुटी-वासी साधुओ की तरह, रामायुध का चिन्ह भी लिख रक्खा था और गृह के आस-पास तुलसी के पौधे भी लगा रक्खे थे। गृह के निकट पूजा के लिये उसने एक मन्दिर अवश्य बनवा रक्खा था, जिसे तुलसीदास ने 'हरि-मन्दिर' लिखा है। पर उसके निवास-स्थान को उन्होंने राक्षसों का साधारण मन्दिर भी नही माना। —

भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि-मन्दिर तहँ भिन्न बनावा॥

रामायुध अंकित गृह,
सोभा बरनि न जाय।
नव तुलसिका बृन्द तहँ,
देखि हरष कपिराइ॥

(सुन्दर-कांड)

हनुमान् ने लका मे एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर पर चढ़कर आग लगाई थी। —

देह बिसाल परम हरुआई।
मन्दिर ते मन्दिर चढ धाई॥

इससे तो जान पड़ता है कि लंका 'मन्दिरों' ही का नगर था, उसमें विभीषण ही का एक कच्चा गृह था, जो हनुमान् की कृपा से नहीं जला।—

जरा नगर निमिष एक माहीं।
एक विभीषन कर गृह नाही॥

निश्चय ही तुलसीदास ने इस वर्णन मे 'गृह' और 'मंदिर' शब्दों के प्रयोग जान-बूझकर किये हैं। पर उन्होंने क्या समझकर ऐसा किया है, यह एक गूढ़ रहस्य है, जो अबतक नाना कल्पनाओं का शिकार बन रहा है। हम इसके सिवा और क्या कह सकते हैं कि मन्दिर से तुलसीदास का अभिप्राय पक्के मकान से था, और गृह से उनका तात्पर्य कच्चे मकान या साधुओं की कुटी से।

इसी प्रकार एक 'गावहिं' शब्द है, जिसका अर्थ होता है, 'गाते हैं'। पर तुलसीदास ने इसका प्रयोग 'बोलते हैं' के अर्थ में भी किया है।—

रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं।
धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं॥
(लंकाकांड)

गान तो नियमित कंठ-स्वर ही को कह सकते हैं, साधारण बोलचाल को गान नहीं कह सकते। और सो भी रणभूमि मे और कटे हुये कंठो से तो 'गान' का होना अस्वाभाविक भी है और असंभव भी। जान पड़ता है, 'धावहिं' के तुक के लिये यह 'गावहिं' जल्दी मे रख दिया गया है।

महाकाव्य के वर्णन

तुलसीदास ने रामचरितमानस में महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षणों को सघटित करने का सर्वत्र प्रयत्न किया है। 'महाकाव्य में मूलचरित के अतिरिक्त जिन-जिन बाह्य विषयों के वर्णन आवश्यक माने गये हैं, मानस में उनको लाने के लिए प्रसग उत्पन्न किये गये हैं और उनके वर्णनो में कवि ने अपनी बहुज्ञता को मूर्त्तिमान् किया है।

महाकाव्य में सध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्यान्ह, मृगया, पर्वत, ऋतु, बन, समुद्र, संभोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, सग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासंभव और सागोपाङ्ग वर्णन होना आवश्यक है।—

संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्यान्हमृगयाशैलर्तु वनसागराः॥
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह॥

(साहित्य-दर्पण)

इनमें से प्रायः सभी के वर्णन तुलसीदास के काव्यो मे प्रसगानुसार मिलते हैं।

कुछ विषयों के वर्णनों के नमूने पहले दिये गये हैं। यहाँ कुछ खास खास विषयों के वर्णन स्वतत्र शीर्षको मे दिये जा रहे हैं। तुलसीदास ने प्रकृति-वर्णन बहुत किया है। पर उनके वर्णनों में एक बात खास ध्यान देने की है कि उन्होंने प्रत्येक वस्तु के वर्णन की लडी मे अपने चरित नायक की कथा भी गट

दी है। और जहाँ-कहीं ऐसा करने का अवसर उनको नहीं मिला, वहाँ भी उन्होंने उनमें सुन्दर कल्याणकारी उपदेशों के रत्न जड़ दिये हैं।—

सूर्योदय

सूर्योदय का एक वर्णन देखिये।—

रामचंद्र धनुष तोड़ने के लिये उठ रहे हैं। उस समय तुलसीदास उनकी तुलना बाल-रवि के उदय से इस प्रकार करते हैं।—

उदित उदय गिरि मंच पर,
रघुबर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब,
हरषे लोचन भृंग॥

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी।
बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने।
कपटी भूप उलूक लुकाने॥
भये बिसोक कोक मुनि देवा।
बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा॥

(बाल-कांड)

चन्द्रोदय

चद्रमा कवियों को अत्यंत प्रिय लगता है। संस्कृत के कवियो ने उसके नित्यनूतन सौन्दर्य और प्रभूत प्रभावों पर लम्बे-लम्बे वर्णन लिखे हैं। विल्हण कहते हैं।—

नेदं नभोमण्डलमिन्दुराशि-
नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः।
नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो
नायं कलङ्कः शयितो मुरारिः॥

'यह आकाश-मडल नहीं, समुद्र है; ये तारे नहीं, फेन के टुकडे हैं; यह चद्रमा नहीं, शेष कुंडल मारकर बैठा है; यह कलक नही, विष्णु सो रहे हैं।'।

इन्दुमिन्दुमुखि! लोकय लोकं
भानुभानुभिरमुं परितप्तम्।
वीजितुं रजनिहस्तगृहीतं
तालवृन्तमिव नालविहीनम्॥

(बिल्हण)

'हे चन्द्रमुखि! चन्द्रमा को देख; सूर्य-किरणो से सतप्त ससार को शीतल करने के लिये रात्रि ने बिना नाल का ताड़ का पंखा हिलाने के लिये हाथ मे ले रक्खा है।'

तुलसीदास ने भी अपने महाकाव्य में चन्द्रमा को अछूता नहीं छोड़ा है। उनकी कल्पनाये सस्कृत के किसी भी महाकवि की कल्पना के समकक्ष बैठ सकती हैं।

चन्द्रोदय का एक वर्णन लीजिये। राम का यौवन-काल है। सीता का सौन्दर्य वे एक बार देख चुके हैं। अब उनके मानस-जगत् में सीता ही का सौन्दर्य सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। उनके नेत्र ससार के अणु-परमाणु मे सीता की छवि खोजने में लग गये हैं। देखिये, चद्रमा के उदय-काल में वे सीता को किन शब्दो में स्मरण कर रहे हैं।—

प्राचीदिसि ससि उयेउ सुहावा।
सिय मुख सरिस देखि सुख पावा॥
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं।
सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥

जनम सिंधु पुनि बंधु बिषु,
दिन मलीन सकलंकु।
सिय मुख समता पाव किमि,
चंदु बापुरो रंकु॥

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई।
ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई॥
कोक सोक-प्रद पंकज द्रोही।
अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥
वैदेही मुख पटतर दीन्हे।
होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे॥
(बाल-कांड)

देखिये, अपने प्रेमपात्र की प्रशंसा के लिए यहाँ चन्द्रमा के कितने अपराध और दोष एकत्र किये गये हैं।

चन्द्र-मण्डल का लाञ्छन युगों से कवियों की कल्पनाओं का एक मधुर विषय रहा है। उसपर श्रीहर्ष की कल्पना की एक बानगी लीजिये।—

हृतसारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।
कृतमध्यबिलं विलोक्यते धृतगम्भीरखनीखनीलिमा॥
(श्रीहर्ष)

'दमयती के मुख की निर्मलता बढ़ाने के लिये ब्रह्मा ने चंद्र-मंडल को निचोड़कर उसका सार खींच लिया। उसके बीच में

छिद्र हो जाने से उसके अतर्गत आकाश की नीलिमा दिखाई पड़ती है।'

ब्रजभाषा के कवि मतिराम ने एक नई ही बात बताई है।—

सुन्दर वदनि राधे सोभा को सदन तेरो,
बदन बनायो चारिवदन बनाय कै।
ताकी रुचि लेबे को उदित भयो रैनपति,
मूढ़मति निजकर राख्यो बगराय कै।
कवि मतिराम ताहि निसिचर चोर जानि,
दीनी है सजाय कमलासन रिसाय कै।
रात दिन फेरयो अमरालय के आसपास
मुख मे कलंक मिस कालिख लगाय कै॥

(मतिराम)

तुलसीदास ने चद्रमा और उसके कलक दोनों को अपनी मनोहर उक्तियों से स्मरण किया है। लका में राम और उनके पारषदो के बीच चन्द्रोदय के अवसर पर उन्होंने जो कथोपकथन कराया है, वह बहुत ही मनोरंजक है।—

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु
देखा उदित मयंक।
कहत सबहिं देखहु ससिहि
मृगपति सरिस असंक॥

पूरबदिसि गिरि गुहा निवासी।
परम प्रताप तेज बलरासी॥
मत्त नाग तम कुम्भ विदारी।
ससि केसरी गगन बन चारी॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा।
निसि सुन्दरी केर सिंगारा॥

कह प्रभु ससि महँु मेचकताई।
कहहु काह निज निज मति भाई॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई।
ससि महँु प्रगट भूमि कै झाँई॥

मारेहु राहु ससिहि कह कोई।
उर महँ परी स्यामता सोई॥

कोउ कह जब बिधि रतिमुख कीन्हा।
सारभाग ससि कर हरि लीन्हा।

छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं।
तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं॥

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा।
अतिप्रिय निजउर दीन्ह बसेरा॥

बिष संजुत करनिकर पसारी।
जारत बिरहवंत नरनारी॥

कह मारुतसुत सुनहु प्रभु
ससि तुम्हार निजु दास।
तव मूरति बिधुउर बसति
सोइ स्यामता अभास॥

(लंका-कांड)

चन्द्रोदय के इस वर्णन की आड़ मे काव्य-कला मे सुनिपुण तुलसीदास ने एक और चमत्कार उपस्थित किया है। ऊपर चन्द्रमा की मेचकता पर जिन-जिन वक्ताओं ने अपने-अपने भाव व्यक्त किये हैं, उनमे उनके हृदयों मे उपस्थित मनोवेदनाये भी झलक उठी हैं। जिस समय राम ने चन्द्रमा की मेचकता का प्रश्न

उठाया था, उस समय उनके निकट केवल सुग्रीव, विभीषण, अंगद और हनुमान् ही थे। लक्ष्मण पीछे की ओर, कुछ दूर पर थे। वे तर्क-वितर्क में शामिल नहीं थे।—

प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा।
बाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना।
कह लंकेस मंत्र लगि काना॥
बडभागी अंगद हनुमाना।
चरन कमल चापत बिधि नाना॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन।
कटि निषंग कर बान सरासन॥

(लंका-कांड)

अब चन्द्र-वर्णन की चौपाइयों के भावों पर ध्यान दीजिये। सुग्रीव ने कहा—चन्द्रमा में पृथ्वी की छाया से कालिमा दिखाई पड़ती है। ठीक यही भावना सुग्रीव के हृदय में थी। वहाँ भी 'भूमि ही भूमि' या राज्य-प्राप्ति की छाया विद्यमान थी। अगली चौपाई में 'कोई' से अभिप्राय विभीषण से है। वह रावण की लात खा चुका था, उसकी कालिमा उसके हृदय में विद्यमान थी। उसी तरह की कल्पना उसने की। इसके आगे की चौपाई में 'कोउ' से अंगद की ओर इशारा है। अंगद के पिता का राज्य उससे छीनकर सुग्रीव को दे दिया गया था। उसका दुःख उसे था ही। चौपाई में उसके हृदय का प्रतिबिम्ब उतर आया है। इसके बाद राम ने स्वयं अपनी उक्ति सुनाई। वे सीता के विरह में व्याकुल थे, इससे उनकी भावना भी उसी तरह की है। अन्तिम कल्पना हनुमान् की है, जो उनके दास-भाव को प्रकट करती है

ऋतु

अब ऋतु-वर्णन का आनन्द अनुभव कीजिये। सीता-हरण के पश्चात् राम और लक्ष्मण पर्वत पर निवास कर रहे हैं। वर्षा-ऋतु का समय है। तुलसीदास ने उस अवसर पर राम के मुख से वर्षा का विशद वर्णन कराते हुये सुन्दर उपदेशों की झड़ी लगा दी है। मानस में यह वर्णन बहुत विस्तृत है। यहाँ उदाहरण के तौर पर उसका थोड़ा-सा अंश दिया जा रहा है।—

लछिमन देखु मोर गन,
नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरतिरत हरष जस,
बिष्णु भगत कहुँ देखि॥

दामिनि दमकि रह न घन माँही।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरखहिँ जलद भूमि नियराये।
जथा नवहिँ बुध बिद्या पाये॥
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे॥
सिमिटिसिमिटिजलभरहितलावा।
जिमि सदगुन सज्जन पहि आवा॥
अर्क जवास पात बिनु भएऊ।
जस सुराज खल उद्यम गएऊ॥
बिबिधि जंतु संकुल महि भ्राजा।
प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा॥

(किष्किंधा-कांड)

इसी के आगे शरद् ऋतु का भी मनोहर वर्णन है।—

बरषा बिगत सरद रितु आई।
लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई।
जनु बरषाकृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्ति पंथ जल सोखा।
जिमि लोभहि सोखै संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा॥
जलसंकोच बिकल भइ मीना।
अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना॥

भूमि जीव संकुल रहे,
गए सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहि जिमि
संसय भ्रम समुदाइ॥
(किष्किंधा-कांड)

ऋतुराज बसंत के वर्णनों से तो तुलसीदास की सारी कविता प्रफुल्लित होरही है। एक छोटा-सा उदाहरण लीजिये।—

भूप बाग बर देखेउ जाई।
जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना।
बरन बरन बर बेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाये।
निज संपति सुररूख लजाये॥

चातक कोकिल कीर चकोरा ।
कूजत बिहँग नचत कल मोरा ॥
(बाल-कांड)

तुलसीदास के काव्यो मे बसत, वर्षा और शरद् के वर्णन हीं अधिक हैं। ग्रीष्म और शीत-ऋतु को उन्होने इनसे पीड़ित व्यक्तियो और जड़ पदार्थों के दुःखों के साथ ही स्मरण किया है।

नदी

तुलसीदास को जलाशय बहुत प्रिय लगते थे। नदी, सरोवर, समुद्र और झरने आदि से उन्होने कितने ही रूपको और उपमाओं को सजीव किया है। एक रूपक मे उन्होंने नदी के आदि से लेकर अत तक का जीवन-चरित लिख दिया है।—

भुवन चारिदस भूधर भारी ।
सुकृत मेघ बरसहि सुख बारी ॥
मनिगन पुर नरनारि सुजाती ।
सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती ॥
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई ।
उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई ॥
(अयोध्या-कांड)

नदी का एक सुन्दर रूपक अयोध्या-काड मे उस अवसर पर भी मिलता है, जब चित्रकूट मे राम जनक की अगवानी करके उन्हे आश्रम की तरफ ले जा रहे हैं।—

आस्रम सागर सांत रस,
पूरन पावन पाथ ।
सेन मनहुँ करुना सरित,
लिये जाहि रघुनाथ ॥

बोरति ज्ञान बिराग कगारे ।
बचन ससोक मिलत नद नारे ॥

सोच उसास समीर तरंगा ।
धीरज तट तरुवर कर भंगा ॥

बिषम बिषाद तोरावति धारा ।
भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ॥

केवट बुध बिद्या बडि नावा ।
सकहि न खेइ एक नहि आवा ॥

बनचर कोल किरात बिचारे ।
थके बिलोकि पथिक हिय हारे ॥

आस्रम उदधि मिली जब जाई ।
मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ॥
(अयोध्या-कांड)

सरोवर

सरोवर का सबसे सुन्दर रूपक तो बाल-काड के प्रारभ में है, पर किष्किंधा-काड मे भी पपासर का वर्णन कम ललित नही है।—

पुनि प्रभु गये सरोबर तीरा ।
पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥

संत हृदय जस निरमल बारी ।
बाँधे घाट मनोहर चारी ॥

जहँ तहँ पियहि बिबिध मृग नीरा ।
जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

पुरइनि सघन ओट जल,
बेगि न पाइय मर्म ।
मायाछन्न न देखिय,
जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा ।
मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥

बोलत जल-कुक्कुट कल-हंसा ।
प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥

चक्रवाक बक खग समुदाई ।
देखत बनइ बरनि नहिँ जाई ॥

सुन्दर खगगन गिरा सुहाई ।
जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये ।
चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाये ॥

चंपक बकुल कदंब तमाला ।
पाटल पनस परास रसाला ॥

नवपल्लव कुसुमित तरु नाना ।
चंचरीक पटली कर गाना ॥

सीतल मंद सुगंध सुभाऊ ।
संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं ।
सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥

फल भर नम्र बिटप सब,
रहे भूमि नियराय ।

पर उपकारी पुरुष जिमि,
नवहिं सुसंपति पाइ ॥
(किष्किधा-कांड)

राम जब सीता को वन के दुःख बताकर उनको साथ चलने से रोक रहे थे, उस समय का वर्णन पढते हुये वन का दृश्य आँखों के सामने आ जाता है।—

जौं हठ करहु प्रेमबस बामा।
तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥

काननु कठिन भयंकर भारी।
घोर घाम हिम बारि बयारी ॥

कुस कंटक मग कांकर नाना।
चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना ॥

चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे।
मारग अगम भूमिधर भारे ॥

कंदर खोह नदी नद नारे।
अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥

भालु बाघ बृक केहरि नागा।
करहिं नाद सुनि धीरजु भागा ॥

भूमि सयन बलकल बसनु
असन कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं
सबुइ समय अनुकूल ॥
(अयोध्या-कांड)

गीतावली में चित्रकूट-वन का बड़ा ही भव्य वर्णन है।

उसमें फाग का वर्णन मिला हुआ होने से उसकी कविता में बसत-ऋतु का-सा सौन्दर्य विकसित हो उठा है।—।

देखत चित्रकूट बन
मन अति होत हुलास।
सीताराम लषन प्रिय,
तापस बृंद निवास॥

सरित सोहावनि पावनि,
पाप हरनि पय नाम।
सिद्धि साधु सुर सेवित
देति सकल मन काम॥

बिटप बेलि नव किसलय,
कुसुमित सघन सुजाति।
कंदमूल, जल थलरुह
अगनित अनबन भाँति॥

बंजुल मंजु बकुल कुल
सुर तरु, ताल तमाल।
कदलि, कदंब, सुचंपक,
पाटल, पनस रसाल॥

भूरुह भूरि भरे जनु,
छबि अनुराग सुभाग।
बन बिलोकि लघु लागहि,
बिपुल बिबुध बन-बाग॥

जाइ न बरनि राम-बन,
चितवत चित हरि लेत।

ललित लता-द्रुम-संकुल,
मनहुँ मनोज-निकेत ॥

सरित सरनि सरसीरुह,
फूले नाना रंग ।
गुंजत मंजु मधुपगन,
कूजत बिबिध बिहंग ॥

लषन कहेउ रघुनंदन,
देखिय बिपिन-समाज ।
मानहुँ चयन मयनपुर,
आयउ प्रिय ऋतुराज ॥

चित्रकूट पर राउर,
जानि अधिक अनुरागु ।
सखा सहित जनु रतिपति,
आयउ खेलन फागु ॥

झिल्लि, झाँझ, झरना, डफ,
नव मिरदंग निसान ।
भेरि उपंग भृंग रव,
ताल कीर कल गान ॥

हंस कपोत कबूतर,
बोलत चक्क चकोर ।
गावत मनहुँ नारि नर,
मुदित नगर चहुँओर ॥

चित्र बिचित्र बिविध मृग,
डोलत डोंगर डाँग ।

जनु पुर वीथिन बिहरत,
छैल सँवारे स्वाँग ॥

नचहिँ मोर, पिक गावहिँ,
सुर बर राग बँधान।
निलज तरुन तरुनी जनु,
खेलहिँ समय समान ॥

भरि-भरि सुंड करि निकरि,
जहँ तहँ डारहिँ बारि।
भरत परसपर पिचकनि,
मनहुँ मुदित नर-नारि ॥

पीठि चढाइ सिसुन्ह कपि,
कूदत डारहिं डार।
जनु मुँह लाइ गेरु मसि,
भये खरनि असवार ॥

लिये पराग सुमन-रस,
डोलत मलय समीर।
मनहुँ अरगजा छिरकत,
भरत गुलाल अबीर ॥

काम कौतुकी यहि बिधि,
प्रभु हित कौतुक कीन्ह।
रीझि राम रतिनाथहि
जग-बिजयी बर दीन्ह ॥

दुखवहु मोरे दास जनि,
मानेहु मोरि रजाइ।

'भलेहि नाथ' माथे धरि,
आयसु चलेउ बजाइ ॥
मुदित किरात किरातिनि,
रघुबर रूप निहारि ।
प्रभु गुन गावत नाचत,
चले जोहारि जोहारि ॥
(गीतावली)

नगर

'मानस' में हम तीन बड़े नगरों—जनकपुर, लंका और अयोध्या के प्रशस्त वर्णन पाते हैं। इनमें जनकपुर के वर्णन मे भाषा का सौदर्य, लका के वर्णन में शत्रु का वैभव और अयोध्या के वर्णन मे एक सुराज की रूप-रेखा ध्यान देने योग्य है।—

जनकपुर का वर्णन ।—

पुर रम्यता राम जब देखी ।
हरषे अनुज समेत बिसेखी ॥

बापी कूप सरित सर नाना ।
सलिल सुधा सम मनि सोपाना ॥

गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा ।
कूजत कल बहुबरन बिहंगा ॥

बरन बरन बिकसे बनजाता ।
त्रिबिध समीर सदा सुखदाता ॥

सुमन बाटिका बाग बन,
विपुल बिहंग निवास ।
फूलत फलत सुपल्लवत,
सोहत पुर चहु पास ॥

बनइ न बरनत नगर निकाई ।
जहाँ जाइ मन तहँ लोभाई ॥

चारु बजार बिचित्र अँबारी ।
मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी ॥

धनिक बनिक बर धनद समाना ।
बैठे सकल बस्तु लै नाना ॥

चौहट सुन्दर गली सुहाई ।
संतत रहहिं सुगंध सिंचाई ॥

मंगलमय मंदिर सब केरे ।
चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे ॥

पुर नर नारि सुभग सुचि संता ।
धरमसील ज्ञानी गुनवंता ॥

अति अनूप जहँ जनक निवासू ।
बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू ॥

होत चकित चित कोट बिलोकी ।
सकल भुवन सोभा जनु रोकी ॥

धवल धाम मनि पुरट पट,
सुघटित नाना भाँति ।
सिय निवास सुंदर सदन,
सोभा किमि कहि जाति ॥

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा ।
भूप भीर नट मागध भाटा ॥

बनी बिसाल बाजि गजसाला ।
हय गज रथ संकुल सब काला ॥

सूर सचिव सेनप बहुतेरे ।
नृप गृह सरिस सदन सब केरे ॥
(बाल-कांड)

लंका का वर्णन ।—

गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी ।
कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेखी ॥

अति उतंग जलनिधि चहुँपासा ।
कनक कोट कर परम प्रकासा ॥

कनक कोट बिचित्र मनि कृत,
सुन्दरायतन अति घना ।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं
चारु पुर बहु बिधि बना ॥

गज बाजि खच्चर निकर पदचर,
रथ बरूथन्हि को गनै ।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल
सेन बरनत नहिं बनै ॥

बन बाग उपवन वाटिका
सर कूप बापी सोहहीं ।
नर नाग सुर गंधर्व कन्या
देखि मुनि मन मोहहीं ॥

कहुँ माल देह बिसाल सैल
समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि
एक एकन्ह तर्जहीं॥
करि जतन भट कोटिन्ह बिकटतन
नगर चहुँदिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर
अज खल निसाचर भच्छहीं॥
(सुन्दर-कांड)

अयोध्या का वर्णन।—

अवध-पुरी-बासिन्ह कर
सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं
जहँ नृप राम बिराज॥

नारदादि सनकादि मुनीसा।
दरसन लागि कोसलाधीसा॥

दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं।
देखि नगरु बिराग बिसरावहिं॥

जातरूप मनि रचित अटारी।
नाना रंग रुचिर गच ढारी॥

पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर।
रचे कँगूरा रंग रंग बर॥

नवग्रह निकर अनीक बनाई।
जनु घेरी अमरावति आई॥

महि बहु रंग रचित गच काँचा ।
जो बिलोकि मुनिबर मनु नाचा ॥

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत ।
कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत ॥

बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं ।
गृह गृह प्रति मनिदीप बिराजहिं ॥

मनिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं
देहरी बिद्रुम रची ।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची
कनक मनि मरकत खची ॥

सुंदर मनोहर मंदिरायत
अजिर रुचिर फटिक रचे ।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट
बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ॥

चारु चित्रसाला गृह
गृह प्रति लिखे बनाइ ।
रामचरित जे निरख मुनि
ते मन लेहिं चोराइ ॥

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं ।
बिबिध भाँति करि जतन बनाईं ॥

लता ललित बहु जाति सुहाईं ।
फूलहिं सदा बसंत की नाईं ॥

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर ।
मारुत त्रिबिध सदा बह सुंदर ॥

नाना खग बालकन्हि जिआये।
बोलत मधुर उड़ात सुहाये॥

मोर हंस सारस पारावत।
भवनन्हि पर सोभा अति पावत॥

जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं।
बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥

सुक सारिका पढावहिं बालक।
कहहु राम रघुपति जनपालक॥

राजदुआर सकल बिधि चारू।
बीथी चौहट रुचिर बजारू॥

बाजार रुचिर न बनइ बरनत
बस्तु बिनु गथ पाइये।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की
संपदा किमि गाइये॥
बैठे बजाज सराफ बनिक
अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर
नारि नर सिसु जरठ जे॥

उत्तर दिसि सरजू बह
निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर
स्वल्प पंक नहिं तीर॥

दूरि फराक रुचिर सो घाटा।
जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा॥

पनिघट परम मनोहर नाना ।
तहाँ न पुरुष करहिं असनाना ॥

राजघाट सब बिधि सुंदर बर ।
मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर ॥

तीर तीर देवन्ह के मंदिर ।
चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुंदर ॥

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी ।
बसहिं ग्यानरत मुनि संन्यासी ॥

तीर तीर तुलसिका सुहाई ।
बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥

पुरसोभा कछु बरनि न जाई ।
बाहिर नगर परम रुचिराई ॥

देखत पुरी अखिल अघ भागा ।
बन उपबन बापिका तड़ागा ॥

बापी तडाग अनूप कूप
मनोहरायत सोहहीं ।
सोपान सुंदर नीर निर्मल
देखि सुर मुनि मोहहीं ॥
बहुरंग कंज अनेक खग
कूजहिं मधुप गुंजारहीं ।
आराम रम्य पिकादि खग रव
जनु पथिक हंकारहीं ॥

रमानाथ जहँ राजा
सो पुर बरनि कि जाइ ।

अनिमादिक सुख संपदा
रही अवध सब छाइ ॥
(उत्तर-कांड)

संग्राम

तुलसीदास स्वभाव ही से साधु, सरल-चित्त और आन्दोलनों से विरक्त पुरुष थे। संग्राम उनका मुख्य विषय नहीं हो सकता। पर वे कवि थे, कवि की हैसियत से उन्होंने युद्ध और युद्ध-यात्रा का भी ऐसा प्रभावशाली वर्णन किया है, जो उनका एक मुख्य विषय-सा हो गया है। कवितावली और मानस मे कई प्रसगों पर युद्ध का अच्छा वर्णन है।—

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि
साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हैं मनमें
कबहूँ न भये रन मे तनु ढीले॥
तुलसी गज से लखि केहरि लौं
झपटे पटके सब सूर सलीले।
भूमि परे भट घूमि कराहत
हाँकि हने हनुमान हठीले॥

हाथिन सों हाथी मारे घोड़े घोड़े सों सँहारे
रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं
हहरानी फौजै भहरानी जातुधान की॥
बार बार सेवक सराहना करत राम
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की।

लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट
-देखौ देखौ लषन ! लरनि हनुमान की ॥

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर
धाये जातुधान हनुमान लियौ घेरि कै ।
महाबल पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट
जहाँ तहाँ पटके लँगूर फेरि फेरि कै ॥
मारे लात तोरे गात भागे जात हाहाखात
कहैं तुलसीस'राखि रामकी सौं' टेरि कै ।
ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै ॥

मत्तभट मुकुट दसकंध साहस सइल
सृंग बिहरनि जनु बज्र टाँकी ।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ
सेस संकुचित संकित पिनाकी ॥
चलित महि मेरु उच्छलित सायर सकल
विकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी ।
रजनिचर घरनि घर गर्भ अर्भक स्रवत
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ॥
(कवितावली)

विषय के अनुसार ही भाषा मे भी वीरता-व्यञ्जक ओज गुण की प्रधानता है और विषय के अनुसार ही उन्होने छद भी चुना है ।

युद्ध-यात्रा का सबसे सरस वर्णन गीतावली में है ।—

जब रघुबीर पयानो कीन्हों ।
छुभित सिंधु डगमगत महीधर
सजि सारँग कर लीन्हों ॥

सुनि कठोर टंकोर घोर अति
चौंके बिधि त्रिपुरारि ।
जटा-पटल ते चली सुरसरी
सकत न संभु सँभारि ॥
भये विकल दिगपाल सकल
भय भरे भुवन दस चारि ।
खरभर लंक ससंक दसानन
गर्भ स्रवहिँ अरि नारि ॥

कटकटात भट भालु विकट
मरकट करि केहरि नाद ।
कूदत करि रघुनाथ सपथ
उपरी उपरा बदि बाद ॥
गिरि तर धर नख मुख कराल रद
कालहु करत विषाद ।
चले दस दिसि रिस भरि धरु धरु कहि
को बराक मनुजाद ॥

पवन पंगु पावक पतंग ससि
दुरि गये थके बिमान ।
जाचत सुर निमेष सुरनाथक
नयन भार अकुलान ॥
गये पूरि सर धूरि भूरि भय
अग थल जलधि समान ।
नभ निसान हनुमान हाँक सुनि
समुझत कोउ न अपान ॥

दिग्गज कमठ कोल सहसानन
धरत धरनि धरि धीर ।

बारहिं बार अमरपत करपत
करकैं परी सरीर ॥
चली चमू चहुँओर सोर कछु
बनै न बरने भीर ।
किलकिलात कसमसत कोलाहल
होत नीर-निधि तीर ॥
(गीतावली)

'मानस' में भी इस प्रसंग का इसीसे मिलता-जुलता वर्णन है; पर गीतावली के वर्णन में कविता का चमत्कार कुछ अधिक है। जैसे, देवता, जो आँखे खोले-खोले थक गये थे, क्योंकि उनके पलकें नहीं होती, पलक माँजने को लालायित हो रहे थे। इन्द्र को हजार नेत्रों से राम की सेना का प्रयाण देखना पड़ता था; इससे वह देखते-देखते दृष्टि के बोझ से व्याकुल होगया था।

इस तरह के कवित्त्व-पूर्ण वर्णनों से विषय अधिक आकर्षक होगया है।

विवाह

हिन्दू-समाज में प्रचलित संस्कारों के शास्त्रीय और लौकिक दोनों प्रकार के रीति-रस्मों का तुलसीदास को पर्याप्त ज्ञान था। रीति-रस्मों की छोटी-छोटी बातें भी उनकी पैनी दृष्टि से छूटने नहीं पाई थीं। रामलला-नहछू में 'नहछू' की रस्म का सजीव वर्णन है। उसी प्रकार जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, गीतावली, कवितावली और मानस में विवाह का वर्णन बड़ा ही सरस है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।—

महाराज दशरथ वरात सजकर अयोध्या से जनकपुर गये। वहाँ वे द्वार-पूजा के लिये वरात के साथ जव जनक के द्वार पर पहुँचे, उस समय का स्त्रियों के लोकाचार का वर्णन तुलसीदास ने वड़ी ही सरसता से किया है।—

प्रभुहिँ माल पहिराइ जानकिहिँ लै चली।
सखी मनहुँ बिधु उदय मुदित कैरव कली॥
गुनिगन बोलि कहेउ नृप माँडव छावन।
गावहिँ गीत सुआसिनि, बाज बधावन॥
सीय राम हित पूजहिँ गौरि गनेसहिँ।
परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहिँ॥
प्रथम हरदि बेदन करि मंगल गावहिँ।
करि कुलरीति कलस थपि तेलु चढावहिँ॥
(जानकी-मंगल)

क्षण-क्षण मे स्त्रियो के मन मे जो मधुर तरगे उठ रही थीं, तुलसीदास उन्हे व्यक्त करने मे ज़रा भर भी असावधान नहीं दिखाई पड़ते।—

सजहिँ सुमंगल साज रहस रनवासहिँ।
गान करहिँ पिकबैनि सहित परिहासहिँ॥
मंगल आरति साजि बरहिँ परिछन चलीं।
जनु बिगसी रवि उदय कनक पंकज कली॥
नख सिख सुंदर रामरूप जब देखहिँ।
सब इंद्रिन्ह महँ इन्द्र बिलोचन लेखहिँ॥
(जानकी-मंगल)

स्त्रियों के हृदयो मे रूप-रस-पान की ऐसी प्रबल तृष्णा जग

रही थी कि वे प्रत्येक इंद्रिय में हजारों नेत्रों के होने की लालसा करने लगीं थी।

इसी प्रकार अगले चरणों में नेगचार में जान-बूझकर देरी करने की उनकी तत्सामयिक लालसा भी कम मधुर नहीं है।—

नेगचारु कहँ नागरि गहरु लगावहिँ।
निरखि निरखि आनंद सुलोचन पावहिँ॥
करि आरती निछावरि वरहिँ निहारहिँ।
प्रेम मगन प्रमदागन तनु न सम्हारहिँ॥

नहिँ तनु सम्हारहिँ छवि निहारहिँ
निमिष रिपु जनु रन जये।
चक्कवै लोचन रामरूप
सुराज सुख योगी भये॥
(जानकी-मंगल)

अब आगे का मगलाचार देखिये।—

देत अरघ रघुवीरहिँ मंडप लै चली।
करहिँ सुमंगल गान उमँगि आनँद अली॥
कुल-विवहार बेदविधि चाहिय जहँ जस।
उपरोहित दोउ करहिँ मुदित मन तहँ तस॥
वरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन।
चली दुलहिनिहिँ ल्याइ पाइ अनुसासन॥
जुवति जुत्थ महँ सीय सुभाय विराजइ।
उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ॥

'भारती भाजइ' का प्रयोग ध्यान देने योग्य है।

लै लै नाउँ सुआसिनि मंगल गावहिँ ।
कुँवर कुँवरि हित गनपति गौरि पुजावहिँ ॥
अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ ।
कन्यादान विधान संकलप कीन्हेउ ॥

सिंदूर बंदन होम लावा
होन लागी भाँवरी ।
सिलपोहनी करि मोहिनी मन
हरयो मूरति साँवरी ॥
(जानकी मंगल)

विवाह के उपरात दूलह-दुलहिन को कोहबर मे ले जाने की प्रथा है। तुलसीदास ने इस प्रसग का भी बड़ा मनोरजक वर्णन किया है।—

सिय भ्राता के समय भौम तहँ आयउ ।
दुरी दुरा करि नेगु सुनात जनायउ ॥
चतुर नारि वर कुँवरिहिँ रीति सिखावहिँ ।
देहिँ गारि लहकौरि समौ सुख पावहिँ ॥
जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह ।
जीति हारि मिस देहिँ गारि दुहुँ रानिन्ह ॥
(जानकी-मंगल)

पार्वती-मगल में शिव की बरात का वर्णन मानस से मिलता-जुलता है। गीतावली मे विवाह-विषयक दो ही तीन पद है। जान पड़ता है, गीतावली की प्रारभिक रचना के समय कवि ने लोकाचार पर यथेष्ठ ध्यान नहीं दिया था, इससे वह साधारण चहल-पहल का वर्णन करके ही रह गया। उसमे भी वह सरसता नही, जो मानस आदि मे है। एक उदाहरण।—

जयमाल जानकी जलज कर लई है।
सुमन सुमंगल सगुन की बनाइ मंजु
मानहुँ मदन माली आयु निरमई है॥

राज रुख लखि गुरु भूसुर सुआसिनिन्हि
समय समाज की ठवनि भली ठई है।
चलीं गान करत निसान बाजे गहगहे,
लहलहे लोचन सनेह सरसई है॥

सतानंद सिप सुनि पॉय परि पहिराई,
माल सिय पिय-हिय सोहत सो भई है।
मानस ते निकसि बिसाल सु तमाल पर,
मानहुँ मराल पाँति बैठी बनि गई है॥
(गीतावली)

कवितावली में भी विवाह के अवसर के कुछ छद हैं; पर रस्मों का कोई क्रमिक वर्णन उनमें नही है। उनसे भावों में रसोद्रेक तो होता है, पर कवि के विस्तृत ज्ञान का परिचय नही मिलता।

सर्वाङ्ग-सौन्दर्य और नखशिख

सौन्दर्य संसार का सबसे अधिक आकर्षक पदार्थ है। वह चाहे शरीर का हो, या वाणी का, या हृदय का, सब मे अनिर्वचनीय मोहिनी शक्ति है।

प्रेम और सौन्दर्य भिन्न-भिन्न शब्द होते हुये भी यदि अर्थ में पर्यायवाची होते तो संभवतः अधिक सार्थक होते। ससार में सौन्दर्य की सृष्टि प्रेम ही के लिये हुई जान पड़ती है।

सौन्दर्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमे क्षण-क्षण मे नवीनता दिखाई पड़ती है।—

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति
तदेव रूपं रमणीयतायाः।

प्रेम की परिभाषा भी ऐसी ही है।—

सखि! कि पुछसि अनुभव मोय।
सेही पिरित अनुराग बखनइत तिले तिले नूतुन होय॥
जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहिँ सूनल
स्रुति पथे परस न गेल॥
कत मधु जामिनि रभसे गमाओल
न बुझल कैसन केल।
लाख लाख जुग हिअ हिअ राखल
तइओ हिआ जुडन न गेल॥
(विद्यापति)

वृक्ष, लता, वन, वन-पथ, पर्वत, नदी-तट, आकाश और समुद्र का सौन्दर्य हमे जितना प्रिय लगता है, उससे कही अधिक मानव-शरीर का सौन्दर्य आकर्षक होता है, क्योंकि वह हमे निकट और सुसच्चित-रूप मे मिलता है और हम उसे थोड़े मे अधिक ग्रहण कर लेते है। मानव-शरीर के सौन्दर्य ने संसार के इतिहास मे समय-समय पर जैसे परिवर्तन किये हैं, उनकी तुलना मूक प्रकृति के सौन्दर्य से उत्पन्न किसी घटना से नही की जा सकती।

सौन्दर्य मुख्यतः आँखो का विषय है। या यो कहना चाहिये कि आँखे सौन्दर्य-निदर्शन ही के लिये मनुष्य को दी गई हैं।

एक अँग्रेज कवि इमर्सन (R. W. Emerson) ने इसी भाव को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है।—

Rhodora ! if the sages ask thee why
This charm is wasted on the earth and sky ?
Tell them, dear, that if eyes are made for seeing,
Then beauty is its own excuse for being.

'यदि संतजन पूछे कि सौन्दर्य पृथ्वी और आकाश में व्यर्थ क्यों बखेर दिया गया है, तो उन्हे मेरी, प्रिये! कहो कि यदि आँखे देखने के लिये बनी हैं तो सौन्दर्य उन्ही के लिये बना है।'

तुलसीदास ने अपने समस्त काव्यों में सौन्दर्य को प्रमुखता दी है। प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य और अन्तःसौन्दर्य दोनो का वर्णन उन्होंने बड़ी प्राञ्जल भाषा और श्रवण-सुखद सुमधुर शब्दों मे किया है। गीतावली और रामचरितमानस राम के सौन्दर्य-वर्णनो से भरे हुये हैं। जहाँ कहीं मौका मिला है, तुलसीदास के हृदय मे रूप-राकेश के लिये प्रेम पयोनिधि उमड़ आया है, और उसमे राम का सौन्दर्य लहराता हुआ दिखाई पड़ता है। एक उदाहरण लीजिये।—

प्रातकाल रघुबीर-बदन छबि
चितै चतुर चित मेरे।
होहिं बिबेक-बिलोचन निर्मल
सुफल सुसीतल तेरे॥

भालु बिसाल बिकट भ्रकुटी बिच
तिलक-रेख रुचि राजै।
मनहुँ मदन तम तकि मरकत धनु
जुगुल कनक सिर साजै॥

रुचिर -पलक-लोचन जुग तारक
स्याम, अरुन सित कोए।
जनु अलि नलिन-कोस महँ बंधुक
सुमन सेज सजि सोए॥
बिलुलित ललित कपोलनि पर कच
मेचक कुटिल सुहाये।
मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलि
बिपुल सकौतुक आये॥
सोभित स्रवन कनक-कुण्डल कल,
लंबित बिबि भुजमूले।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग
उरग इंदु प्रतिकूले॥
अधर अरुन-तर, दसन-पाँति वर,
मधुर मनोहर हासा।
मनहुँ सोन-सरसिज महँ कुलिसनि
तड़ित सहित कृत बासा॥
चारु चिबुक, सुक तुंड-बिनिन्दक
सुभग सुउन्नत नासा।
तुलसिदास छविधाम रामसुख
सुखद समन भव त्रासा॥
(गीतावली)

राम के प्रत्येक अंग पर कवि की उत्प्रेक्षा का पुष्प-वर्षण-सा हुआ है। एक और वर्णन देखिये।—

देखु सखि! आजु रघुनाथ सोभा बनी।
नील-नीरद-बरन-बपुष, भुवनाभरन,
पीत-अंबर-धरन हरन दुति दामिनी॥

सरजु मज्जन किए, संग सज्जन लिए,
हेतु जन पर हिये, कृपा कोमल घनी ।
सजनि आवत भवन, मत्त-गजवर-गवन,
लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी ॥

सघन चिक्कन कुटिल चिकुर विलुलित मृदुल,
करनि विवरत चतुर सरस सुषमा जनी ।
ललित अहि-सिसु निकर मनहुँ ससि सन समर
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी ॥

भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन, पलक
चारु भ्रू नासिका सुभग सुक-आननी ।
चिबुक सुन्दर, अधर अरुन, द्विज दुति सुघर,
वचन गंभीर, मृदुहास भव-भाननी ॥

स्रवन कुण्डल, विमल गंड मंडित चपल, कलित
कल कान्ति अति भाँति कछु तिन्ह तनी ।
जुगल कंचन मकर मनहुँ विधुकर मधुर
पियत पहिचानि करि सिन्धु कीरति भनी ॥

उरसि राजत पदिक ज्योति रचना अधिक,
माल सुविसाल चहुँ पास वनि गजमनी ।
स्याम नव जलद पर निरखि दिनकर-कला
कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन-अनी ॥

मंदिरनि पर खरी नारि आनँद-भरी,
निरखि वरषहिं विपुल कुसुम कुंकुम कनी ।
दासतुलसी राम परम करुनाधाम,
काम सत कोटि मद हरत छवि आपनी ॥

(गीतावली)

भाषा और भाव दोनों पर ध्यान दीजिये। भाषा के साथ तो कवि नृत्य-सा कर रहा है।

अब रामचरितमानस से एक वर्णन लीजिये।—

राजत राज समाज महँ
कोसलराज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तनु
बिस्व बिलोचन चोर॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ।
कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥

सरद चंद निंदक मुख नीके।
नीरज नयन भावते जीके॥

चितवनि चारु मार मद हरनी।
भावत हृदय जात नहिँ बरनी॥

कल कपोल स्रुति कुंडल लोला।
चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥

कुमुद बंधु कर निंदक हासा।
भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥

भाल बिसाल तिलक झलकाहीं।
कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥

पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई।
कुसुमकली बिच बीच बनाई॥

रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ।
जनु त्रिभुवन सोभा की सीवाँ॥

कुंजर मनि कंठा कलित
उरन्ह तुलसिका माल ।
वृषभ कंध केहरि ठवनि
बलनिधि बाहु विसाल ॥

कटि तूनीर पीत पट बाँधे ।
कर सर धनुष बाम बर काँधे ॥
पीत जग्य उपवीत सोहाये ।
नखसिख मंजु महा छवि छाये ॥
(बाल-कांड)

देव, दनुज, नर, किन्नर, गधर्व, सिद्ध, मुनि और ऋषि आदि भी राम-रूप के दर्शनों के लिये लालायित रहते थे ।—

सिद्ध सिहात सराहत मुनिगन
कहैं सुर किन्नर नाग ।
ह्वै बरु बिहँग बिलोकिय बालक
बसि पुर उपबन बाग ॥
(गीतावली)

सीता को तुलसीदास ने सर्वत्र जगज्जननी के रूप मे स्मरण किया है । इससे उनके रूप के वर्णन मे वे सदैव सतर्क रहे हैं कि कही कोई बात मर्यादा के बाहर न होने पाये । पर कवि की हैसियत से एक स्थान पर उन्होने सीता का नख-शिख वर्णन कर ही दिया है ।

सीता-हरण के पश्चात् विरहाकुल राम के प्रलाप मे सीता का नख-शिख प्रच्छिन्न है ।—

लछिमनु समुझाये बहु भाँती ।
पूछत चले लता तरु पाँती ॥

हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥

खंजन सुक कपोत मृग मीना।
मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥

कुंद कली दाड़िम दामिनी।
कमल सरद ससि अहिभामिनी॥

बरुन पास मनोज धनु हंसा।
गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥

श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं।
नेकु न संक सकुच मन माहीं॥

सुनु जानकी तोहि बिनु आजू।
हरषे सकल पाइ जनु राजू॥

(अरण्य-कांड)

भावार्थ यह है कि सीता के अंगों का सौन्दर्य देखकर उनके उपमान लज्जित रहते थे। सीता-हरण से अब वे स्वराज का-सा सुख अनुभव करने लगे।

अब देखिये, ऊपर की चौपाइयों में सीता के किन-किन अंगों के सौन्दर्य की ओर कवि ने संकेत किया है।—

नेत्र=खंजन, मृग, मीन; नासिका=शुक; ग्रीवा=कपोत, केश=मधुप-निकर, कंठ-स्वर=कोकिला, दन्त=कुंदकली और दाड़िम। हास=दामिनी, मुख=कमल, मुख-मंडल=शरद-ससि, लट=अहिभामिनी, वेणी=वरुण-पाश, भ्रू=मनोज-धनु, गति=हंस, कटि=केहरि, स्तन=श्रीफल, जंघा=कनक-कदली।

इस वर्णन के साथ भी तुलसीदास ने शिष्टता की मर्यादा का ध्यान रक्खा है। प्रायः सभी नख-शिख-वर्णन उन्होंने अपनी ओर से किये हैं, पर उपर्युक्त नख-शिख-वर्णन उन्होंने राम के मुख से कराया है, जो जगज्जननी जानकी के पति थे। पति को अपनी पत्नी के सौन्दर्य-वर्णन का पूरा हक़ है।

गीतावली में शिशु राम का वर्णन मानस से भी सरस है। नख-शिख-वर्णनों में कवि ने सदा संस्कृत के श्रुति-मधुर शब्द काम में लाये हैं।

तुलसीदास का वनस्पति-विज्ञान

जिस तरह तुलसीदास को तरह तरह के जीव-जन्तुओं के रहन-सहन की जानकारी थी, उसी तरह वनस्पतियों की विभिन्न विशेषताओं से भी वे परिचित थे, और अपने वनस्पति-ज्ञान का उन्होंने सुन्दर से सुन्दर उपयोग भी किया है।

यहाँ कुछ ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं, जिनसे तुलसीदास के वनस्पति-विज्ञान पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा।

मोर-शिखा नाम की एक लता होती है, जिसमें जड़ें नहीं होतीं। लोक-प्रसिद्ध बात है कि बरसात में बादल की गरज सुनकर वह पल्लवित हो उठती है। तुलसीदास कहते हैं।—

तुलसी मिटै न मरि मिटेहू,
साँचो सहज सनेह।
मोरसिखा बिनु मूरिहू
पलुहत गरजत मेह॥

(दोहावली)

बरसात मे आक और जवासे के पत्ते झड़ जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं।—

अर्क जवास पात बिनु भयऊ।
जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ॥

(किष्किंधा-कांड)

केले मे एक बार फल आने के बाद उसे काट देने ही पर उसमे दुबारा फल आता है। इसे लक्ष्य करके तुलसीदास कहते हैं।—

काटेहि पइ कदरी फरइ,
कोटि जतन करि सींच।

(सुन्दर-कांड)

अफीम को तुलसीदास विष से भी विकराल बतलाते हैं।—

ब्यालहु ते विकराल बड़,
ब्यालफेन जिय जानु।
यहि के खाये मरत है,
वह खाये बिनु प्रान॥

(दोहावली)

'खाये' शब्द मे श्लेष है।

गूलर के फल में कीड़े बहुत होते हैं। तुलसीदास ने उसकी मिसाल लका से दी है।—

गूलरि फल समान तव लंका।
तहँ रह रावन सहज असंका॥

(सुन्दर-कांड)

खेत में जो बीज डाला जाता है, वह चाहे उलटा गिरे, चाहे सीधा, जमेगा सीधा ही। उसको लक्ष्य करके तुलसीदास कहते हैं।—

तुलसी अपने राम को,
रीझि भजौ कै खीझ।
उलटे सीधे जमत हैं,
खेत पड़े कौ बीज॥
(दोहावली)

घमोई बाँस का एक रोग होता है। उसकी यह पहचान है कि बाँस की जड़ में से बहुत से पतले और घने अंकुर निकलने लगते हैं, इससे बाँस की बाढ़ मारी जाती है, उसमें फिर नये कल्ले नहीं निकलते। तुलसीदास ने उसको लक्ष्य करके यह कहा है।—

अबहीं ते उर संसय होई।
बेनु मूल सुत भयउ घमोई॥
(लंका-कांड)

घमोई एक काँटेदार झाड़ भी होता है, जो खँडहरों और पड़ती पड़े हुए खेतों में प्रायः उगा हुआ मिलता है। उसे सत्यानासी और भड़भाड़ भी कहते हैं। तुलसीदास ने हनुमान के मुख से कहलाया है कि उनकी इच्छा होती है कि लंका को खँडहर बनाकर सत्यानासी का जङ्गल बना दूँ।—

कहत मन तुलसीस लंका
करहुँ सघन घमोइ।
(गीतावली)

भोज-पत्र एक वृक्ष की छाल है। इसका शरीर छालों की

तहों से बना होता है। पूर्वकाल मे इसकी छाल निकाल-निकाल-कर उस पर ग्रंथ और पत्र लिखे जाते थे। तुलसीदास ने इसकी समता सत से की है।—

भूरुज तरु सम संत कृपाला।
परहित सह नित विपति बिसाला॥
(उत्तर-कांड)

केला भी भोजपत्र की तरह तहों का वृक्ष है। उसकी तुलना तुलसीदास ने ससार से की है।—

देखत ही कमनीय कछू
नाहिन पुनि किये विचार।
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत
कबहुँ न निकसत सार॥
(विनय-पत्रिका)

सन से प्रायः सभी किसान परिचित हैं, पर उसके अपराध और दड से बहुत कम लोग परिचित होंगे। तुलसीदास कहते हैं।—

सन इव खल पर बंधन करई।
खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई॥
(उत्तर-कांड)

फूलों मे तिलों को बसाकर उन पर फूलों की सुगंध।उतारी जाती है। फिर उन्हे कोल्हू में पेरकर उनसे सुगन्धित तेल निकाल लिया जाता है और खली फेक दी जाती है। स्वार्थमय ससार का यह एक अच्छा उदाहरण है, जिसे हम तुलसीदास के शब्दो में अधिक सरसता से समझ सकते हैं।—

दै दै सुमन तिल बासि कै अरु
खरि परिहरि रस लेत ।
स्वारथ हित भूतल भरे,
मन मेचक तनु सेत ॥
(विनय-पत्रिका)

कमल पानी में पैदा होता है, पर पानी उसको स्पर्श नहीं करता। इसी बात को लेकर तुलसीदास ने ससार में रहते हुये भी उससे निर्लिप्त रहने वाले महापुरुषों के लिये उसको उपमान बनाया है।—

जे बिरंचि निरलेप उपाये।
पदुमपत्र जिमि जग जलजाये॥
(अयोध्या-कांड)

कुम्हड़े (कूष्माड) के लिये यह प्रसिद्ध है कि उसके छोटे फल की तरफ अगर कोई तर्जनी उँगली उठाये, तो वह मर जाता है। कुम्हड़े के इस रहस्य का उपयोग तुलसीदास ने इस प्रकार किया है।—

इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं।
जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
(बाल-कांड)

जब किसी को साँप काट लेता है, तब लोग उसे नीम की पत्तियाँ चबवाते हैं। जहर चढ़ जाने पर नीम की पत्तियाँ कड़वी नहीं लगतीं। तुलसीदास कहते हैं।—

काम भुअंग डसत जब जाही।
बिषय नींब कटु लगति न ताही॥
(विनय-पत्रिका)

सावन-भादों के महीने धान के लिये कितने आनन्द-दायक होते हैं, और जब धान सूखने लगता है, तब जल उसको कितना प्रिय लगता है, यह अनुभव या तो धान ही को हो सकता है या कवि को, जो भावना-मात्र का प्रतिनिधि होता है। तुलसीदास ने धान और जल के प्रेम का निदर्शन इस प्रकार किया है।—

बरषा ऋतु रघुपति भगति,
तुलसी सालि सुदास।
रामनाम बर बरन जुग,
सावन भादों मास॥
(बाल-कांड)

सखिन सहित हरषीं सब रानी।
सूखत धान परा जनु पानी॥
(बाल-कांड)

तुलसीदास का यह सोरठा तो आम-तौर से प्रसिद्ध है।—

फूलै फलै न बेत,
जदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदै न चेत,
जो गुरु मिलहिं बिरंचि सिव॥
(लंका-कांड)

कहा जाता है कि बेत कभी फूलता-फलता नहीं। बेत के इस रहस्य की जानकारी का उपयोग तुलसीदास ने एक उपदेश के साथ करके हमें दो बातों की जानकारी करा दी है। यद्यपि मानस के कुछ मर्मज्ञ सज्जन बेत को संस्कृत के वियत् शब्द का अपभ्रंश बताकर उसका अर्थ आकाश करते हैं, पर आकाश तो

स्वयं एक अमूर्त पदार्थ है, उसका फूलना फलना सर्वथा असंभव है। उसकी तुलना किसी मूर्त पदार्थ से करना ही ग़लत है। दूसरे, यह सोरठा तो फ़ारसी के एक शेर का अक्षरशः अनुवाद है, जिसका उल्लेख इस पुस्तक के पृष्ठ ४५७ पर किया गया है। उसमें वेद शब्द वेत ही के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

तुलसीदास, जीव-विशेषज्ञ

तुलसीदास को जीव-जंतुओं के स्वभावों की बहुत-सी बातें विदित थीं, और उन्हें उन्होंने मौक़े-मौक़े पर प्रकट भी किया है। यहाँ कुछ ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं, जिनसे यह ज्ञात होगा कि उनकी पैनी दृष्टि से जन्तु-जगत् के गूढ़ रहस्य भी तिरोहित नहीं थे।

टिटिहरी (एक पक्षी) हमेशा पैर ऊपर करके सोती है। विनोद-प्रिय लोगों ने इसपर यह कल्पना कर रक्खी है कि टिटिहरी को इस बात का भय रहता है कि कहीं निराधार आकाश पृथ्वी पर फट न पड़े और पृथ्वी का नाश न हो जाय। गिरते हुये आकाश को अपने पैरों से थाम लेने की नीयत से वह पैर ऊपर करके सोती है। इसको लक्ष्य करके तुलसीदास ने कहा है।—

उमा रावनहिं अस अभिमाना।
जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥
(लंका-कांड)

साँप यदि चूहे के धोखे में छछूँदर को पकड़ ले, तो जनता में यह प्रवाद प्रचलित है कि यदि वह उसे निगल जाय तो मर जायगा और छोड़ दे तो कोढ़ी हो जायगा। साँप की इस

असमंजसवाली मानसिक स्थिति का चित्रण तुलसीदास ने इस चौपाई में किया है।—

धर्म सनेह उभय मति घेरी।
भइ गति साँप छछूँदरि केरी॥
(अयोध्या-कांड)

जौ का कीड़ा जौ के साथ पीस डाला जाता है, या सूप से पछोरकर बाहर फेंक दिया जाता है। जौ के कीड़े की इस निरीहावस्था का उल्लेख तुलसीदास ने इस प्रकार किया है।—

करत राज लंका सठ त्यागी।
होइहि जव कर कीट अभागी॥
(सुन्दर-कांड)

भौंरा सब फूलों का रस लेता है, पर चंपे पर वह नहीं जाता। कहा जाता है कि उसकी गध उसे प्रिय नहीं लगती। भौंरे के इस मनोगत भाव का उल्लेख तुलसीदास ने भी किया है।—

तेहि बन बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
(अयोध्या-कांड)

हस के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह मिले हुये दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है। तुलसीदास ने हंस के इस गुण की प्रशसा बार-बार की है।—

जड चेतन गुन दोषमय,
बिस्व कीन्ह करतार।

संत हंस गुन गहहिं पय,
परिहरि बारि बिकार ॥
(बाल-कांड)

नदियों और तालावों में काले रग के छोटे-छोटे कीड़े होते हैं, जो समूह के समूह बड़ी तेजी से तैरते रहते हैं। वे प्रायः धारा के वेग के सम्मुख तैरते हैं और प्रवाह के ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करते हैं। तुलसीदास ने उनके प्रयत्न की तुलना भरत की मनोदशा से की है।—

भरत दसा तेहि अवसर कैसी।
जल प्रवाह जल अलि गति जैसी॥
(अयोध्या-कांड)

कहा जाता है कि चकोर चन्द्रमा को देखकर बहुत प्रसन्न होता है। तुलसीदास ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है।—

छिनु-छिनु पिय बिधु बदन निहारी।
प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥
(अयोध्या-कांड)

चक्रवाक के लिये यह प्रसिद्ध है कि उसका जोड़ा दिन में साथ-साथ रहता है और रात्रि में अलग हो जाता है। अतएव स्वभावतः उसे दिन बहुत प्रिय लगता है। तुलसीदास ने उसके हर्ष का इस प्रकार अनुभव किया है।—

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी।
हरषित रहति दिवस जिमि कोकी।
(अयोध्या-कांड)

वर्षा-ऋतु के प्रारम्भ में, पहला पानी वरस जाने पर, जो फेन निकलता है, उसे माँजा कहते हैं। उसे खा लेने पर मछलियाँ

बेहोश हो जाती हैं, और बहुत व्याकुल होकर पानी के ऊपर उतरा आती हैं। उनमे बहुत-सी मर भी जाती हैं। तुलसीदास ने उनकी दशा को एक उपमा के लिये चुन लिया है।—

नयन सजल तनु थर थर काँपी।
माँजहि खाइ मीन जनु मापी॥
(अयोध्या-कांड)

कछुवा अपने अंडे पानी से दूर ले जाकर बालू मे रख आता है और पानी में रहकर मानस-तरंगो से उसे सेता है। तुलसीदास कहते हैं कि राम इसी तरह भरत का ध्यान रखते थे।—

रामहिँ बंधु सोच दिनराती।
अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥
(अयोध्या-कांड)

हरिण को मधुर ध्वनि बहुत प्रिय लगती है। वह उसपर ऐसा मुग्ध हो जाता है कि भील-भीलनी बीन आदि बजाते हुये उसे पकड़ लेते हैं। हरिण की इस नाद-प्रियता का उल्लेख तुलसीदास ने इस प्रकार किया है।—

सादर पुनि पुनि पूछति ओही।
सबरी गान मृगी जनु मोही॥
(अयोध्या-कांड)

हरिण रात्रि में दीपक देखकर भी चकित हो जाता है और खडे-खडे देर तक उसे देखता रहता है। रात्रि मे हरिण का शिकार करनेवाले दीपक जलाकर गान करते हैं और इस युक्ति से उसका शिकार कर लेते हैं। हरिण और हरिणी की निश्चलता

का चित्र तुलसीदास ने इस प्रकार खींचा है।—

थके नारि नर प्रेम पियासे।
मनहुँ मृगी मृग देखि दिया से॥

(अयोध्या-कांड)

कहा जाता है कि सॉप के सिर में एक मणि होती है। वह रात्रि के समय उसे घास पर रखकर, उसके प्रकाश मे आहार की खोज करता है। यदि कोई उस मणि का हरण कर लेता है तो सॉप सिर पटक-पटककर अपने प्राण दे देता है। तुलसीदास ने अपने काव्यो में सॉप की इस दुःख-कातरता का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है।—

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना।
मनि बिनु फनिक जिअइ दुख दीना॥

(अयोध्या-कांड)

मछलियॉ प्रायः प्रवाह के सम्मुख ऊपर को चढ़ती हैं, पर हाथी प्रवाह में ठहर नही सकता और बह जाता है। इस आश्चर्य को तुलसीदास ने इस प्रकार व्यक्त किया है।—

जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ
सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह
सुरसरी बहै गज भारी॥

(विनय-पत्रिका)

चीनी में यदि बालू मिला दिया जाय तो दोनो को अलग-अलग करना मनुष्य के लिये असभव हो जायगा। पर चींटियॉ दोनों को आसानी से अलग कर सकती हैं। तुलसीदास कहते हैं।—

ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ
बल तें न कोउ बिलगावै ।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका
बिनु प्रयास ही पावै ॥
(विनय-पत्रिका)

कौवा बहुत चालाक होता है, पर डरपोक भी वह एक ही होता है। वह हरएक से डरता रहता है। उसके स्वभाव को लक्ष्य करके तुलसीदास कहते हैं।—

सत्य बचन बिस्वास न करहीं ।
बायस इव सबही तें डरहीं ॥
(उत्तर-कांड)

तुलसीदास ने पपीहे को सच्चे प्रेमी का आदर्श माना है। उन्होंने जहाँ-जहाँ प्रेम का वर्णन किया है, सर्वत्र चातक के प्रेम को प्रमुखता दी है।—

सुन रे तुलसीदास,
प्यास पपीहहि प्रेम की ।
परिहरि चारिउ मास,
जो अँचवै जल स्वाति को ॥
(दोहावली)

केवाँच नाम की एक लता वन्दरों को बहुत प्रिय होती है। वे उसे नोच-नाचकर खा जाते हैं। तुलसीदास ने उसकी याद दिलाकर हनुमान्‌जी से यह प्रार्थना की थी।—

बात तरु मूल बाहु सूल कपि कच्छु बेलि
उपजी सकेलि कपि-खेलही उखारिये ।
(कवितावली)

गोरां (जि० एटा) और उसके आसपास केकड़े को कुटीला कहते हैं। कुटीला अपनी माँ का पेट फाड़कर जन्म लेता है। तुलसीदास ने अपनी तुलना कुटीले से की है। वे जब जन्मे थे, तभी उनकी माता का भी देहान्त हो गया था।—

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों
तज्यो मातु पिताहू।
(विनय-पत्रिका)

साँप की केंचुल जबतक उसके शरीर पर रहती है, तबतक उसे दिखाई नहीं पड़ता। केंचुल छोड़ने ही पर साँप देखने में समर्थ होता है। तुलसीदास कहते हैं।—

राम प्रेम पथ पेखिये,
दिये विषय तनु पीठि।
तुलसी केंचुरि परिहरे,
होत साँपहू डीठि॥
(दोहावली)

जोंक सीधे जल में भी टेढ़ा ही चलती है। यह उसका स्वभाव ही है। तुलसीदास कहते हैं।—

सहज सरल रघुबर बचन,
कुमति कुटिल करि जान।
चलै जोंक जल बक्र गति
जद्यपि सलिल समान॥
(दोहावली)

भेड़ें स्वभावतः डरपोक होती हैं। भेड़िये को देखते ही वे जी-छोड़कर भाग खड़ी होती हैं। उनकी भीरुता का उपहास तुलसीदास ने इस प्रकार किया है।—

भागे भालु बली मुख जूथा ।
बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा ॥
(लंका-कांड)

रेशम कीडे से निकलता है । उससे सुन्दर पीताम्बर (पाटाम्बर ?) बनता है । तुलसीदास इस कीट-विशेष से अवगत थे ।—

पाट कीट तें होइ,
तातें पाटम्बर रुचिर ।
कृमि पालै सब कोइ,
परम अपावन प्रानसम ॥
(दोहावली)

कहा जाता है कि चदन के वृक्ष से सर्प लिपटे रहते हैं; फिर भी चदन का गुण उनमें नही व्याप्त होता है । तुलसीदास कहते हैं ।—

नीच निचाई नहिं तजैं,
जो पावहिं सतसंग ।
तुलसी चंदन बिटप बसि,
बिन बिष भै न भुजंग ॥
(तुलसी-सतसई)

वही सेमल, वही तोता, बार-बार धोखा खाकर भी बसंत में सेमल के लाल फूलों पर अनुरक्त तोता उससे किसी मधुर फल के उत्पन्न होने की आशा से उसे सेता रहता है, पर अंत में उसमें से रुई निकलती है और तोता पछताकर रह जाता है। इसको लक्ष्य करके तुलसीदास कहते हैं ।—

सोई सेमर सोइ सुवा,
सेवत पाइ बसंत।
तुलसी महिमा मोह की,
विदित बखानत संत॥
(तुलसी-सतसई)

किसी पुराने कवि का भी एक सोरठा इसी भाव का है।—

सुक ने कह्यो संदेस,
सेमर के पग लागिहौ।
पग न परै उहि देस,
जब सुधि आवै फलन की॥

तुलसीदास ने अगले दोहे में बन्दरों की एक विचित्र चेष्टा का उल्लेख किया है।—

तुलसी अपने दुःख ते,
को कहु रहत अजान।
कीस कुंत अंकुर बनहिं,
उपजत करत निदान॥
(तुलसी-सतसई)

'अपने दुःख से अनजान कौन रहता है? बन्दर भविष्य के दुःख का अनुमान करके वन में काँटों के अंकुर को पैदा होते ही नष्ट कर दिया करते हैं।'

हाथी के लिये प्रसिद्ध है कि वह हमेशा मैथुन के लिये एकान्त स्थान पसंद करता है। इस रहस्य का उद्घाटन भी तुलसीदास ने किया है।—

नीति प्रीति जस अजस गति
सब कहँ सुभ पहिचान।

बस्ती हस्ती हस्तिनी,
देइ न पति रति-दान ॥
(तुलसी-सतसई)

'सबको नीति, प्रीति, यश, अपयश और भले-बुरे की पहचान होती है। हथिनी अपने पति हाथी को बस्ती में रति-दान नहीं देती।'

यह लोक-प्रसिद्ध बात है कि नृत्य करते-करते मयूर का वीर्य-पात हो जाता है और मोरनी, जो उसके आस ही पास रहती है, उसे उठाकर खा लेती है, और गर्भवती हो जाती है। प्रकृति की यह विलक्षण बात भी तुलसीदास को मालूम थी।—

तुलसी होत सिखे नहीं,
तन गुन दूषन धाम ।
भखन सिखिन कवने कह्यो,
प्रकट बिलोकहु काम ॥
(तुलसी-सतसई)

'सीखने से शरीर गुण और अवगुण का घर नहीं होता। स्वभाव ही से होता है। मोरनी को काम का भक्षण किसने सिखाया ?'

अलल एक पक्षी होता है, वह हमेशा आकाश में उड़ता ही रहता है। वहीं वह अंडे देता है। अंडा जब भूमि की ओर गिरता है; तब रास्ते ही में वह फूट जाता है। उसका संपुट (खोल), जो लाल रंग का होता है, जमीन पर गिर पड़ता है, और बच्चा, जिसके उतने ही समय में पंख निकल आते हैं, ऊपर को उड़ जाता है। नीचे के दोहे में इसी बात का उल्लेख है।—

गिरत अंड संपुट अरुन,
जमत पच्छ अनयास ।
अलल सुवन उपदेस केहि,
जात सु उलटि अकास ॥
(तुलसी-सतसई)

कबूतर आकाश में उड़कर गिरह खाता है, उसको लक्ष्य करके तुलसीदास ने यह दोहा कहा है।—

होनहार सब आपते,
बिभव बीच नहिं होत ।
गगन गिरह करबो कबै,
तुलसी पढत कपोत ॥
(तुलसी-सतसई)

भृंग नाम का एक कीड़ा होता है, जो दूसरे कीड़ों को मार-कर अपने स्वर-प्रयोग-द्वारा अपने ही जैसा बना लेता है। उसके वश में आया हुआ कीड़ा उसके स्वर के प्रभाव से उसमें ऐसा तन्मय हो जाता है कि वह स्वयं उसी रूप का बन जाता है। उसको लक्ष्य करके तुलसीदास ने यह चौपाई कही है।—

भइ मति कीट भृंग की नाईं ।
जहँ तहँ मैं देखौं दोउ भाई ॥
(अरण्य-कांड)

साँप और बिल्ली को जब किसीपर हमला करना होता है, तब वे पहले दबककर तब आक्रमण करते हैं। इस चौपाई में उनके उसी स्वभाव की ओर संकेत किया गया है।—

नवनि नीच कै अति दुखदाई ।
जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥
(अरण्य-कांड)

घुन लकड़ी को भीतर ही भीतर खाकर खोखला कर देता है। तुलसीदास उसको लक्ष्य करके कहते हैं।—

कीट मनोरथ दारु सरीरा।
केहि न लाग घुन को अस धीरा॥

नीचे के पदों में तुलसीदास ने सर्प, मृग, पतंग, कमल, चातक और मछली के भिन्न-भिन्न स्वभावों की जानकारी का परिचय दिया है।—

अहि कुरंग पतंग पंकज चारु चातक मीन।
बैठि इनकी पाँति अब सुख चहत मन मतिहीन॥
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

तुलसीदास, गणितज्ञ

राम-शलाका और रामाज्ञा-प्रश्न के निर्माण में तुलसीदास ने अपनी गणितज्ञता का पूरा परिचय दिया है। राम-शलाका-चक्र का निर्माण सहज नहीं है। दोहावली और सतसई में भी कई ऐसे दोहे मिलते हैं, जिनसे गणित-जैसे नीरस विषय में भी तुलसीदास की अच्छी गति और सुरुचि का प्रमाण मिलता है। इस पुस्तक के ४६८ वें पृष्ठ पर यह दोहा दिया गया है, जिसमें ६ के पहाड़े की विशेषता बताई गई है।—

तुलसी राम सनेह करु,
त्यागि सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नौ,
नौ के लिखत पहार॥
(दोहावली)

दोहावली के निम्नलिखित दोहे मे उन्होने अपनी गणितज्ञता का एक और भी प्रमाण दिया है।—

नाम चतुर्गुन पंच युत,
दूने हर वसु सेष।
तुलसी सकल चराचर,
राम नाम मय देख॥
(तुलसी-सतसई)

अर्थात्, किसी नाम के अक्षर गिनकर उसे चौगुना करो, फिर उसमें पॉच जोड़ो, फिर उसे दूना करो, फिर उसे आठ से भाग दो, तो जो बचेगा, वह दो होगा, और वे ही रामनाम के दो अक्षर हैं। कैसी सुन्दर कल्पना है।

कहा जाता है कि संसार में सबसे पहले गणित का आविर्भाव हिन्दू-जाति में हुआ। हिन्दुओं ने अंकों के साथ शून्य की कल्पना करके समस्त सभ्य-जगत् में अपने मस्तिष्क को सर्वोच्च पद का अधिकारी बनाया है। शून्य मे कई विशेषतायें हैं। तुलसीदास ने दो मुख्य विशेपताओ का निर्देश इस प्रकार किया है।—

राम नाम को अंक है,
सब साधन है सून।
अंक गये कछु हाथ नहिं,
अंक रहे दस गून॥

अर्थात्, राम का नाम अक है, और सब साधन शून्यवत् हैं। अङ्क न रहे तो शून्य का कुछ मूल्य नही; और अङ्क रहे तो शून्य दस गुना हो जाता है। जैसे एक अङ्क के आगे शून्य रख दें तो वह दस हो जायगा, पर दस मे से एक अक को

निकाल दिया जाय तो शून्य शून्य ही रह जायगा।

अब इसीका दूसरा रूप लीजिये।—

तुलसी महीस देखे, दिन रजनीस जैसे,
सूने परे सून से मनो मिटाये आंक के।
(गीतावली)

अर्थात्, राजा लोग इस तरह व्यर्थ हो गये थे, जैसे अंक को मिटा देने पर शून्य निरर्थक हो जाता है।

एक दोहा और लीजिये।—

माया जीव सुभाव गुन,
काल करम महदादि।
ईस अंक ते बढत सब,
ईस अंक बिनु बादि॥
(दोहावली)

माया, जीव, स्वभाव, गुण, काल, कर्म और महदादि विषय जड़ और शून्यवत् हैं। ईश-अंक (१) के सयोग से इनमें चेतनता आती है। अङ्क के विना ये शून्यवत् व्यर्थ हैं।

तुलसीदास, ज्योतिषज्ञ

तुलसीदास एक सुरुचि-सम्पन्न व्यक्ति थे और लोक मे प्रचलित बहुत-सी विद्याओं और कलाओं से अपने को अलंकृत किये हुये थे। वे अच्छे गणितज्ञ थे, इसका परिचय पहले दिया जा चुका है। वे ज्योतिष का भी अच्छा ज्ञान रखते थे। जिसे ज्योतिष की गूढ़ बातों को, जो सस्कृत मे कई श्लोकों में वर्णित हैं, एक दोहे मे कह देने की क्षमता हो, उसको हम उस

विषय का अल्पज्ञ कैसे कह सकते हैं!

तुलसीदास के ज्योतिष-ज्ञान-विषयक कुछ छंद हमें उनके ग्रथों से प्राप्त हुये हैं, जो हमारे इस कथन पर काफी प्रकाश डालते हैं कि तुलसीदास ज्योतिष-शास्त्र के अच्छे पडित थे। वे छद यहाँ दिये जाते हैं।—

अधिकारी बस औसिरा,
भलेउ जानिबे मंद।
सुधा सदन वसु बारहौ,
चौथी चौथो चंद॥
(दोहावली)

'अधिकारी से प्रभावित होकर भले भी मन्द हो जाते हैं। जैसे, अमृत का घर चन्द्रमा आठवे, बारहवे और चौथे स्थान पर तथा भादों सुदी चौथ को मद हो जाता है।'

नेवला, मछली, दर्पण, वेश्या या धोबिन या एक पक्षी, खजन और नीलकठ ये प्रयाण के समय दश दिशाओ में किसी ओर दिखाई पडे, तो मनोरथ पूर्ण होता है।

नकुल सुदरसन दरसनी,
छेमकरी चख चाष।
दस दिसि देखत सगुन सुभ
पूजहि मन अभिलाष॥
(दोहावली)

'रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगल को दसमी, बुधवार को तीज, वृहस्पतिवार को छठ, शुक्रवार को द्वितीया और शनिवार को सप्तमी पड़े तो कुयोग समझना चाहिये। ये तिथियाँ काम को नष्ट करनेवाली हैं।'

रवि हर दिसि गुन रस न्यन,
मुनि प्रथमादिक बार ।
तिथि सब काज नसावनी,
होइ कुजोग विचार ॥
(दोहावली)

'यदि चन्द्रमा का पहला, पाँचवाँ, नवाँ, दूसरा, छठा, दसवाँ, तीसरा, सातवाँ, चौथा, आठवाँ, ग्यारहवाँ और बारहवाँ स्थान क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन में पड़े, तो उसे घातक समझो ।'—

ससि सर नव दुइ छ दस गुन,
मुनि फल बसु हर भानु ।
मेषादिक क्रम ते गनहिं,
घात चन्द्र जिय जानु ॥
(दोहावली)

'श्रुतिगुन अर्थात् श्रवण नक्षत्र से तीन नक्षत्र श्रवण, धनिष्ठा, और शतभिषा, करगुन अर्थात् हस्त से तीन नक्षत्र हस्त, चित्रा और स्वाती, पुजुग अर्थात् पुनर्वसु और पुष्य, मृगशिरा, हय अर्थात् अश्विनी, सखाउ अर्थात् अनुराधा इन बारह नक्षत्रों मे कोई व्यक्ति धन या धरती दे या ले तो वह गई हुई भी समझ पड़े तो विश्वास रक्खे कि जायगी नहीं ।'—

स्रुतिगुन करगुन पुजुग मृग
हय रेवती सखाउ ।
देहि लेहि धन धरनि धरु
गयहु न जाइहि काउ ॥
(दोहावली)

'ऊगुन अर्थात् ऊ से तीन उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद, पूगुन अर्थात् पू से तीन पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और पूर्व भाद्रपद, वि अर्थात् विशाखा, अज अर्थात् रोहिणी, कृ अर्थात् कृत्तिका, म अर्थात् मघा, आ अर्थात् आर्द्रा, भ अर्थात् भरणी, अ अर्थात् अश्लेषा, मू अर्थात् मूल इन नक्षत्रों में चोरी गया हुआ, धरोहर दिया हुआ, गाड़ा हुआ और उधार दिया हुआ धन फिर हाथ नहीं आता।'—

ऊगुन पूगुन वि अज कृ म
आ भ अ मू गुन साथ।
हरो धरो गाडो दियो
धन फिर चढ़ै न हाथ॥

(दोहावली)

'शुक्रवार को शुभ-शकुन देखकर यन्त्र, मन्त्र, मणि-धारण और औषध-सेवन किया जाय तो वह मंगलदायक और यकायक सिद्धि-प्रद होता है।'—

सुक्र सुमंगल काज सब,
कहब सगुन सुभ देखि।
जंत्र मंत्र मनि औषधी,
सहसा सिद्धि बिसेखि॥

(रामाज्ञा-प्रश्न)

'शनिवार को विश्राम लेकर कोई स्थिर कार्य करना शुभ है। लोहा, भैंस, और हाथी के व्यापार मे लाभ होगा और घर और गॉव में सुख और सुविधा रहेगी।'—

राम कृपा थिर काज सुभ,
सनिवासर विश्राम।

लोह महिष गज बनिज भल,
सुख सुपास गृह ग्राम ॥
(रामाज्ञा-प्रश्न)

'मगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि ये पॉचों ग्रह सरल और वक्र गतिवाले हैं, उनकी ओर राहु देखता भी नहीं; पर सूर्य और चन्द्रमा सीधी चालवाले हैं, उनकी वह समय पर विडंबना करता है।'—

सरल बक्र गति पंच ग्रह,
चपरि न चितवत काहु ।
तुलसी सूधे सूर ससि,
समय बिडंबित राहु ॥
(दोहावली)

'दोनो पक्षों में प्रकाश और अंधकार बराबर होता है। ब्रह्मा ने केवल नाम का भेद किया है। ससार ने एक पक्ष के चन्द्रमा को पोषक अर्थात् कलाओं का बढ़ानेवाला और दूसरे पक्ष के चन्द्रमा को शोषक अर्थात् कलाओं का घटानेवाला समझकर उन्हे अलग-अलग यश और अपयश दिया है।'—

सम प्रकास तम पाख दुहुँ
नाम भेद बिधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुझि
जग जस अपजस दीन्ह ॥
(बाल-कांड)

'जन्म के समय ग्रहादि का जैसा योग होता है, उसीके अनुसार ससार का विचित्र रूप देखा जाता है। अक्षर, अंक, रस और रग से उसमें विभिन्नता पाई जाती है। जैसे, रा के

साथ म मिले तो राम और त मिले तो रात; ऐसे ही १ अक को १ मिले तो ११ और ५ मिले तो पन्द्रह, तथा मीठा मिलने से मीठा रस और नमक मिलने से नमकीन रस, इसी तरह एक रंग भिन्न-भिन्न रंगों से मिलकर भिन्न-भिन्न रूपों मे दिखाई पड़ता है।'—

जन्म जोग ते जानियत,
जग विचित्र गति देखि।
तुलसी आखर अंक रस,
रंग बिभेद बिसेखि॥
(दोहावली)

'राम के विशाल भाल पर ललित लटकन और बाल्यावस्था के सुन्दर बाल ऐसे शोभित हैं, जैसे अधकार के गण बृहस्पति, शुक्र, शनि और मगल को आगे लेकर चन्द्रमा को मिलने आये हैं। इसमें ग्रहों के भिन्न-भिन्न रगों की ओर सकेत है।'—

भाल बिसाल ललित लटकन वर,
बाल दसा के चिकुर सोहाये।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि,
ससिहि मिलन तम के गन आये॥
(गीतावली)

'शरद्-ऋतु का चन्द्रमा मेष राशि पर होता है, नीचे के पदों में इसकी जानकारी व्यक्त की गई है।'—

नयन सुषमा निरखि नागरि!
सफल जीवन लेखु।
मनहुँ बिधि जुग जलज बिरचे
ससि सुपूरन मेखु॥
(गीतावली)

'सूर्य-ग्रहण का फल यह है कि राजा और प्रजा को क्लेश होता है; चिंता, विकट संकट, लड़ाई-झगड़े और देश में पाप और दुःखों का प्राबल्य होता है।'—

समउ राहु रवि गहनु मत,
राजहि प्रजहि कलेस।
सगुन सोच संकट बिकट,
कलह कलुष दुख देस॥
(रामाज्ञा-प्रश्न)

'राहु और सोम का एक राशि मे होना भयंकर अशकुन का चिन्ह है। इससे ईति-भीति और दुष्टों की प्रबलता होती है और ब्राह्मण और साधुजन दुःख पाते हैं।'—

राहु सोम संगम विषम,
असगुन उदधि अगाधु।
ईति-भीति खल दल प्रबल,
सीदहिँ भूसुर साधु॥
(रामाज्ञा-प्रश्न)

'संसार मे जीवन (जल) के लिये अहितकर ही अधिक हैं, हितैषी कहीं-कहीं कोई हैं। सूर्य, अग्नि, पृथ्वी और पवन जल को सोखने ही वाले हैं, केवल मेघ ही जल का दानी है।'—

तुलसी जग जीवन अहित
कतहुँ कोइ हित जानि।
सोषक भानु, कृसानु, महि,
पवन, एक घन दानि॥
(दोहावली)

'संसार में काल-रूपी ज्योतिषी शुभाशुभ-कर्म-रूपी खड़िया

मिट्टी हाथ में लेकर मोह-रूपी 'थल' या पट्टी पर चराचर जगत् के हरएक जीव का कर्मानुसार अंक लिखता, काटता, गुणा करता, गिनता और सोचकर बदलता रहता है।'—

करम खरी कर, मोह, थल,
अंक चराचर जाल।
हनत, गुनत, गनि गुनि हनत,
जगत ज्योतिषी काल॥
(दोहावली)

'जन्म-कुडली में छठाँ, सातवाँ और आठवाँ स्थान क्रमशः शत्रु, स्त्री और मृत्यु का माना जाता है। स्त्री को शत्रु और मृत्यु के बीच में देखकर तुलसीदास ने यह विनोद किया है।'—

जन्म - पत्रिका बरति के
देखहु मनहिं विचारि।
दारुन बैरी मीचु के
बीच बिराजत नारि॥
(दोहावली)

'दुर्दिन में जो हित करे, वही हितू है। सुदिन मे वह चाहे हित करे या अहित। चन्द्रमा जब (अमावस्या को) सूर्य के घर में जाता है, तब सूर्य उसके प्रकाश का हरण कर लेता है। फिर भी लोग उसे 'मित्र' कहते हैं।'—

मित्र शब्द यहाँ श्लेष है।

कुदिन हितू सो, हित सुदिन,
हित अनहित किन होइ।
ससि छबि हर रवि सदन तउ
मित्र कहत सब कोइ॥
(दोहावली)

'यात्रा में लोमड़ी का बार-बार मिलना, गाय का बछड़े को सामने खड़ी होकर दूध पिलाना, दाहिनी तरफ़ हिरनो का दिखाई पड़ना, क्षेमकरी और श्यामा पक्षी का बाईं ओर पेड़ पर दिखाई पड़ना, सामने दही और मछली तथा हाथ में पुस्तक लिये हुये ब्राह्मण का आगमन शुभ शकुन माना जाता है। राम की बरात के प्रयाण-समय में उपर्युक्त शकुन हुये थे।'—

लोवा फिरि फिरि दरस देखावा।
सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई।
मङ्गल गन जनु दीन्ह देखाई॥
छेमकरी कह छेम बिसेखी।
स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना।
कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥

(बाल-कांड)

तुलसीदास, संगीतज्ञ

भारतवर्ष संगीत-शास्त्र का आदि जन्म-स्थान है। सप्त-स्वरों का प्रादुर्भाव यहीं हुआ था। साम-रव से प्रथम यहीं की दिशाये गुंजरित हुई थीं।—

प्रथम प्रभात उदित तव गगने।
प्रथम सामरव तव तपोवने॥

(रवीन्द्रनाथ)

यह कहना अत्युक्ति नही है कि आर्य-जाति का जीवन ही संगीत-मय था। हज़ारो वर्षों से परंपरागत नाद-विद्या अब भी

आर्यों के एक-मात्र प्रतिनिधि हिन्दुओ के जीवन में शरीरस्थ रक्त की तरह ओतप्रोत है।

किसानो की झोपड़ियों से लेकर राज-महलों तक अब भी राग-रागिनियाँ मानसोदधि को तरगित करती हुई मिलेंगी। यही देश है जहाँ ऊख की छाया में बैठकर धान का खेत रखाती हुई किसान-कन्या भी गीत गाती रहती थी।—

इक्षुच्छायानिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः ॥

(रघुवंश)

'ईख की छाया में बैठी हुई धान रखानेवाली स्त्रियाँ रघु का यश गाती थीं।'

इसी प्रकार कुबेर की राजधानी अलका में यक्ष-रमणी कंकण के ताल से मोर को नचाया करती थी।—

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनीवासयष्टि—
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ।
तालैश्शिञ्जद्वलयसुभगैः कान्तया नर्तितो मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकंठः सुहृद्वः ॥

(मेघदूत)

'उन वृक्षों के मध्य मे सोने का एक खभ है, जिसपर बिल्लौर की चौकी रक्खी है। उसकी जड़ में पन्ने जडे हैं; मानो हरे बाँस लगे हैं। उस चौकी पर सध्या समय तेरा सखा मोर आकर बैठता है और मेरी स्त्री उसे ककण बजाती हुई ताल दे-देकर नचाती है।'

शिव से लेकर अबतक नाद-विद्या के सैकड़ों आचार्यों ने आर्य-जाति को गौरवान्वित किया है। भगवान् श्रीकृष्ण को गान

और नृत्य दोनों प्रिय थे और वे इन कलाओ के अच्छे ज्ञाता भी थे। एक बार उन्होंने नारद से कहा था।—

नाहं वसामि वैकुंठे
योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति
तत्र तिष्ठामि नारद॥

'न मैं वैकुण्ठ में बसता हूँ, न योगियों के हृदय मे रहता हूँ। मैं तो जहाँ मेरे भक्त गान करते रहते हैं, वही खड़ा रहता हूँ।"

प्रागैतिहासिक काल से लेकर अबतक इस देश के ऋषि-मुनियों, विद्वानों, कला-कोविदों और साधु-सतों में सङ्गीत-विद्या के प्रति सहज अनुराग दिखाई पड़ता है। नारद मुनि नाद की महिमा बताते हुये कहते हैं।—

न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वरः।
न नादेन बिना ग्रामस्तस्मान्नादात्मकं जगत्॥
(नारद-संगीत)

नाद-विद्या के आचार्यों ने नाद की विवेचना करते-करते उसे एक नाद-महोदधि का रूप दे दिया है और अब उसका सम्पूर्ण ज्ञाता होना एक अलौकिक सामर्थ्य की बात हो गई है। यहाँ तक कि सरस्वती को भी उसको पार पाने में असमर्थ बताया गया है।—

नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात्तुम्बं वहति वक्षसि॥
(संगीत-दर्पण)

'नाद समुद्र का पार सरस्वती भी नहीं पा सकती। इसीसे,

डूबने के डर से, वह छाती पर तुम्बा (वीणा) रखती है।'

हमारे प्रातःस्मरणीय महान् पुरुषों की श्रेणी में तुलसीदास भी हैं। हम उनके जीवन में भी संगीत का माधुर्य रस भरा हुआ पाते हैं। वे भक्त थे, कवि थे, विनोदी थे और साथ ही स्वर-शास्त्र के पंडित भी थे। उनमें हमें कोमल कलाओं का एक अद्भुत सामंजस्य देखने को मिलता है।

उनकी दोनों गीतावलियों और विनय-पत्रिका में जितने राग-रागिनियों के उदाहरण उपलब्ध हैं, वे उनकी संगीत-शास्त्र की मर्मज्ञता के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

गीतावली में निम्नलिखित राग-रागिनियों के पद मिलते हैं।—

आसावरी, जैतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हड़ा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोड़ी, सारंग, सूहो, मलार, गौरी, मारू, भैरव, चचरी, वसंत और रामकली।

इनमें केदारा, सोरठ, बिलावल, कान्हड़ा, सारंग, कल्याण, गौरी, टोड़ी, मलार और मारू रागों में उनके अधिक पद मिलते हैं। सबसे अधिक केदारा के पद हैं। इससे जान पड़ता है, केदारा उन्हें बहुत प्रिय था।

श्रीकृष्ण-गीतावली में निम्नलिखित राग-रागिनियों के पद हैं।—

बिलावल, ललित, आसावरी, केदारा, गौरी, मलार, नट, कान्हड़ा, धनाश्री और सोरठ।

इनमें बिलावल और गौरी के पद अधिक हैं।

विनय-पत्रिका में निम्नलिखित राग-रागिनियों के पद हैं।—

बिलावल, धनाश्री, रामकली, वसंत, मारू, भैरव, कान्हड़ा, सारंग, गौरी, दंडक, केदारा, आसावरी, जयतश्री, विभास,

ललित, टोड़ी, सूहो, नट, मलार, सोरठ, भैरवी और कल्याण।

इनमें बिलावल, धनाश्री, रामकली, गौरी और बसंत के पद अधिक हैं।

अब विचार करने की बात यह है कि यह कैसे प्रमाणित हो कि तुलसीदास गान-विद्या के स्वर, ताल और लय से भी परिचित थे। उनके जैसे कवि के लिये पद-रचना एक साधारण-सी बात थी। केवल पद बना देना और उसपर किसी राग-रागिनी का नाम लिख देना इस बात का द्योतक नहीं है कि उनका रचयिता उन्हे स्वर से गा भी सकता था। जबतक तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई गीतावली और विनय-पत्रिका की प्रति नहीं मिलती, तबतक तो यह भी संदिग्ध ही है कि उक्त पुस्तकों मे पदों के ऊपर जो रागों के नाम दिये गये हैं, वे वास्तव मे तुलसीदास के लिखे हुये हैं या उन पुस्तकों के सम्पादकों ने अपनी रुचि के अनुसार उन्हें लिख दिये हैं। अगर वे नाम तुलसीदास ही के लिखे हुये हैं, तो उनसे हम केवल यह निष्कर्ष अवश्य निकाल सकते हैं कि उन पदों का उन्ही राग-रागिनियों मे गाया जाना तुलसीदास को प्रिय था; क्योकि वे पद तो अन्य राग-रागिनियों में भी गाये जा सकते हैं। अतएव तुलसीदास की सगीतज्ञता प्रमाणित करने के लिये हमें पदों के ऊपर लिखे हुये उनके नामों का सहारा नहीं लेना चाहिये। हमें उनकी अंतरंग-परीक्षा करके इस प्रश्न को हल करना चाहिये। आइये, विनय-पत्रिका के एक पद की विवेचना करके देखें कि उसकी रचनाये उसके रचयिता की सङ्गीतज्ञता को कहाँ तक व्यक्त करती हैं।—

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरियो सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ॥

दीन सब अँग हीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन?' कहिबी नाम दसा जनाइ॥
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरियौ बनि जाइ॥
जानकी जग-जननि जन की किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन-गन गाइ॥

यह केदारा में गाया गया है, जो दीपक राग की एक रागिनी है। ताल रूपक है और अं पर सम है।

'कबहुँक' और 'कबहूँ' पर्यायवाची शब्द हैं। यदि 'कबहुँक' के स्थान पर 'कबहूँ' रख दिया जाय तो राग के प्रवाह में एक अप्रिय रुकावट उपस्थित होगी, जो स्वर के अभ्यासियों को तत्काल खटकेगी। 'कबहूँ' का 'कबहुँक' किया जाना एक स्पष्ट प्रमाण है कि इसका रचयिता राग के रास्ते से परिचित था।

केदारा गाने का समय अर्द्धरात्रि है।—

अर्द्धरात्रान्तरे गानं केदारो गीयते बुधैः।

(संगीत-दर्पण)

ऊपर के पद्य में गान के समय का भी ध्यान रक्खा गया है। अर्द्धरात्रि के समय जब राम के समीप केवल सीता ही होंगी और राम राज-काज से निश्चित होकर जब घरेलू बातों की चर्चा के लिये खाली होंगे, तुलसीदास ने राम को अपनी याद दिलाने के लिये उसी समय को ठीक समझा है।

रागों का सबंध रसों से भी होता है। केदारा करुण, शृङ्गार और शांत-रस का राग है। ऊपर के पद में करुण-रस स्पष्टतः छलक रहा है।

केदारा हेमत-ऋतु का राग है। रागों का संबध ऋतुओं से भी होता है। ऋतुओं का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव पर भी पड़ता है। शीत-ऋतु मे मनुष्य प्रायः शात, सुखी और दूसरों से सहानुभूति की भावनावाला होता है।

ऊपर के पद की शब्द-योजना, भाव, राग, रस और ऋतु पर अच्छी तरह ध्यान देने से यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि उसका रचयिता केवल गान ही नहीं जानता था, बल्कि उसके बाह्य उपकरणों से भी परिचित था।

अब एक और पद लीजिये।—

सीय स्वयंबरु माई, दोउ भाई आये देखन।
सुनत चली प्रमदा प्रमुदित मन
प्रेम पुलकि तनु मनहुँ मदन मंजुल पेखन॥
निरखि मनोहरताई सुख पाई कहैं एक एक सों
भूरि भाग हम धन्य आलि! ये दिन, ये खन॥
तुलसी सहज सनेह सुरँग सब,
सो समाज चित चित्रसार लागी लेखन॥

(गीतावली)

यह कान्हड़ा राग मे है। पहले चरण मे 'मा' पर और 'दे' पर सम है, और 'ई' पर हलका आलाप है।

दूसरे चरण मे 'सुनत' शब्द ही से उठान है। 'सुनत चलीं प्रमदा' ये शब्द इस क्रम से बैठाये गये हैं, कि वे सब स्वर के उठान में सहायक हो गये हैं। स्वर-शास्त्र से अनभिज्ञ व्यक्ति 'प्रमदा सुनत चलीं' लिख सकता था, जो राग के स्वाभाविक प्रवाह में एक रुकावट उत्पन्न कर देता, और वह सरसता न आती, जो 'सुनत चली प्रमदा' द्वारा आई है।

एक उदाहरण और लीजिये ।—

सजनी, हैं कोउ राजकुमार।
पंथ चलत मृदु पद कमलनि दोउ
सील रूप आगार ॥

(गीतावली)

यह आसावरी राग का पद है। यह तीन ताला है। पहले चरण में 'हैं' पर सम है, 'नी' पर आलाप है और फिर 'मा' पर सम है।

दूसरा चरण अंतरे का है। अन्तरा प्रथम सम ही से उठा है। 'आ' पर फिर सम है। बीच में लघु वर्णों की आवश्यकता है। 'कमलनि' के 'ल' से स्वर में मधुरता आ गई है। 'कमलनि' को 'कंजनि' किया जा सकता था, पर 'क' से राग के स्वाभाविक सुमधुर प्रवाह की स्निग्धता कम हो जाती। इस पद की शब्द-योजना में इसके रचयिता की स्वरानुभूति प्रतिबिम्बित हो रही है।

जिनको नाद-विद्या से परिचय है, वे तुलसीदास के पदों को गाकर सहज ही में अनुमान कर सकेंगे कि तुलसीदास को संगीत-शास्त्र का केवल पुस्तकी ही ज्ञान न था, बल्कि वे सुकठ भी थे और स्वर, ताल और लय से पूर्ण परिचित भी।

संगीत में गान और नृत्य दोनों का समन्वय माना जाता है। तुलसीदास ने कुछ ऐसे पद भी लिखे हैं, जिन्हे स्वर सहित गाने से गायक और श्रोता दोनों में नृत्य की भावना जागरूक हो उठती है। जैसे।—

सुनो भैया भूप, सकल दै कान।
बज्ररेख गज दसन जनक मन
वेद विदित जग जान।

(गीतावली)

राग मारू का यह पद ऐसे अवसर का है, जब चारोंओर मंडलाकार बैठे हुये राजाओं से जनक के दूत चारोओर मुँह फेर-फेरकर धनुष तोड़ने के लिये कह रहे हैं। अतएव जैसा प्रसंग है, उसीके अनुकूल यह पद-योजना भी है।

शास्त्रीय राग-रागिनियो के अतिरिक्त तुलसीदास ने स्त्री-समाज में गाये जानेवाले गीतों का भी खासा अध्ययन किया था और उन्होने जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल और रामलला-नहछू की रचनायें स्त्री-गीतो ही मे की भी हैं।

तुलसीदास का अन्तर्जगत्

जिस तरह हमारी आँखो के आगे एक बाह्य जगत् है, उसी तरह हमारे भीतर एक अन्तर्जगत् है। जिस तरह बाह्य जगत् में आकाश है और उसमें तरह-तरह के पक्षी उड़ते हैं, वैसे ही अन्तर्जगत् में भी आकाश है और उसमें विचार-तरंगों के विविध पक्षी उड़ा करते हैं, भावों की घटाये घिरती हैं, कल्पना की दामिनी दमकती है और अनुभूति के महोदधि में ज्वार-भाटे आते हैं।

बाह्य जगत् में कलकल-निनादिनी सरिताये हैं; आनन्द-मूक पर्वत हैं; किसी का प्रकाश ढोनेवाले सूर्य, चन्द्र और तारा-गण हैं, वृक्ष, लता और गुल्म हैं, फूल, पखड़ी और पल्लव हैं; बन, बन-पथ, उपत्यका, नदी-तट और हिम-शिखर हैं; उसी प्रकार अंतर्जगत् मे हृदय है, प्रेम है, विरह है, वात्सल्य है, आत्मोत्सर्ग का उन्माद है, आश्चर्य और प्रेरणा है, महत्वाकाक्षा की ज्वाला है, पश्चात्ताप और वेदना है, आशा और निराशा है, सदेश है, सदेह है, त्याग है, विरक्ति है, दीनता और चिन्ता है। सबमे रस है, और सबमे मानव-जीवन का सुख और दुःख ओत-प्रोत है।

तुलसीदास के अन्तर्जगत् का दर्शन करने का सौभाग्य हमे उनके रामचरित-मानस, कवितावली, दोहावली और विनय-पत्रिका से प्राप्त होता है। ये वे खिड़कियाँ हैं, जिनके भीतर से हम तुलसीदास के उस अत्यत मनोरम और शाश्वत सुखमय अन्तर्जगत् का दर्शन कर सकते हैं। जहाँ मानव-हृदय के लिये

अबाध आकर्षण है और जहाँ से जीवन के लिये संदेश की ध्वनि सदा उठती रहती है। तुलसीदास के अन्तर्जगत् के मनुष्य हैं राम और सीता, भरत और लक्ष्मण, हनुमान् और दशरथ, शिव और केवट, कौशल्या और सुमित्रा, इत्यादि। इन सबका नव-निर्माण तुलसीदास ने किया है। तुलसीदास ने इन सबको अपने समय के मनुष्यो के स्वभावो से विभूषित करके इनके द्वारा आगे के ससार के लिये कल्याणकारी आदर्शों की सृष्टि की है। आइये, हम उनके कुछ मनोहर दृश्यो का अवलोकन करें।

तुलसीदास ने अपनी कविता मे अपने अन्तर्जगत् मे व्याप्त अनेक भावोर्मियों के चित्र खीचे हैं। देखकर आश्चर्य होता है कि हमारे कवि को भिन्न-भिन्न स्वभावों और रुचियों के मनुष्यों का कितना प्रशस्त ज्ञान था। वे कितने सूक्ष्मदर्शी थें! किस अवसर पर मनमें कैसी बात उपजती है, इसका पता उनको कितनी अच्छी तरह था!

तुलसीदास की सारी कविता अन्तर्जगत् के सुमनोहर दृश्यो से अलंकृत है। शायद ही कोई पंक्ति ऐसी मिले, जिसमे तुलसीदास ने मानस-जगत् की कोई गूढ बात न कही हो। उनके अन्तर्जगत् का चित्रण तो एक स्वतन्त्र पुस्तक का विषय है। यहाँ स्थान की कमी है। इससे अन्तर्जगत् के कुछ ही विश्रुत दृश्यो की झलक दिखलाकर हम आगे चलेंगे।

पहले छोटाई-बड़ाई के खयाल से तीन असम-वयस्क व्यक्तियों के मनोमुग्धकारी चित्र देखिये।—

लषन हृदय लालसा बिसेखी।
जाइ जनकपुर आइअ देखी॥

प्रभु भय बहुरि मुनिहिँ सकुचाहीं।
प्रगट न कहहि मनहि मुसुकाही॥

लक्ष्मण का मनोभाव समझकर राम ने कहा।—

नाथ लषनु पुरु देषन चहहीं।
प्रभु सकोच डर प्रगट न कहही॥
जौ राउर आयेसु मैं पावउँ।
नगरु देखाइ तुरत लै आवउँ॥

(बाल-कांड)

राम और लक्ष्मण को साथ लेकर विश्वामित्र जनकपुर गये हैं। विश्वामित्र वृद्ध, गुरु और ऋषि हैं; और उनके दोनो शिष्य राज-पुत्र और नवयुवक। उनमें भी एक बड़े, दूसरे छोटे; और वे भी एक उच्च-कुलोचित मर्यादा के वशवर्त्ती। इस प्रकार तीन तरह के मनो का यहाँ समन्वय हो रहा है। तुलसीदास ने यहाँ तीनों के अन्तर्जगत् का रहस्य बताकर कवि की भेदक दृष्टि की पराकाष्ठा दिखला दी है। लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते हैं, पर बडे भाई से डरते और गुरु से लजाते हैं, इससे मन ही मन मुसकुराकर रह जाते हैं; खुलकर नहीं कहते। यह एक चित्र हुआ। दूसरा चित्र राम का है। राम लक्ष्मण से पद में भी बड़े हैं और उम्र में भी। उन्होंने छोटे भाई की सिफारिश की, पर शिष्टाचार के ख़याल से पहले कुछ कहने की आज्ञा लेकर तब की।

वे स्वय भी तो नगर देखने को जाना चाहते हैं, इससे अपने लिये भी आज्ञा माँगते हैं कि मैं लक्ष्मण को नगर दिखलाकर जल्द लौटा लाऊँ। 'तुरत लै आवउँ' गूढार्थ से खाली नहीं है। सभव है, लक्ष्मण बाल-स्वभाव-वश नगर में

कहीं देर तक न रह जायँ, या भटक जायँ, इसलिये मेरा भी साथ जाना ज़रूरी है। राम की यह दलील कैसी मनोहर है!

मुनि दुनिया ख़ूब मँझाये हुये थे। अपने नवयुवक शिष्यो के मनोभाव समझने मे उन्हे देरी नही लगी। आज्ञा देते हुये उन्होंने उनकी शिष्टता की भी प्रशंसा की।—

सुनि मुनीस कह बचन सप्रीती।
कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
(बाल-कांड)

बाल-स्वभाव का एक दूसरा दृश्य देखिये।—

भाई सों कहत बात कौसिकहि सकुचात,
बोल घन घोर से बोलत थोर थोर हैं।
(गीतावली)

लक्ष्मण राम से कुछ बात कर रहे हैं, पर साथ ही विश्वामित्र से सकुचा भी रहे हैं। इससे घन जैसी गभीर ध्वनि होने पर भी वे धीरे-धीरे बोल रहे हैं। बड़ो के आगे किसी अन्य से बात करने में छोटे सकुचाते हैं, ख़ासकर बालक। तुलसीदास बाल-स्वभाव की इस विशेषता से ख़ूब परिचित थे।

बहुत-सी मानस-तरङ्गों का एक केन्द्र पर आकर क्रीड़ा करने का मनोहर दृश्य देखना हो तो मानस मे धनुर्भङ्ग के अवसर पर देखिये। रङ्ग-भूमि में लक्ष्मण-सहित राम को आता देखकर मुख्य-मुख्य दर्शकों मे जो भावोद्रेक हुआ है, कवि-कर्म-कुशल तुलसीदास ने उसका यथारूप चित्र खींच दिया है।—

राजकुँअर तेहि अवसर आए।
मनहुँ मनोहरता तन छाये॥

गुनसागर नागर बर बीरा।
सुन्दर स्यामल गौर सरीरा॥

राजसमाज बिराजत रूरे।
उडुगन महु जनु जुग बिधु पूरे॥

जिन्ह कै रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

देखहिं भूप महा रनधीरा।
मनहुँ बीर रस धरे सरीरा॥

डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी।
मनहुँ भयानक मूरति भारी॥

रहे असुर छल छोनिप बेखा।
तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा॥

पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई।
नरभूपन लोचन सुखदाई॥

नारि बिलोकहिं हरषि हिय
निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सृङ्गार धरि
मूरति परम अनूप॥

बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा।
बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥

जनक जाति अवलोकहिं कैसे।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥

जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा।
सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता।
इष्टदेव इव सब सुखदाता॥
रामहिं चितव भाव जेहि सीआ।
सो सनेह सुख नहिं कथनीया॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ।
कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥
जेहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ।
तेहि तस देखेउ कोसलराऊ॥

मालूम होता है, कवि अपनी समस्त पूँजी लेकर रङ्ग-मंडप में उपस्थित था। ऊपर के वर्णन में उसने कविता के नवो रसों को एकत्र कर दिया है। अन्य वर्णनों में जो रस है, उससे कहीं अधिक मधुर रस सीता की 'उर अनुभवति न कहि सक सोऊ' वाली दशा में है। कवि ने मर्म की एक बात कह तो दी ही, जिसे कवि ही कह सकता है। अब कवि की असमर्थता की दुहाई देना उसपर और प्रकाश डालना है। यह भी कवि का चमत्कार है।

अब सीता की मनोदशा का एक चित्र देखिये।—

सीय सनेह सकुच बस पियतन हेरइ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ॥
(जानकी-मंगल)

जिस तरह पवन अपने झकोरों से किसी लता का झुकाव लतिकालिङ्गित वृक्ष की ओर कर देता है, उसी तरह प्रेम सीता को संकोच की ओर से खींच-खींचकर राम की ओर झुका रहा

है। सीता की इस मनोदशा का चित्रण करके तुलसीदास ने कवि-कौशल की हद कर दी है।

एक दूसरा चित्र।—

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि,
राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग,
जनु बिधुमंडल डोल॥
(बाल-कांड)

रग-मडप मे राम को सीता देख रही हैं। उस समय सीता के नेत्रों के खेल के बहाने कवि ने एक नवोढ़ा के मन की अद्भुत छटा दिखलाई है। सीता प्रेम-वश राम का मुँह देखती हैं, फिर लज्जा-वश पृथ्वी पर दृष्टि कर लेती हैं, कैसा सुन्दर दृश्य है। कवि की पहुँच की प्रशसा जितनी की जाय, कम है। छन्द का रस 'चितइ' और 'चितव' मे है।

सीता के हृदय की एक सुन्दर-सी झलक हमें उस अवसर पर भी देखने को मिलती है, जब बन जाते समय आगे-आगे राम, बीच मे सीता और उनके पीछे लक्ष्मण चल रहे थे।—

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता।
धरति चरन मग चलति सभीता॥
(अयोध्या-कांड)

पतिव्रता सीता अपने चरण से पति के पद-चिन्ह भी नहीं छूना चाहती, इससे वे राम के पद-चिन्हों को बचा-बचाकर, सावधानी से, दो पद-चिन्हों के बीच मे पद रखती हुई चल रही हैं।

मानस-जगत् की एक सुन्दर छटा भरत और राम के मिलने के अवसर पर, चित्रकूट मे, हमे देखने को मिलती है।—

सुरमाया सब लोग विमोहे।
राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥
भय उचाट बस मन थिर नाहीं।
छन बन रुचि छन सदनु सोहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी।
सरित सिन्धु संगम जनु बारी॥
दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं।
एक एक सन मरमु न कहहीं॥
(अयोध्या-कांड)

अयोध्या-निवासियो का जी चित्रकूट से उचट गया था, पर वे एक दूसरे से अपना भेद नही कहते थे। मनोविज्ञान की गूढ़ बात है।

तुलसीदास मूक-अभिनय मे बड़े निपुण थे। उनके सांकेतिक अभिनय की आड़ मे इतना बड़ा भाव-समुद्र उमड़ा हुआ रहता है कि सहृदय व्यक्ति उसीमे निमग्न हो जाता है और उसे आगे की सुधि नही रहती। एक उदाहरण लीजिये।—

सुनि केवट के बयन,
प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन,
चितइ जानकी लषन तन॥
(अयोध्या-कांड)

केवट ने राम को गंगा के पार ले जाने के पहले ग्रामीणो की तरह जो प्रेम-पूर्ण अटपटे वचन कहे थे, उन्हे सुनकर, जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर, राम मुसकुरा दिये थे। देखने

में यह एक साधारण-सी घटना है, पर केवट के जिस निष्कपट प्रेम ने राम के विशाल महोदधि में मुसकुराहट की लहर उठाई, वह साधारण नहीं। बस, 'विन्दु में सिन्धु समान' वाली बात है।

उसके आगे एक मूक-अभिनय और भी है।—

पिय हिय की सिय जाननिहारी।
मनि मुँदरी मन मुदित उतारी॥
(अयोध्या-कांड)

पतिव्रता पत्नी का पति के मन से मन, प्राण से प्राण और जीव से जीव कैसे मिले हुये होते हैं, यह वर्णन उसका एक सुन्दर-सा उदाहरण है।

अब साधारण समाज की एक ग्रामीण स्त्री की बात सुनिये।—

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी।
इन्हहिं बहुत आदरत महामुनि
\ समाचार मेरे नाह कहे री।
(गीतावली)

'समाचार मेरे नाह कहे री' में स्त्री-स्वभाव की एक छटा है। स्त्रियाँ अपने पति के वचनों पर कैसी आस्था रखती हैं और कैसी सरलता से उन्हे व्यक्त करती रहती हैं, तुलसीदास ने यहाँ उसीका चित्र खींचा है।

एक भक्त के हृदय का मनोमोहक दृश्य तुलसीदास ने हमें शङ्कर की प्रेम-समाधि में इस प्रकार दिखलाया है।—

बार बार प्रभु चहहिँ उठावा।
प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥

प्रभु कर पंकज कपि कै सीसा।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥
सावधान मन करि पुनि संकर।
लागे कहन कथा अति सुन्दर॥

(सुन्दर-कांड)

यह प्रसङ्ग हनुमान् की लङ्का से वापसी के समय का है। हनुमान् के सिर पर राम का हाथ है। उस दृश्य को ध्यान के नेत्रों से देखकर शिव मुग्ध हो गये। एक ही क्षण मे दो सीन बदल गये हैं। एक तो 'सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा' का है, दूसरा 'सावधान मन करि' का।

अब एक अन्य प्रसंग का सौन्दर्य सुख अनुभव कीजिये।—

रावण अंगद से कहता है।—

तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर,
मोहिं दास ज्यों डाटन आयो॥
जो तरिहैं भुज बीस घोर निधि
ऐसो को त्रिभुवन में जायो।
सुनि दससीस वचन कपि-कुंजर
बिहँसि ईस मायहिं सिर नायो॥

(गीतावली)

रावण के अभिमान से भरे वचन सुनकर अगद का हँसकर ईश्वर की माया को सिर नवाने से बढ़कर चुभता हुआ उत्तर और क्या होता! इस एक वाक्य की आड़ में अगद की तत्का-लीन निर्भकिता, परिणामदर्शिता और अनुत्तेजित बुद्धि का चित्र

है। केवल अंग-सचालन-द्वारा मूक और मर्मभेदी उत्तर देने में तुलसीदास का समकक्ष कवि हिन्दी में कोई नहीं हुआ।

अब ज़रा भरत के मन की उच्चता देखिये।—

जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज
जीवन दान दियो है।
दुख लघु लखन मरम घायल सुनि,
सुख बड़ो कीस जियो है॥
(गीतावली)

अयोध्या के ऊपर से आते हुये हनुमान् को भरत ने तीर से मार गिराया था। पीछे जब उन्हे मालूम हुआ कि वे राम के दूत थे और लक्ष्मण के लिये औषध लेकर हिमालय से लङ्का लौटे जा रहे थे, उस समय भरत को लक्ष्मण के घायल होने का दुःख तो कम, पर हनुमान् के जी उठने का सुख अधिक जान पड़ा। यहाँ तुलसीदास ने एक सत के मन का चित्र उतारा है।

अगद राम के पास से फिर किष्किन्धा को लौटना नहीं चाहता था, पर राम उसे रखना भी नहीं चाहते थे। उन्होंने उसकी प्रार्थना अस्वीकार की थी; पर अगद को आशा बनी ही रही कि शायद वे उसे रोक ले। आशा का यह नृत्य तुलसीदास ने बड़ी ही ख़ूबी से दिखलाया है।—

अंगद हृदय प्रेम नहिँ थोरा।
फिरि फिरि चितव राम की ओरा॥
बार बार कर दंड प्रनामा।
मन अस रहन कहहिँ मोहिँ रामा॥
(उत्तर-कांड)

राम की सावधानता का एक चित्र देखिये ।—

कह्यो राज बन दियो नारिबस,
गरि गलानि गयो राउ ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों
निज तनु मरम कुघाउ ॥
(विनय-पत्रिका)

कैकेयी ने राम को वनवास दिलाया था । वन से लौट आने पर राम ने कैकेयी के प्रति मन मे कुछ भी मैल न रखते हुये जैसा व्यवहार प्रकट किया, उसका निदर्शन इस पंक्ति में है । कैकेयी के मन मे ग्लानि तो थी ही, पर कैकेयी के मन में राम कभी उसके पूर्व-कृत्य का स्मरण भी नहीं आने देना चाहते थे और उसको इस तरह सँभालते रहते थे, जैसे शरीर में किसी मर्म-स्थान में लगा हुआ कठोर घाव ठेस लगने से बचाया जाता है । कैसी मार्मिक उपमा है । 'जोगवत' शब्द मे रस है ।

कुतर्की शिष्य ने गुरु की बार-बार अवहेलना की थी, पर क्षमाशील गुरु सदा उसपर एक-सा स्नेह रखते रहे । क्षमा की इस विजय का जयनाद हमें शिष्य के इस पश्चात्ताप मे सुनाई पड़ रहा है ।—

एक सूल मोहिं बिसर न काऊ ।
गुरु कर कोमल सील सुभाऊ ॥
(उत्तर-कांड)

इसीके जोड़ की एक दूसरी घटना और है । उसमे शिष्य क्षमा-शील है । उसे गुरु के क्रोध पर विजय प्राप्त हुई है । शिष्य ने गुरु से उत्तर-प्रत्युत्तर करके उसको उत्तेजित कर लिया

था और धैर्य पूर्वक उसके शाप को अंगीकार किया था। शिष्य की इस सहन-शीलता ने क्रोधी गुरु पर विजय प्राप्त की।—

रिषि मम सहनसीलता देखी।
रामचरन बिस्वास बिसेखी॥
अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई।
सादर मुनि मोहिँ लीन बोलाई॥
(उत्तर-कांड)

अब मनुष्य के मन की दो गूढ परिस्थितियों का चित्र देखिये।—

मेरे जान और कछु न मन गुनिये।
काहे को करति रोष,
केहि धौं कौन को दोष,
निज नयननि को बयो सब लुनिये।
दारु सरीर, कीट पहिले सुख
सुमिरि सुमिरि बासर निसि घुनिये।
(श्रीकृष्ण-गीतावली)

पहला चित्र है, 'निज नयननि को बयो सब लुनिये' में। आँखों ने जो बोया है, उसे काटना, कैसी सलोनी बात है। आँखों से बोने और काटने की दोनों क्रियाओं में जो माधुर्य सन्निहित है, उसका अनुभव विरले ही भाग्यवानो को होगा।

दूसरा चित्र है, 'दारु सरीर कीट पहिले सुख' की पूरी पक्ति में। बीते हुये सुखों के स्मरण घुन की तरह हमें खाया करते हैं। 'घुनिये' शब्द इस पंक्ति की जान है। इस पंक्ति में एक ऐसी बात का जिक्र है, जो मनुष्य के जीवन का एक निश्चित विषय है; कोई जाति, कोई श्रेणी-विभाग उससे रहित नही है।

शिवजी की बरात जा रही है। देव-गण बराती हैं। विष्णु शिवजी के मित्र हैं। वे स्वभावतः विनोद-प्रिय हैं। इससे विवाह के मौके पर कुछ मजाक करना, चुटकी लेना उनके लिये स्वाभाविक था। उन्होने कहा।—

बिस्नु कहा अस बिहँसि तब,
बोलि सकल दिसिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहु सब,
निज निज सहित समाज॥

मनही मन महेस मुसुकाही।
हरि के व्यङ्ग बचन नहि जाहीं॥

(बाल-कांड)

यहाँ शिवजी का 'मनही मन मुसकुराना' और भीतर ही भीतर उनका यह कहना कि 'हरि के व्यंग वचन नहि जाहीं' एक सच्चे प्रेमी मित्र के मन का सुन्दर दर्शन दिलाकर सहृदय व्यक्तियो को उनके निष्कपट और विनोदी मित्रों की याद दिला रहा है।—

शिव के मन की एक दूसरी झाँकी भी देखिये।—

हृदय बिचारत जात हर,
केहि बिधि दरसन होइ।
गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु,
गयें जान सब कोइ॥

सती-मोह के अवसर की कथा है। राम अवतार ले चुके हैं। शिव राम से मिलने का अवसर खोज रहे हैं। मिलने की उनकी इच्छा वलवती है, पर उनको इस वात का भय है कि

प्रभु गुप्तरूप से अवतरे हैं; मैं उनसे मिलने जाऊँगा तो सब लोग उनको जान जायँगे। लोक-विश्रुत बात है कि शिव से बड़े केवल राम हैं। शिव अपने से बड़े ही को मिलने जायँगे। इससे भगवान् के गुप्तरूप से प्रकट होने का उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा।

तुलसीदास ने यहाँ एक शिष्ट व्यक्ति के मन की बहुत ही बारीक भावना का उल्लेख करके शिव की महत्ता ही नहीं बढ़ाई, अपने व्यक्तित्व को भी चमका लिया है। हम जान गये कि वे मर्यादाशील पुरुषों के स्वभाव से कितना अधिक परिचित थे।

मित्रों के परस्पर हास-विलास में कितना माधुर्य होता है, इसको गाढ़ी मित्रतावाले सुजन अच्छी तरह जानते हैं। तुलसीदास भी इसकी सरसता से अभिज्ञ थे। उन्होंने ब्रह्मा से पार्वती को महेश के सामने ही जो उलाहना दिलवाया है, उसमें आइये, हम उसका रसास्वादन करें।

ब्रह्मा कहते हैं।—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी॥
निज घरकी घरबात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी।
सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकबानी॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रसंसा बिनय ब्यंग जुत सुनि बिधि की बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिँ मन जगतमातु मुसुकानी॥
(विनय-पत्रिका)

इस उलाहने में जो व्यंग्यात्मक मिठास है, जो प्रशंसात्मक उपहास है, उसका सुख किसी भाग्यशाली ही का विभव है।

अब हम तुलसीदास के अंतर्जगत् के खास-खास शोभा-केन्द्रों पर अपने पाठकों को ले चलते हैं।—

प्रेम और विरह

प्रेम संसार के अद्भुत पदार्थों में से एक है। प्रेमीजन प्रेम और परमेश्वर को एक दूसरे का पर्यायवाची मानते हैं। तुलसीदास प्रेम की महिमा से पूर्ण परिचित थे: उनका हृदय प्रेम के विमल प्रकाश से प्रकाशित था। इससे प्रेम का प्रकाश उन्हें अन्यत्र जहाँ, जिस कोने मे, दिखाई पड़ा, उसमें मिलकर वे एक होगये हैं।

प्रेम के प्रभाव से क्या नहीं हो सकता? पर प्रेम सच्चा होना चाहिये। प्रह्लाद ने सच्चे प्रेम के प्रभाव से पत्थर में से परमेश्वर को बाहर निकलने के लिये विवश किया था।—

प्रेम बदौं प्रहलादहि को
जिन पाहन तें परमेश्वर काढ़े।
(कवितावली)

अंतरजामिहुँ तें बड़ बाहिर
जामि हैं राम जे नाम लिये ते
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों
बालक बोलनि कान किये तें।
आपनि बूझि कहै तुलसी,
कहिबे की न बावरि बात बिये तें।

पैज परे प्रहलादहु को
प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिये तें ॥
(कवितावली)

सुकोमल हृदय की अपेक्षा कठोर पत्थर से प्रभु को प्रकट करना।प्रेम की सच्ची परीक्षा है ।

प्रेम कभी अशुद्ध नहीं होता । उसमें मलिनता आती ही नहीं । जिस तरह सूर्य की किरणें अस्पृश्य पदार्थ पर भी पड़ती हैं, पर उनमें गन्दापन नहीं छू जाता । इसी प्रकार प्रेम चाहे जिस रूप में हो, पात्र का दोष उसपर नहीं व्यापता । इसीसे तो तुलसीदास ने कामी और लोभी पुरुषो के प्रेम को भी-आदर्श माना है ।—

कामिहि नारि पियारि जिमि,
लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर,
प्रिय लागहु मोहि राम ॥
(उत्तर-कांड)

भगवान् प्रेम-स्वरूप हैं, इससे जहाँ प्रेम होता है, वहाँ वे आप से आप प्रकट हो जाते हैं । मानस में एक स्थान पर तुलसीदास ने शिव के मुख से प्रेम की एक अद्‌भुत महिमा कहलाई है ।—

जाके हृदय भगति जस प्रीती ।
प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीती ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥

अग जग मय सब रहित बिरागी।
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

(बाल-कांड)

'मैं जाना' इस वर्णन का प्राण है। तुलसीदास ने प्रेम ही को राम से मिलने का एकमात्र आधार माना है।—

रामहिँ केवल प्रेम पियारा।
जानि लेउ जो जाननिहारा॥

(अयोध्या-कांड)

मिलहिँ न रघुपति बिनु अनुरागा।
किये जोग जप ग्यान बिरागा॥

(उत्तर-कांड)

राम की कृपा प्राप्त करने के लिये केवल निष्केवल प्रेम ही एक साधन है।—

उमा जोग जप दान तप,
नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिँ करहिं तसि,
जसि निहकेवल प्रेम॥

(लंका-कांड)

राम के मुख से भी तुलसीदास ने ऐसी ही बात कहलाई है।—

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति
तुम्हसन कौन दुराउ॥

पुनि पुनि भुजा उठाइ कहत हों
सकल सभा पतिआउ।
नहि कोऊ प्रिय मोहिं दास सम
कपट प्रीति बहि जाउ॥

'तुम्हसन कौन दुराउ' में राम के सच्चे प्रेम का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा है। सच्चे प्रेम में 'दुराउ' रही नही सकता।

राम के चरित्र में सच्चे प्रेम के अनोखे उदाहरण देदीप्यमान हैं।

जटायु राम का भक्त था। एक सच्चे प्रेमी की तरह उसने राम के असूचित सकट में आड़े आकर अपने प्राण दिये थे। मृत्यु के समय, राम से मिलने के प्रथम, उसकी एकही आकांक्षा थी कि वह किसी तरह सीता का समाचार राम को सुनाकर तब मरता। उसे अपने परिवार की याद नहीं आई, शरीर पर लगे हुये घावो की व्यथा की उसने कुछ परवा नहीं की; बस, एकबार तपस्वी-वेष में राम को देखने और सीता का समाचार उन्हे सुना देने की लालसा ही उसे रह गई थी।

मरत न मैं रघुबीर बिलोके,
तापस बेष बनाये।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु
सिय सुधि प्रभुहि सुनाये॥
(गीतावली)

कैसा निष्केवल प्रेम है!

गिद्ध पर राम का प्रेम उससे किसी प्रकार घटकर नही था। राम के मुख से गिद्ध के प्रति जो उद्गार निकले हैं, उन्होंने राम को राम बना दिया है। गिद्ध को गोद में लेकर राम ने कहा।—

सुनहु लखन खगपतिहि मिले वन,
मै पितु मरन न जान्यौ।
(गीतावली)

सच्चे प्रेम विना ऐसा कौन कह सकता है ?

राम ने गिद्ध से कहा ।—

मेरे जान तात कछू दिन जीजै।
देखिय आपु सुवन सेवा सुख
मोहिं पितु को सुख दीजै ॥
(गीतावली)

धन्य है ! राम गिद्ध जैसे निम्न कोटि के जीव का पुत्र वनकर उसकी सेवा का आनन्द अनुभव करना चाहते हैं और उससे कहते हैं कि मैं पितृहीन हूँ, जीवित रहकर मुझे पिता का सुख दो ! कैसी हृदय को द्रवित कर देनेवाली वात है। तुलसीदास को धन्य है, जो राम के मुख से प्रेम की ऐसी महिमामयी वात वोल रहे हैं।

तुलसीदास ने चातक को सच्चा प्रेमी माना है। जहाँ कहीं सच्चे प्रेम के उदाहरण की आवश्यकता उन्हे पड़ी है, चातक को उन्होने सबसे पहले स्मरण किया है। वे कहते हैं।—

जलदु जनम भरि सुरति विसारेउ ।
जाचत जलु पवि पाहन डारेउ ॥
चातक रटनि घटे घटि जाई ।
बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई ॥
(अयोध्या-कांड)

एक भरोसो, एक वल,
एक आस विस्वास ।

एक राम घनश्याम हित,
चातक तुलसीदास ॥

जौ घन बरपै समय सिर,
जौ भरि जनम उदास ।
तुलसी या चित चातकहि,
तऊ तिहारी आस ॥

रटत रटत रसना लटी,
तृषा सूखि गे अंग ।
तुलसी चातक प्रेम को,
नित नूतन रुचिरंग ॥

चढ़त न चातक-चित कबहुँ,
प्रिय पयोद के दोख ।
तुलसी प्रेम पयोधि की,
ताते नाप न जोख ॥

उपल बरपि गरजत तरजि,
डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि,
कबहुँ दूसरी ओर ?

मान राखिबो, माँगिबो,
पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फबै,
जौ चातक मत लेहु ॥

तीनि लोक तिहुँ काल जस,
चातक ही के माथ ।

तुलसी जासु न दीनता,
सुनी दूसरे नाथ ॥

नहि जाँचत, नहिं संग्रही,
सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनेहि,
को बारिद बिन देइ ?

डोलत बिपुल बिहंग बन,
पियत पोषरिन बारि ।
सुजस धवल, चातक नवल,
तुही भुवन दस चारि ॥

मुख मीठे, मानस मलिन,
कोकिल मोर चकोर ।
सुजस धवल, चातक नवल,
रह्यो भुवन भरि तोर ॥

बध्यो बधिक परयो पुन्य जल,
उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेम-पट,
मरतहु लगी न खोंच ॥

जियत न नाई नारि,
चातक घन तजि दूसरहि ।
सुरसरिहू को बारि,
मरत न माँगेउ अरध जल ॥

सुन रे तुलसीदास,
प्यास पपीहहि प्रेम की ।

परिहरि चारिउ मास,
जो अँचवै जल स्वाति को ॥
(दोहावली)

मृग, कमल और मीन के प्रेम की भी उन्होंने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।—

आपु व्याध को रूप धरि
कुहो कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृगमन मुरे
परै प्रेमपट दाग ॥

जरत तुहिन लखि वनज वन
रवि दै पीठि पराउ।
उदय विकस, अथवत सकुच,
मिटै न सहज सुभाउ ॥

देउ आपने हाथ जल
मीनहिं माहुर घोरि।
तुलसी जियै जो वारि बिनु
तौ तु देहि कवि खोरि ॥

मकर, उरग, दादुर, कमठ
जल-जीवन जल-गेह।
तुलसी एकै मीन को
है साँचिलो सनेह ॥
(दोहावली)

मीन को तो उन्होंने त्रिभुवन मे सबसे बड़ा प्रेमालु कहा है।—

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै
कहत, करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत ते
त्रिभुवन बड़ो न कोइ॥

(दोहावली)

अब विरह को लीजिये। प्रेम और विरह, दोनों आधार आधेय हैं। कौन आधार है, और कौन आधेय, यह निर्णय करना बहुत कठिन है। प्रेम का आनन्द बिना विरह के मिल नहीं सकता; और विरह न हो तो प्रेम का अस्तित्व ही बोध नहीं होता।

एक उर्दू कवि ने तो विरह ही को प्रेम से बढ़कर माना है।—

वस्ल में हिज्र का ग़म हिज्र में मिलने की ख़ुशी।
कौन कहता है, जुदाई से विसाल अच्छा है?

आइये, हम तुलसीदास के अन्तर्जगत् मे कुछ विरह के और अनोखे चित्र देखें।—

अशोक-वन मे विरह-निपीड़िता सीता रात दिन रोया करती थीं। उनके नेत्र मनसिज के रहट की तरह विरह-रूपी विष-वेलि को सींचते रहते थे।—

सुन त्रिजटा! प्रिय प्राननाथ बिनु
बासर निसि दुख दुसह सहे री।
बिरह बिषम विष बेलि बढ़ी उर
ते सुख सकल सुभाय दहे री।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के
रहँट नयन नित रहत नहे री॥
(गीतावली)

आँसू विरह की अमूल्य निधि हैं। रात-दिन वे बरसते न रहे तो विरही का जीना कठिन हो जाय।

राम के विरह से व्याकुल सीता ने अपनी सुध-बुध खो दी थी। वे चन्द्रमा को सूर्य समझकर विनती करने लगी थीं।—

सरद चाँदनी सँचरति चहुँ दिसि आनि।
विधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि॥
(बरवै-रामायण)

हनुमान् ने जब सीता के सामने अँगूठी गिरा दी, तब विरहावेश में सीता अँगूठी ही को सम्बोधन करके कहने लगी थीं।—

बोलि बलि मूँदरी सानुज कुसल कोसलपालु।
अमिय बचन सुनाइ मेटहि बिरह ज्वाला जालु॥
रोष छमि सुधि करत कबहूँ ललित लछिमन लालु?
(गीतावली)

वे मुद्रिका से राम और राम के प्रिय भ्राता लक्ष्मण दोनों का कुशल-समाचार पूछती हैं। लक्ष्मण को उन्होंने कुछ अप्रिय वचन कहे थे, जो उन्हें विरहावस्था में भी नहीं भूले थे। यह सीता के स्वभाव की सरलता और उनकी सत्कुलोचित भद्रता का द्योतक है।

सीता की दशा देखकर धीरवीर हनुमान् भी बालक की तरह रो उठे थे।—

सुवन समीर को धीर धुरीन बीर बडोइ।
देखि गति सिय मुद्रिका की बाल ज्यों दियो रोइ॥
(गीतावली)

हनुमान् का रो उठना सीता की विरहाकुलता को और भी प्रशस्त कर रहा है।—

इस दशा मे हनुमान् ने विरही राम का यह संदेशा विरहिणी सीता को सुनाया था।—

कहेउ राम बियोग तव सीता।
मोकहुँ सकल भये बिपरीता॥

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू।
काल निसा सम निसि ससि भानू॥

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा।
बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥

जे हित रहे करत तेइ पीरा।
उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥

कहेहू ते कछु दुख घटि होई।
काहि कहउँ यह जान न कोई॥

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मनु मोरा॥

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं।
जानु प्रीतिरस इतनेहि माहीं॥

अन्तिम चौपाइयाँ हीरे के मूल्य की हैं। प्रेम की इससे अधिक सुंदर व्याख्या और क्या होगी? वह क्षण कैसा मधुर जान पड़ता है, जब दो विरहियो के प्रेम-समुद्र एक दूसरे से टकराये थे।

हनुमान् जब सीता से विदा होने लगे, उस समय का सीता की मनोदशा का चित्र देखकर हृदय मे अनेक मधुर रसों के सोते खुल पड़ते हैं। सीता ने कहा।—

पीतम-विरह तौ सनेह सरबसु, सुत!
औसर को चूकिबो सरिस न हानि॥

आरज-सुवन के तो दया दुवनहुँ पर,
मेरे ही दिन सब बिसरी बानि ॥
(गीतावली)

'प्रियतम का विरह स्नेह का सर्वस्व है', स्नेह की कैसी सुन्दर व्याख्या है !

हनुमान् ने सीता को जो उत्तर दिया है, उससे प्रेम का स्वरूप और भी अधिक चमकदार हो उठा है।—

ऐसे तो सोचहिं न्याय, निठुर-नायक-रत,
सलभ, खग, कुरङ्ग, कमल, मीन।
करुनानिधान को तो ज्यों ज्यों तनु छीन भयो,
त्यों त्यों मनु भयो तेरे प्रेम पीन ॥
(गीतावली)

विरही के शरीर की क्षीणता के साथ-साथ उसके प्रेम की पीनता का बढ़ना जितना मधुर लगता है, उसका अंदाजा कोई विरही ही कर सकता है। तुलसीदास को भी उसका अनुभव था; नही तो उनको यह उत्तर सूझता ही नही। हनुमान् ने शलभ, खग, कुरग, कमल और मीन के न्याय-निष्ठुर नायको से राम को भिन्न बताकर सीता को जो सान्त्वना दी थी, उससे राम के विशुद्ध प्रेम का रूप स्पष्ट हो गया है।

विरह-विदग्धा सीता ने हनुमान् से अपनी एक मनोवेदना कही थी।—

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिँ बुझाइ ॥
(बरवै-रामायण)

इसमें आँखो को वैरिणी बताकर उन्होंने आँखों के प्रति अपना अनंत प्रेम प्रदर्शित किया है।

सचमुच विरही तो आँखो ही के आग्रह से जीता रहता है। हनुमान् ने सीता का जो सदेशा राम को सुनाया था, उसमें सीता की वैरिणी आँखों का विशेष विवरण है।—

नाथ जुगल लोचन भरि बारी।
बचन कहे कछु जनककुमारी॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी।
केहि अपराध नाथ हौं त्यागी॥
अवगुन एक मोर मै माना।
बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा।
निसरत प्रान करहिँ हठि बाधा॥

नयनो का यह अपराध कितना मधुर जान पड़ता है! इसे वही अनुभव कर सकता है, जिसके हृदय में विरह की वेदना होगी।

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरइ छन माँह सरीरा॥
नयन स्रवहि जलु निज हित लागी।
जरइ न पाव देह बिरहागी॥

यह तो नयनो के अपराध की व्याख्या है। इसके आगे हनुमान् ने कहा है।—

सीता कै अति विपति बिसाला।
बिनहिँ कहे भल दीनदयाला॥

'बिनहिँ कहे भल' मे तो उन्होने सब कुछ कह डाला।

सीता के मनोभाव का एक दूसरा मनोहर चित्र देखिये।—

कहु कबहुँ देखिहौं आली आरज सुवन।
सानुज सुभग तनु जबतें बिछुरे बन,
तबतें दव सी लगी तीनिहूँ भुवन।
मूरति सुरति किये प्रगट प्रीतम हिये,
मन के करन चाहैं चरन छुवन॥
(गीतावली)

अंतिम चरण मे जान है। सीता त्रिजटा से कहती है—"प्रियतम की मूर्ति का स्मरण करते ही वह हृदय में प्रकट हो आते हैं और मन के हाथ उनके पैर छूना चाहते।" एक तद्गतचित्ता विरहिणी का कैसा सुन्दर भाव है! भारतीय नारी पति के चरणों मे प्रीति रखती है, पति से प्राप्त होनेवाले विषय-भोग मे नहीं; यह ध्यान देने की बात है।

त्रिजटा सीता से कहती है।—

तुम अति हित चितइहौ नाथ तनु,
बार बार प्रभु तुमहि चितैहैं।
यह सोभा सुख समय विलोकत
काहू तौ पलकैं नहिं लैहैं॥
(गीतावली)

'वह समय निकट है, जब तुम बहुत प्रेम से अपने प्रियतम को देखोगी और तुम्हारे प्रभु बार-बार तुमको देखेंगे। यह शोभा और यह सुख देखते हुये कोई भी पलक नही गिरायेगा।'

दो प्रेमियों का परस्पर एक दूसरे को देखना ससार के अत्यंत सुखकर दृश्यों में से एक दृश्य है। एक देहाती गीत में भी एक प्रेमिका अपने 'पिया' से ऐसा ही कहती है।—

हम चितवत तुम चितवत नाहीं
तोरी चितवन में मन लागो पिया ।

हनुमान् ने एक प्रशंसित चित्रकार की तरह राम के सम्मुख विरहिणी सीता का यह चित्र खींचा था ।—

मैं देखी जब जाइ जानकी,
मनहु बिरह मूरति मन मारे ।
चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन कर,
मढे से स्रवन नहिं सुनति पुकारे ॥
(गीतावली)

एक विरहिणी का यह कैसा यथार्थ चित्र है !

अब सीता के प्रियतम का एक रूप देखिये ।—

धरि धरि धीर वीर कोसलपति
किये जतन सके उत्तरु दै न ।
तुलसिदास प्रभु सखा अनुज सों,
सैनहिं कह्यो, चलहु सजि सैन ॥
(गीतावली)

तुलसीदास को धन्य है ! राम के मुख से कुछ उत्तर न दिलाकर, राम की तत्कालीन बाह्य दशा का एक साधारण-सा परिचय देकर, उन्होंने अपने कवि-कौशल का बहुत बड़ा परिचय दे डाला है । कोसलपति के साथ 'वीर' विशेषण लगाकर 'उत्तर न दे सकने' की तत्कालीन अवस्था को उन्होंने और भी गभीर बना दिया है । 'धरि' शब्द दो बार आया है, इससे यह प्रकट होता है कि राम ने बारबार अपने को स्वस्थ करके उत्तर देने का प्रयत्न किया, पर वे सफल न हुये। तब लक्ष्मण को उन्होंने

इशारे से कहा कि सेना सजाकर चलो। कवि ने एक 'सैनहिं' में एक प्रेमी के हृदय का एक बहुत बड़ा अध्याय कह डाला है।

अब आइये, उस कवि का चित्र तो देखे, जो प्रेम के इतने स्पन्दनो से स्वय स्पन्दित हो रहा है। मेरा अभिप्राय तुलसीदास से है। तुलसीदास, जिन्होंने प्रेमियो की नस-नस से निचोडकर उनके प्रेमोद्गार प्रकट किये हैं, क्या प्रेम की पीड़ा से शून्य होगे ? यह तो असंभव है। जो स्वय प्रेमी न होगा, वह प्रेम के रहस्य का उद्घाटन कर भी न सकेगा। आइये, तुलसीदास को देखे।—

तुलसीदास के काव्यो में सर्वत्र उनको राम का नशा चढा हुआ दिखाई पड़ता है। विरह का सुख कैसा होता है, वे अच्छी तरह जानते थे। विरहियो की वेदना को वे अपनी वेदना बनाने को आतुर थे। उनमें भी तड़प थी; उनमें भी प्रेम की ज्वाला अहर्निश सुलग रही थी। उन्हीके शब्दो में उनकी व्यथा की मिठास का सुख आप भी अनुभव कीजिये।—

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को।
सुख जीवन ज्यों जीव को, मनि ज्यों फनि को
हित ज्यों धन लोभ लीन को॥
ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को।
(विनय-पत्रिका)

जीव को सुख, लोभी को धन और नवीन नागर को नागरी कितने प्रिय होते हैं, इसका अनुभव तुलसीदास को न होता तो वे राम से वैसी प्रियता की याचना ही कैसे करते ?

तुलसीदास प्रेम की किसी खास सीमा पर पहुँचकर राम को पुकारने लगे—'हे राम ! तुम एकबार कह दो कि 'तुलसीदास मेरा है।'

तूँ गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु! तुलसिदास मेरो॥

(विनय-पत्रिका)

वाह! कितनी छोटी-सी माँग है; पर कितनी कीमती है। राम जिसे 'मेरा' कहेंगे, फिर उसे कमी किस बात की रहेगी?

प्रेम के मार्ग में 'हठ' एक पड़ाव है। जहाँ सुस्ताकर प्रेमी आगे बढ़ता है। इस पड़ाव पर पहुँचकर तुलसीदास ने हठ ठान ली। वे राम के सामने धरना देकर बैठ गये।—

'तू मेरो' बिनु कहे उठिहौं न जनम भरि
प्रभु की सौं करि निबरयो हौं॥
हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अरयो हौं॥

(विनय-पत्रिका)

ऐसी 'अड़' पूर्ण प्रेमी ही दिखला सकता है। वे आगे इसी-पर फिर जोर देते हैं।—

कहेही बनैगी कै कहाये बलि जाउँ राम,
'तुलसी तू मेरो हारि हिये न हहरु॥'

(विनय-पत्रिका)

वे राम को धमकाते भी हैं।—

तुलसी कही है साँची रेख बारबार खाँची
ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं॥

(विनय-पत्रिका)

अंत में, जान पड़ता है, वे अपने इच्छित परिणाम तक पहुँच

जाते हैं, और अपने आराध्य देव के प्रेम-पयोनिधि में डूब जाते हैं।—

कृपा गरीब निवाज की, देखत गरीब को
साहब बाँह गही है।
बिहँसि राम कह्यो, सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है॥
(विनय-पत्रिका)

इस प्रकार प्रेम और विरह के अनेक चमकीले रत्न तुलसीदास के अंतर्जगत् में जगमगा रहे हैं।

विशुद्ध प्रेम का स्वरूप सर्वत्र एक होने पर भी वह भिन्न-भिन्न पात्रों में अलग-अलग रूपों में दिखाई पड़ता है। जैसे, पति-पत्नी का प्रेम, माता-पिता का प्रेम, भाई-भाई का प्रेम, मित्र और भक्त का प्रेम और जन्म-भूमि का प्रेम इत्यादि।

आइये, हरएक प्रकार के प्रेम का हम अलग-अलग कुछ आनन्द अनुभव करें।—

पति-पत्नी का प्रेम

पति और पत्नी प्रेम की गाड़ी के दो पहिये हैं। दोनों का समान सहयोग पाकर ही गाड़ी आगे बढ़ सकती है। तुलसीदास ने अपने काव्यों में पति-पत्नी के प्रेम के अनेक चित्र अङ्कित किये हैं। उन्होंने राम और सीता के सिवा और किसी प्राकृत जन की चर्चा तो की ही नहीं, और राम और सीता थे भी आदर्श पति और पत्नी, अतएव हमें उन्हीं के चरित्रों में प्रेम की छटा देखनी होगी।

भारतीय कवियों में यह परिपाटी देखी जाती है कि वे पहले-पहल स्त्री के हृदय में पुरुष के लिये प्रेम का जागरण दिखलाते

हैं। सीता, दमयन्ती, रुक्मिणी और भारत के अंतिम सम्राट् पृथ्वीराज की सहधर्मिणी सयोगिता के हृदयों मे प्रेम जाग्रत करने मे उनके कवियो ने इसी प्रथा का अनुसरण किया है। तुलसीदास ने भी राम से पहले सीता के हृदय मे प्रेमाकुरित कराया है।

सखी के मुख से राम के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनकर सीता उन्हें देखने को व्यग्र होती हैं और उसी सखी को आगे करके वे राम को देखने जाती हैं। उधर सीता के आभूषणों की मधुर ध्वनि श्रवणकर राम का मन भी चचल होता है और दोनों के नेत्रों का प्रथम मिलन होता है।—

अस कहि फिर चितये तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भये नयन चकोरा॥
भये बिलोचन चारु अचंचल।
मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगंचल॥
देखि सीय सोभा सुख पावा।
हृदय सराहत बचनु न आवा॥

(बाल-कांड)

उधर सीता भी राम को दुबारा देखने की लालसा से व्याकुल होती हैं।—

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता।
कहँ गये नृपकिसोर मन चीता॥
लता ओट तब सखिन लखाये।
स्यामल गौर किसोर सुहाये॥
देखि रूप लोचन ललचाने।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

लोचन मगु रामहि उर आनी।
दीन्हें पलक कपाट सयानी॥
(बाल-कांड)

प्रेम की इस स्वाभाविक मुग्धावस्था का अनुभव उनको सबसे प्रथम यहीं से हुआ और दोनों ओर प्रेम की निद्रा का पहला आक्रमण हुआ। फिर तो दोनों ओर प्रेम पल्लवित होता गया, जिसका बहुत ही सुन्दर रूप राम और सीता के विवाह तक विकसित होता रहा।

विवाह होजाने के कुछ दिनों बाद उनके दाम्पत्य के सुख-सिन्धु में एक अकल्पित लहर आई। उनके प्रेम की परीक्षा हुई और वह दुःख की अग्नि में तप्त काञ्चन की तरह विशुद्ध प्रमाणित हुआ।

वन-वास के लिये चलने को तैयार राम ने सीता को घर रहने के लिये बहुत समझाया; पर अन्त में सीता के प्रेम ही की विजय हुई और सीता ने प्रेम पर अयोध्या का सब सुख निछावर कर दिया। प्रिय के वियोग का अनुभव न होने पर भी उनके अक्षुण्ण प्रेम ने उन्हें उससे परिचित कर दिया था। वे राम से कहती हैं।—

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं।
पिय वियोग सम दुखु जग नाहीं॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु वारी।
तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
स्रमकन सहित स्याम तनु देखें।
कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥

बारबार मृदु मूरति जोही।
लागिहि तात बयारि न मोही॥
(अयोध्या-कांड)

ऐसी प्रेम-मृदुला प्राणेश्वरी को अपने से अलग कौन निष्ठुर पति कर सकता था! प्रेमी-युगल राजभवन को तृणवत् तुच्छ समझकर, प्रेम का जीवन बिताने के लिये, वन-वास का दुःख भोगने को निकल पड़े।

पत्नी को अपने पति के सद्गुणों से जो सुख प्राप्त होता है, उससे अधिक उसकी कीर्त्ति-कलाप से होता है। खरदूषण और उसकी चौदह हजार सेना का वध करके जब राम विजयी हुये, उस समय अपने वीर पति को देखकर पत्नी के हृदय में जो सुख उदय हुआ, उसका माधुर्य अनिर्वचनीय है। तुलसीदास ने उसकी झलक देख ली थी।—

सीता चितव स्याम मृदु गाता।
परम प्रेम लोचन न अघाता॥
(अरण्य-कांड)

ऐसी प्रियतमा पत्नी के लिये पति का व्याकुल होना भी बिल्कुल स्वाभाविक है। मारीच को मारकर जब राम अपनी कुटी को लौटते हैं, उस समय सीता को न पाकर वे जैसी विकलता व्यक्त करते हैं, उसमे उनका पत्नी के प्रति अनन्य प्रेम तरङ्गित हो रहा है।—

आस्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,
अलि खग मृग मानो कबहुँ न हे।
मुनि न मुनि वधूटी, उजरी परनकुटी,
पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे।

उठी न सलिल लिये, प्रेम प्रमुदित हिये,
प्रिया न पुलकि प्रिय बचन कहे।

(गीतावली)

राम पागल की तरह पशु-पक्षियो से पूछने लगते हैं। फिर वे अपने-अपने जोडे के साथ विचरनेवाले पशु-पक्षियो को देखकर उनकी तरफ से स्वयं अपना मजाक भी उड़ाते हैं।—

नारि सहित सब खग मृग बृंदा।
मानहुँ मोरि करत हहिँ निंदा॥
हमहिँ देखि मृग निकर पराहीं।
मृगी कहहिँ तुम कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग-जाये।
कंचन मृग खोजन ये आये॥

(अरण्य-कांड)

तुलसीदास ने राम के नाम से हमें एक आदर्श पति का स्वरूप दिखलाया है। अब उनकी आदर्श पत्नी का एक दृश्य दिखलाकर, हम अपने पाठकों से अनुरोध करते है कि वे इससे अधिक देखना चाहे तो मानस और गीतावली का अध्ययन करें।

हनुमान् को विदा करने के अवसर पर तुलसीदास ने सीता का यह वर्णन किया है।—

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो।
कहन चह्यो संदेस, नहिं कह्यो, पिय के
जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो।
देखि दसा ब्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों
धरनि तरनि तायो॥

करुना कोप लाज भय भरो कियो गौन,
मौनही चरन कमल सीस नायो।
(गीतावली)

सीता ने कुछ कहना चाहा, पर प्रियतम के जी को दुःख पहुँचेगा, इससे नहीं कहा। अहो! सीता को अपने प्रियतम के जी का कितना ख़याल है। कोई उलाहना नहीं, कोई ताना नहीं; सैकड़ों मील दूर बैठी हुई देवी प्रियतम के जी की सँभाल कर रही हैं। सच्चा प्रेम इसीको कहते हैं। उसी अवसर पर हनुमान् के मन में करुणा, कोप, लज्जा और भय—ये चार भाव एक साथ उत्पन्न हुये। कवि ने यहाँ कपि के अन्तर्जगत् का कोना-कोना देख-सा डाला है।

पत्नी की भूल को बुद्धिमान् पति किस प्रकार सहन करता है, इसकी भी एक झलक तुलसीदास ने हमे दिखलाई है। जब सती ने सीता का वेष करके राम की परीक्षा ली थी, तब शिव ने मन ही मन अप्रसन्न होकर उनका त्याग कर दिया था। उन्होंने ज़बानी डाट-डपट नहीं की, पर पत्नी को पश्चात्ताप का काफ़ी दंड दिया।—

सती कीन्ह सीता कर बेषा।
सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥

जौं अब करउँ सती सन प्रीती।
मिटै भगति पथु होइ अनीती॥

परम प्रेम तजि जाइ नहिँ
किये प्रेम बड़ पाप।
प्रगटि न कहत महेसु कछु
हृदय अधिक संतापु॥

एहि तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।
सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥

(बाल-कांड)

शिव का संकल्प जानकर आकाश-वाणी हुई, उससे सती को पता चला कि शिव उनसे रुष्ट हो गये हैं। रुष्टता का कारण जानने के लिये उन्होंने शिव से बार-बार पूछा, पर शिव ने कुछ नहीं कहा।—

जदपि सती पूछा बहु भाँती।
तदपि न कहेहु त्रिपुर आराती॥

(बाल-कांड)

शिव ने कहा क्यों नहीं? इसका कारण पत्नी पर उनका अकृत्रिम प्रेम था। वे पत्नी को कुछ भी दुःख देना नही चाहते थे।—

कृपासिन्धु सिव परम अगाधा।
प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई।
तपै अवाँ इव उर अधिकाई॥

(बाल-कांड)

शिव ने जब देखा कि पत्नी को अपने व्यवहार पर खेद हो रहा है, वे फिर द्रवित हो गये और पत्नी का दुःख कम करने का प्रयत्न करने लगे।—

सतिहि ससोच जानि वृषकेतू।
कही कथा सुन्दर सुख हेतू॥

इस प्रकार पत्नी पर पति के प्रेम के अनेक सुन्दर चित्र शिव-पार्वती की कथा में तुलसीदास ने ग्रथित कर दिये हैं।

सती ने जब दूसरा शरीर धारण किया और फिर वे शिव की पत्नी हुई, तब प्रेमी पति ने उनको पिछले जन्म की भूल की याद दिलाई।—

जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा।
बन्धु समेत धरे मुनि बेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी।
सती सरीर रहिहु बौरानी॥

(बाल-कांड)

इस 'बौरानी' शब्द मे पति का शाश्वत प्रेम लहलहा रहा है।

माता-पिता का प्रेम

अनेक प्रयोगों, व्रतों, अनुष्ठानों और प्रार्थनाओं के फल-स्वरूप यदि किसी पुरुष को वृद्धावस्था मे पुत्र की प्राप्ति हो, तो उसके हर्ष का वारापार नही रहता। महाराज दशरथ को ऐसा ही सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इससे उनका पुत्र-स्नेह भी अन्य साधारण पिताओं की अपेक्षा अधिक ही था।

नन्हे बच्चे को गोद में लेने पर उसके शरीर में लगी हुई धूल से धूसरित होने से पिता को जो सुख अनुभव होता है, वह भोगने की वस्तु है, उसे कहकर बताया नहीं जा सकता। कालिदास और तुलसीदास ने उस सुख तक पहुँचने की चेष्टा की है। शकुन्तला में कालिदास ने इस सुखका वर्णन किया है। दुष्यत ने जब अपने अपरिचित पुत्र भरत को गोद मे ले लिया था, उस समय उनका सौभाग्य देखकर कालिदास की लेखनी से यह उद्‌गार आपसे आप निकल आया था।—

आलक्ष्य दन्तमुकुलान्यनिमित्तहासै—
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।

अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान्वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा पुरुषा भवन्ति ॥

(शकुन्तला)

'बिना कारण ही हँसने से जिनके दन्त-मुकुल कुछ-कुछ देख पड़ते हैं, तुतलाने से जिनकी अस्पष्ट बोली बहुत रमणीय जान पड़ती है; जो गोद में रहने के बडे प्रेमी हैं; ऐसे बालकों के शरीर की धूल से उनको गोद में लेनेवाले पुरुष धन्य होते हैं।'

तुलसीदास भी, जो आबाल-वृद्ध-वनिता के सूक्ष्माति-सूक्ष्म मनोभावों के चित्रण में अद्वितीय हैं, इस अवसर पर मूक नहीं रह सके। शिशु राम को गोद मे लेकर और उनकी धूलि से धूसरित होकर दशरथ भी वही सुख अनुभव करते थे, जो कालिदास के शब्दों में दुष्यन्त को हुआ होगा।

धूसरि धूरि भरे तनु आये।
भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

(अयोध्या-कांड)

राम और उनके भाइयों के जन्म से दशरथ के परिवार में गृह-सुख का समुद्र उमड़ आया था।—

राम सिसु गोद महामोद भरे दसरथ
कौसिलाहु ललकि लषनलाल लये हैं।
भरत सुमित्रा लये, कैकयी सत्रुसमन
तन प्रेम पुलक मगन मन भये हैं॥

(गीतावली)

भोजन करन बोल जब राजा।
नहिं आवत तजि बाल-समाजा॥

कौसल्या जब बोलन लाई।
ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई॥

भोजन करत चपल चित,
इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख,
दधि ओदन लपटाइ॥

(बाल-कांड)

श्रीकृष्ण-गीतावली में भी तुलसीदास ने माता-पिता के बाल-सुख का सुन्दर वर्णन किया है।—

बाल बोलि डहकि बिरावत चरित लखि,
गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात।
नूपुर की धुनि किंकिनि के कलरव सुनि,
कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात॥

(श्रीकृष्ण-गीतावली)

पिता-माता का संतान से नैसर्गिक प्रेम होता है। उसमें कृत्रिमता नहीं होती। तुलसीदास ने पितृत्व के बड़े ही सुन्दर-सुदर दृश्य दिखलाये हैं। स्थानाभाव से उनमें से कुछ ही की चर्चा यहाँ की जायगी।—

जनकपुर से महाराजा जनक के दूत सीता-स्वयंवर का समाचार लेकर महाराजा दशरथ के सम्मुख उपस्थित हुये हैं। अपने प्राणोपम पुत्रों का कुशल-समाचार जानने के लिये दशरथ ने जो औत्सुक्य और दूतों के प्रति जो प्रेम प्रदर्शित किया है, वह किसी भी पिता के हृदय का प्रतिविम्ब कहा जा सकता है। सुनिये।—

तब नृप दूत निकट बैठारे ।
मधुर मनोहर बचन उचारे ॥
भैया कहहु कुसल दोउ बारे ।
तुम नीके निज नयन निहारे ॥

(बाल-कांड)

दूतों को 'भैया' कहकर राजा ने अपने पुत्र-प्रेम को और भी मूल्यवान् कर लिया है ।

स्यामल गौर धरे धनु भाथा ।
बय किसोर कौसिक मुनि साथा ॥

(बाल-कांड)

यह होलिया देकर वे दूतों पर फिर शका करते हैं और उनसे अपने पुत्रों के स्वभाव के बारे में प्रश्न करके बारबार पुत्रों की प्रशसा सुनना चाहते हैं ।—

पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ ।
प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ ॥

(बाल-कांड)

वे अपने पुत्रों के गुणो का बखान सुनने के लिये आतुर होते हैं और पिछले प्रश्नों के उत्तर की परवा किये बिना ही फिर पूछने लगते हैं ।—

कहहु बिदेह कवनि बिधि जाने ।

(बाल-कांड)

सचमुच पुत्र की कीर्ति सुनकर पिता को जो सुख होता है, उसकी तुलना संसार के किसी सुख से नहीं की जा सकती ।

वे दूत क्या थे, कवि थे, पिता के पुत्र-प्रेम से परिचित थे। उन्होंने ख़ूब रोचक भाषा में राम और लक्ष्मण की गुण-गाथा कह सुनाई। उसे सुनकर राजा दशरथ रनिवास में गये और रानियों को जमा करके उसे उन्होंने बार-बार कह सुनाया।—

राम लषन कै कीरति करनी।
बारहिबार भूपबर बरनी॥
(बाल-कांड)

बरात सजकर दशरथ जनकपुर जाते हैं। पुत्रों को देखने की लालसा उनमे जितनी बलवती थी, पिता के दर्शन की उत्सुकता पुत्रो मे उससे अधिक ही थी।—

पितु आगमन सुनत दोउ भाई।
हृदय न अति आनंद अमाई॥
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं।
पितु दरसन लालच मनु माहीं॥
(बाल-कांड)

विश्वामित्र उनको लेकर दशरथ से मिलने जाते हैं। उस समय एक पिता के मन की क्या दशा हुई, उसे बताकर तुलसीदास ने कवि-मात्र को गौरवान्वित किया है। तुलसीदास कहते हैं।—

भूप बिलोके जबहिं मुनि,
आवत सुतन्ह समेत।
उठे हरषि सुख सिंधु महँ,
मनहुँ थाह सी लेत॥
(बाल-कांड)

'थाह सी लेत' में रस उमड़ रहा है।

विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के गुरु थे। शिष्यो पर वे स्नेह भी बहुत रखते थे, और शिष्य भी उन्हे सेवा और विनय से जीते हुये थे। राम के विवाह के उपरात विश्वामित्र जनकपुर से अयोध्या आकर कुछ दिनो तक राजभवन मे रहे थे। चूँकि वे पुत्रों को प्यारे थे, इससे पिता भी उनपर अतिरिक्त प्रेम रखते थे। इस प्रसग का वर्णन तुलसीदास ने बड़ी सुन्दरता से किया है। दशरथ के शब्दो में उनके स्वाभाविक शील की अपेक्षा पुत्र का प्रेम ही अधिक झलक रहा है।—

विस्वामित्र चलन नित चहहीं।
राम सनेह बिनय बस रहहीं॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ।
देखि सराह महा मुनिराऊ॥
माँगत बिदा राउ अनुरागे।
सुतन्ह समेत ठाढ भै आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवक समेत सुत नारी॥
करब सदा लरिकन्ह पर छोहू।
दरसन देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी।
परेउ चरन मुख आव न बानी॥
(बाल-कांड)

अब हम पिता का एक बहुत ही करुण प्रसंग सामने लाते हैं। राम को मनाकर वापस लाने के लिये दशरथ ने सुमन्त्र को उनके साथ भेजा था। सुमन्त्र खाली लौट आये। उस समय दशरथ पुत्र की वियोग-व्यथा से बेसुध थे। इस अवसर पर

तुलसीदास की कविता करुणा की सरिता-सी उमड़ चली है —

राम राम कह राम सनेही ।
पुनि कह राम लखनु बैदेही ॥

देखि सचिव जयजीव कहि,
कीन्हेउ दंड प्रनामु ।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति,
कहु सुमंत्र कहँ रामु ॥

भूप सुमन्त्र लीन्ह उर लाई ।
बूडत कछु अधार जनु पाई ॥
सहित सनेह निकट बैठारी ।
पूछत राउ नयन भरि बारी ॥
राम कुसल कहु सखा सनेही ।
कहँ रघुनाथ लषन बैदेही ॥
सोक बिकल पुनि पूछ नरेसू ।
कहु सिय राम लषन संदेसू ॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ ।
सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥
राज सुनाइ दीन्ह बनबासू ।
सुनि मन भयउ न हरष हराँसू ।
सो सुत बिछुरत गये न प्राना ।
को पापी बड मोहि समाना ॥

(अयोध्या-कांड)

राम ने हर्ष-विषाद से रहित होकर पिता के वचन का पालन किया था, पुत्र के इस प्रेम को देखकर पिता का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा है । पिता पश्चात्ताप की भीषण ज्वाला में जल रहा है ।—

मुएहु न मिटैगो मेरो
मानसिक पछ्ताउ ।
नारिबस न बिचारि कीन्हों
काज सोचत राउ ॥
तिलक को बोल्यो दियो बन
चैागुनो चित चाउ ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदरयो
समुझि सील सुभाउ ॥
सुनि सुमंत कि आनि सुन्दर
सुवन सहित जिआउ ।
दासतुलसी नतरु मोको
मरन अमिअ पिआउ ॥
(गीतावली)

पुत्र के विरह से कातर पिता ने अन्त में पुत्र को पुकारते-पुकारते शरीर छोड़ दिया ।—

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते ।
तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लखन हा रघुबर ।
हा पितु हित चित चातक जलधर ॥
राम राम कहि राम कहि,
राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबर बिरह,
राउ गयेउ सुरधाम ॥
(अयोध्या-कांड)

पुत्र के प्रति पिता का ऐसा प्रेम इतिहास में कहीं और घटित हुआ है, या नहीं; कहा नहीं जा सकता ।

सन्तान की सत्कीर्ति से पिता को कितना आनन्द होता है, इसे हम चित्रकूट में जनक और सीता की भेंट के अवसर पर भी देख सकते हैं। सीता पति के साथ बन में चली आईं, इससे उनके पातिव्रत धर्म की कीर्ति चारोंओर फैल रही है। जनक को इससे बड़ा परितोष हुआ। तपस्विनी के वेष में पुत्री को, राज-कन्या को, देखकर पहले तो पिता का स्वाभाविक प्रेम उमड़ आया, फिर उसकी कीर्ति का स्मरण करके वह सतुष्ट भी हुआ।—

तापस वेष जनक सिय देखी।
भयेउ प्रेम परितोष बिसेखी॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ।
सुजसु धवल जगु कह सब कोऊ॥
(अयोध्या-कांड)

'प्रेम और परितोष' दो शब्दों को साथ-साथ रखकर कवि ने पिता के हृदय की दो भावनाओं को एक साथ व्यक्त किया है। 'पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ' इस वाक्य की आड़ मे भी पिता का अपूर्व सुख साकार हो रहा है। पिता के मुख से यह वाक्य सुनने का सौभाग्य जिसे प्राप्त हो, उस पुत्री का जीवन धन्य है।

पिता के लिये यदि दशरथ आदर्श हैं तो पुत्र के लिये राम उनसे कम नहीं। उन्होंने चित्रकूट में भरत को जो उत्तर दिया था, उससे पिता के प्रति उनकी एकान्त निष्ठा का पता चलता है। राम ने कहा।—

निज कर खाल खैंचि या तनु तें,
जौ पितु पग पानही करावौं।
होउँ न उऋन पिता दसरथ ते,
कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं॥

तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर
क्यों तेहि कुलहि कालिमा लावौं ॥
(गीतावली)

पिता का वचन खाली न जाय, पिता के कुल मे कलक न लगने पाये, यह विचार एक आदर्श पुत्र ही का हो सकता है।

अवध से जाते समय राम ने जन-परिजन सबसे हाथ जोड़ कर कहा था।—

बारहिं बार जोरि जुग पानी।
कहत राम सब सन मृदु बानी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी।
जेहि तें रहइ भुवाल सुखारी॥
मातु सकल मोरे बिरह,
जेहि न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब,
पुरजन परम प्रबीन॥
(अयोध्या-कांड)

यह पिता के प्रति पुत्र के अप्रतिम प्रेम का द्योतक है।

अब माता की ओर आइये। ससार के प्रिय पदार्थों में माता का सर्वोच्च स्थान है। धराशायी होते ही पहले-पहल नवजात शिशु की दृष्टि से माता ही की दृष्टि का मिलन होता है। यह संसार की एक अद्भुत घटना है। उसी समय से पुत्र माता की आँखो का प्रकाश बन जाता है। माता पुत्र के साथ हँसती है, खेलती है, यहाँ तक कि उसके प्राणो मे अपने प्राण डाल देती है। उसके दुःख मे वह अपने कलेजे का खून सुखा डालती है। तुलसीदास ने माता के हृदय की सब

भावनाओं के चित्र खींचे हैं। कुछ के उदाहरण लीजिये।—

शिशु राम को गोद में लेकर कौशल्या सेज पर सुशोभित हैं। उनके हर्ष का पार नहीं। वे पुत्र के चन्द्रमुख पर चकोर की तरह टकटकी लगाये हुये उसका रूप-रस पी रही हैं।—

सुभग सेज सोभित कौसल्या
रुचिर राम सिसु गोद लिये।।
बारबार बिधु बदन बिलोकति
लोचन चारु चकोर किये॥
(गीतावली)

राम सो रहे हैं। कौशल्या गा-गाकर उन्हे सुख की नींद सुला रही हैं।—

सुखनीद कहति आलि आइहौं।
राम लखन रिपुदवन भरत सिसु,
करि सब सुमुख सोआइहौं॥

रोवनि धोवनि अनखानि अनरसनि,
डिठि मुठि निठुर नसाइहौं।
हँसनि खेलनि किलकनि आनंदनि,
भूपति भवन बसाइहौं॥

गोद बिनोद मोदमय मूरति,
हरषि हरषि हलराइहौं।
तनु तिल तिल करि वारि राम पर
लेहौं रोग बलाइ हौं॥

रानी राउ सहित सुर परिजन,
निरखि नयन फल पाइहौं।

चारु चरित रघुबंस तिलक के
तहँ तुलसी मिलि गाइहौं॥
(गीतावली)

यहाँ तुलसीदास का मन इतना हुलसा कि वे भी गाने में शामिल हो रहे हैं ।

अब माँ की लालसा सुनिये।—

ह्वैहौ लाल कबहिँ बड़े बलि मैया।
राम लषन भावते भरत रिपु-
दवन चारु चारयो भैया॥
बाल बिभूषन बसन मनोहर,
अंगनि बिरचि बनैहौं।
सोभा निरखि निछावरि करि उर
लाइ वारने जैहौं॥
छगन मगन अँगना खेलिहौ मिलि
ठुमुकि ठुमुकि कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल,
कहि माँ मोहिँ बुलैहौ॥
जा सुख की लालसा लटू सिव,
सुक, सनकादि, उदासी।
तुलसी तेहि सुखसिंधु कौसिला,
मगन, पै प्रेम-पियासी॥
(गीतावली)

माता पुत्र के सुख-सिन्धु में निमग्न है, फिर भी उसकी प्रेम की प्यास नहीं जाती। कैसी अनुभूत बात है!

उधर विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को लेकर अपने आश्रम को

गये, इधर माता इस चिन्ता से विकल है कि बच्चे संकोची हैं, दुःख सहन नहीं किये हैं, उनकी सँभाल कौन करेगा ?

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिँगे ।
भूख पियास सीत स्रम सकुचनि,
क्यों कौसिकहि कहहिँगे ॥
को भोरही उबटि अन्हवैहै,
काढि कलेऊ दैहै ?
को भूषन पहिराइ निछावरि
करि लोचन सुख लैहै ?
नैन निमेषनि ज्यों जोगवै नित,
पितु परिजन महतारी ।
ते पठये ऋषि साथ निसाचर
मारन मख रखवारी ॥
सुन्दर सुठि सुकुमार सुकोमल,
काकपच्छधर दोऊ ।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं,
बिधि ह्वैहै दिन सोऊ ॥
(गीतावली)

पुत्र इतने बड़े हो गये थे कि ताड़का और सुबाहु को मार सके थे; पर माँ तो उन्हें शिशु ही समझती रही !

सुमित्रा भी चिन्तित हैं। यद्यपि लक्ष्मण उनके खास हृदयांश हैं, पर वे सब पुत्रों पर समान प्रेम रखती हुई कहती हैं।—

जब तें लै मुनि संग सिधाये ।
राम लखन के समाचार सखि,
तब तें कछुअ न पाये ॥

बिनु पानही गमन फल भोजन,
भूमि सयन तरु छाहीं ।
सर सरिता जल पान, सिसुन के
संग सुसेवक नाहीं ॥
कौसिक परम कृपालु परम हित,
समरथ सुखद सुचाली ।
बालक सुठि सुकुमार सकोची,
समुझि सोच मोहिँ आली ॥
(गीतावली)

सुमित्रा का बच्चो के शारीरिक कष्ट ही की ओर ध्यान नहीं था, वे उनके आचरण पर भी दृष्टि रखती थीं। उनको इस बात का सतोष तो था कि कौशिक 'सुचाली' हैं; अतएव सदाचरण ही की शिक्षा देगे; पर अपने बच्चों के संकोची स्वभाव को स्मरण करके वे चिन्ताकुल थीं। यद्यपि कौशिक सब प्रबन्ध कर देंगे, पर बच्चे कहेंगे, तब न ! माता के इस प्रेमावरण का मूक सौन्दर्य चर को अचर कर देनेवाला है ।

राम विवाह करके लौट आये हैं। माताएँ उनके सुकुमार शरीर और उनके शौर्य में सामञ्जस्य न पाकर कौतूहल-वश पूछ रही हैं।—

देखि स्याम मृदु मंजुल गाता ।
कहहिँ सप्रेम बचन सब माता ॥
मारग जात भयावनि भारी ।
केहि बिधि तात ताड़का मारी ॥

घोर निसाचर बिकट भट,
समर गनहि नहिँ काहु ।

मारे सहित सहाय किमि,
खल मारीच सुबाहु ॥
(बाल-कांड)

एक और चित्र देखिये।—

राम वन को चले गये। माँ पुत्र को बिसूर-बिसूरकर विरह की व्यथा भोग रही है। उसने राम के बचपन के धनुष और जूतियाँ रख छोड़े हैं। आज उन्हें सामने रखकर, उन्हें चूमकर, नेत्रों से लगाकर, वह पुत्र के स्पर्श का सुख अनुभव करने बैठी है और पुत्र को सबेरे जगाकर सखाओं के साथ खेलने के लिये उसे बाहर भेजने का अभिनय भी कर रही है।—

जननी निरखत बाल धनुहियाँ।
बारबार उर नैननि लावति
प्रभुजी की ललित पनहियाँ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति
कहि प्रिय बचन सबारे।
उठहु तात बलि मातु बदन पर
अनुज सखा सब द्वारे॥
(गीतावली)

माँ क्या-क्या देखने और सुनने के लिये आतुर हो रही है।—

सीता सहित कुसल कोसलपुर
आवत हैं सुत दोऊ।
स्रवन सुधा सम बचन सखी कब
आइ कहैगो कोऊ॥
जनकसुता कब सासु कहै मोहि
राम लखन कहैं मैया।

बाहु जोरि कब अजिर चलहिंगे
स्याम गौर दोउ भैया ॥
(गीतावली)

बनवास से राम के लौटने का दिन है। माँ सगुन मना रही है। वह कौवे को भी फुसला रही है।—

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर
कहहु काग फुरि बाता ॥
दूध भात की दोनी दैहौ
सोने चोंच मढैहौ।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि
राम लखन उर लैहौं ॥
तेहि औसर कोउ भरत निकट तें
समाचार लै आयो।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी मनो
मीन मरत जल पायो ॥
(गीतावली)

लङ्का से राम के वापस आने पर हम फिर तुलसीदास को माता के कौतूहल मे बैठकर बोलते हुये पाते हैं।—

कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि।
चितवति कृपासिधु रनधीरहि ॥
हृदय बिचारत बारहिं बारा।
कवन भाँति लंकापति मारा ॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे।
निसिचर सुभट महाबल भारे ॥

लछिमनु अरु सीता सहित,
प्रभुहिँ बिलोकति मातु ।
परमानन्द मगन मन,
पुनि पुनि पुलकित गातु ॥
(उत्तर-कांड)

मातृहीन तुलसीदास ने माता के हृदय का कैसा सच्चा भाव व्यक्त किया है! देखकर आश्चर्य होता है।

माता ने क्या कहा, क्या नहीं कहा, इससे अधिक महत्त्व की वस्तु तुलसीदास की प्रतिभा है, जिसने यह सब हमें सुनाया; हम तो उसपर मुग्ध हैं।

पुत्र का प्रेम माता पर पिता की अपेक्षा अधिक देखा जाता है। माता से उसकी निकटता होती भी अधिक है। माता को वह 'तू' कहकर बुलाने में नहीं झिझकता, पर पिता को वह 'तुम' या 'आप' ही कहकर बात करेगा। पिता के लिये वह सामाजिक शिष्टाचार के नियमों का वशवर्ती होता है; पर माता के लिये केवल प्रेम-राज्य के नियम ही उस पर शासन करते हैं।

राम माता-पिता दोनों के बड़े भक्त थे। बन जाते समय उन्होंने माता से कहा था।—

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
धन्य जनम जगतीतल तासू।
पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू॥

चारि पदारथ करतल ताके ।
प्रिय पितु मातु प्रानसम जाके ॥
(अयोध्या-कांड)

सीता को उन्होंने घर ही पर रहने को कहा था। इसका एक उद्देश्य माता का मानसिक कष्ट कम करते रहना भी था।—

जब जब मातु करिहि सुधि मोरी ।
होइहिं प्रेम बिकल मति मोरी ॥
तब तब तुम कहि कथा पुरानी ।
सुन्दरि समुझायउ मृदु बानी ॥
(अयोध्या-कांड)

भाई-भाई का प्रेम

रामचरितमानस में भाई-भाई के प्रेम-प्रदर्शन के अनेक प्रसङ्ग आये हैं। सगे भाई न होने पर भी राम अन्य सब भाइयों को एक समान प्यार करते थे। इसी का परिणाम था कि लक्ष्मण सर्वस्व त्यागकर राम के साथ वन को चले गये। और भरत के प्रेम की तो उपमा ही नहीं मिलती। तुलसीदास भी कहते कहते थक गये, और भरत का चरित्र अधूरा ही रह गया।

भरत के लिये उनकी माता कैकेयी ने राम को वन-वास दिलवाया था, इस ग्लानि के मारे भरत ने राम के आने तक राम से भी अधिक नियमपूर्वक तपस्वी का जीवन व्यतीत किया था।—

जब तें चित्रकूट तें आये ।
नन्दिग्राम खनि अवनि डासि कुस
परनकुटी करि छाये ॥

अजिन बसन फल असन जटा धरें
रहत अवधि चित दीन्हें।
प्रभु पद नेम प्रेमव्रत निरखत
मुनिन नमित मुख कीन्हें॥
तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तनु
त्यों त्यों प्रीति अधिकाई।

इस तपस्या को देखकर यह कहना बिल्कुल ही यथार्थ है कि।—

भये, न हैं, न होहिंगे कबहूँ,
भुवन भरत से भाई॥
(गीतावली)

लक्ष्मण को जब शक्ति लगी थी, उस समय राम का जो भ्रातृ-प्रेम दिखाई पड़ा था, वह तो स्वर्णाक्षरों मे लिखने योग्य है।—

उहाँ रामु लछिमनहिँ निहारी।
बोले बचन मनुज अनुहारी॥
अर्धराति गई कपि नहिँ आयेउ।
राम उठाइ अनुज उर लायेउ॥
सकहु न दुखित देखि मोहिँ काऊ।
बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता।
सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई।
उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥

जौ जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू ।
पिता बचन मनतेउँ नहिँ ओहू ॥

सुत बित नारि भवन परिवारा ।
होहिँ जाहिँ जग बारहिँ बारा ॥

अस बिचारि जिय जागहु ताता ।
मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥

(लङ्का-कांड)

राम की मनोव्यथा का अनुभव लक्ष्मण को भी हुआ था । यही तो सच्ची प्रीति का स्वरूप है । उन्होंने स्वस्थ होने पर कहा था ।—

हृदय-घाउ मेरे, पीर रघुबीरै ।
पाइ सजीवन जागि कहत यों
प्रेम पुलक बिसराय सरीरै ॥

मोहिं कहा बूझत पुनि पुनि जैसे
पाठ अरथ चरचा कीरै ।
सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ,
केवल कांति मोल हीरै ॥

तुलसी सुनि सौमित्र-बचन सब
धरि न सकल धीरौ धीरै ।
उपमा राम-लखन की प्रीति को
क्यों दीजै खीरै-नीरै ॥

(गीतावली)

रामचरित-मानस में एक ओर भाई के लिये राज्य त्याग करनेवाले भरत का चित्र है और दूसरी ओर राज्य के लिये भाइयों का वध करानेवाले सग्रीव और विभीषण का । तुलसीदास

ने दोनों को एकत्र करके उस दृश्य का भी निरीक्षण किया है। जब लङ्का की वापसी पर राम ने भरत को अपने साथियों का परिचय दिया, तब भरत उनसे मिलने को आगे बढ़े; पर भ्रात-द्रोहियों की हिम्मत न पड़ी कि वे अपने कलुषित शरीर को भातृ-प्रेम से पवित्र भरत के शरीर को छुला सकते। तुलसीदास ने उनकी मनोदशा का चित्र बड़ी ही ख़ूबी से उतारा है।—

राम सराहे भरत उठि,
मिले राम सम जानि।
तदपि विभीषन कीसपति,
तुलसी गरत गलानि॥
(दोहावली)

सघन चोर मग मुदित मन,
धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव विभीषनहिँ,
भई भरत की भेंट॥
(दोहावली)

लङ्का-विजय के उपरांत राम जब अयोध्या के राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुये, उस समय उनके भाइयों की मनोदशा का चित्र तुलसीदास की इस चौपाई मे देखिये।—

प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं।
कबहुँ कृपालु हमहिँ कछु कहही॥
(उत्तर-कांड)

इन थोड़े-से उदाहरणों से हमारे पाठक अनुमान कर सकेंगे कि तुलसीदास ने मानस-जगत् का एक-एक कोना देख डाला था। मन का कोई विषय, कोई तरङ्ग, उनकी पहुँच से बाहर नहीं थी।

मित्र और भक्त का प्रेम

नारद भी राम के भक्त थे, और शिव भी। इससे दोनो में परस्पर की सहानुभूति स्वाभाविक थी। एक बार नारद ने बड़ी तपस्या की। इन्द्र ने उनका तप भंग करने के लिये कामदेव को भेजा। पर मुनि उससे प्रभावित नहीं हुये। इससे मुनि को अभिमान हुआ और घूम-घूमकर वे अपनी विजय-वार्त्ता स्वयं सबको सुनाने लगे। वे शिव के पास भी गये। शिव को अपने मित्र की इस मानसिक दुर्बलता पर दया आई। उन्होंने प्रेम-पूर्वक मुनि को सावधान किया।—

तब नारद गवने सिव पाहीं।
जिता काम अहमिति मन माहीं॥

मार चरित संकरहिं सुनाये।
अति प्रिय जानि महेस सिखाये॥

बार बार बिनवउँ मुनि तोही।
जिमि यह कथा सुनायेहु मोही॥

तिमि जनि हरिहि सुनायेहु कबहूँ।
चलेहु प्रसंग दुरायेहु तबहूँ॥

(बाल-कांड)

नारद ने मित्र की सलाह नहीं मानी, और उसका दड भी भोगा।

शिव राम के अनन्य भक्त थे। जब-जब उनको राम का स्मरण हो आता था, तब-तब वे राम के प्रेम में समाधिस्थ हो जाया करते थे। सच्चे प्रेम के बिना यह समाधि दुर्लभ है।

पार्वती ने रामचरित सुनना चाहा, तब शिव कुछ कहने के पहले राम का स्मृति-सुख अनुभव करने लगे।—

हर हिय रामचरित सब आये ।
प्रेम पुलक लोचन जल छाये ॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा ।
परमानंद अमित सुख पावा ॥

मगन ध्यान रस दंड जुग
पुनि मन बाहेर कीन्ह ।
रघुपति चरित महेस तब
हरषित बरनइ लीन्ह ॥

(बाल-कांड)

जिस तरह भक्त अपने आराध्य देव पर प्रेम रखता है, वैसे ही देव भी अपने भक्त की चौकसी करता रहता है। नारद को जब अभिमान हुआ था, तब भगवान् आशङ्कित हो उठे थे। वे शीघ्र से शीघ्र भक्त को निर्विकार करने के लिये उद्यत हो गये थे।—

करुनानिधि मन दीख बिचारी ।
उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी ॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी ।
पन हमार सेवक हितकारी ॥

(बाल-कांड)

मोह का निवारण होने पर जब नारद ने अपने अपमान की याद दिलाकर राम को उलाहना दिया था, उस समय भी राम ने ऐसी ही बात कही थी।—

सुनु मुनि तोहिँ कहउँ सह रोसा ।
भजहिँ जे मोहिँ तजि सकल भरोसा ॥

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालकहि राख महतारी॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी।
बालक सुत सम दास अमानी॥

(अरण्य-कांड)

राम अपने आश्रितो की किस प्रकार सँभाल रखते थे, तुलसीदास ने उसकी एक सुंदर-सी उपमा दी है।—

जोगवहिँ प्रभु सिय लखनहिँ कैसे।
पलक बिलोचन गोलक जैसे॥

(अयोध्या-कांड)

कागभुसुंडि ने भी राम के इस स्वभाव का खुलासा किया था।—

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ।
जन अभिमान न राखहिँ काऊ॥
संसृति मूल सूलप्रद नाना।
सकल सोकदायक अभिमाना॥
तातें करहिँ कृपानिधि दूरी।
सेवक पर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसुतन ब्रन होइ गोसाईं।
मातु चिराव कठिन की नाईं॥

जदपि प्रथम दुख पावइ,
रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी,
गनत न सो सिसु पीर॥

तिमि रघुपति निज दासकर,
हरहिं मान हित लागि ।
(उत्तर-कांड)

जन्मभूमि का प्रेम

जन्मभूमि का प्रेम मनुष्य-मात्र का नैसर्गिक धन है। शायद ही कोई भाग्यहीन प्राणी इससे वंचित हो।

राम को वन में हमेशा अपनी जन्मभूमि की याद आती रही, और वे उसकी याद से विकल होते रहे।—

जब जब राम अवध सुधि करहीं ।
तब तब बारि बिलोचन भरहीं ॥
(अयोध्या-कांड)

चौदह वर्षों के वनवास के बाद जब राम अयोध्या को लौटे, तब अपनी जन्मभूमि का दर्शन करके वे पुलकित हो उठे थे। अपने मन के आनंद को वे भीतर ही भीतर दबा न सके और मुग्ध होकर उन्होंने अपने साथियों को अपना उक्त हर्ष वितरण भी किया था।—

सुनु कपीस अंगद लंकेसा ।
पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना ।
बेद - पुरान - बिदित जगु जाना ॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ ।
यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥
जनम भूमि मम पुरी सुहावनि ।
उत्तर दिसि सरजू बह पावनि ॥

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी ।
मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
(उत्तर-कांड)

जन्मभूमि को उन्होंने वैकुंठ से भी अधिक प्रिय बताया। और 'यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ' से तो उनके प्रेम का घनत्व और भी बढ़ गया है।

इस प्रकार तुलसीदास ने हमें प्रेम के अनेक दृश्य दिखला-कर आनन्द-विभोर कर दिया है। सचमुच वे प्रेम के अन्यतम मर्मज्ञ और पारखी थे।

तुलसीदास की काव्य-सम्पदा

भारतवर्ष मे अवतक जितने कवि हुये हैं, उनमे वाल्मीकि, व्यास और तुलसीदास एक स्वतत्र श्रेणी के कवि हैं। इनकी तुलना और किसी से नहीं की जा सकती। भाव-जगत् यदि एक विशाल वृक्ष मान लिया जाय, तो किसी कवि ने उसकी एक शाखा का वर्णन किया है, किसी ने दो का और किसी-किसी ने अपनी या अपने आश्रयदाताओ की भिन्न-भिन्न रुचियो की प्रेरणाओं से उसके फूलो, फलो और पल्लवो का सौन्दर्य-निरूपण किया है। पर उपर्युक्त तीनों कवियो ने समूचे भाव-वृक्ष पर अपनी दृष्टि डाली है और इसीसे वे यदि एक समाज के कवि कहे जायँ, तो उचित होगा। उन्होंने अपने-अपने समय के समाज के मौलिक सिद्धान्तो और उनकी भित्ति पर स्थापित आचार-विचारो का पूरा समर्थन ही नहीं किया, अपनी युक्तियो और उदाहरणो से उनको खूब आकर्षक और अनुकरणीय भी बना दिया है। उन्होंने समाज मे प्रचलित मर्यादा का ध्यान सब ओर से रक्खा है और न कभी उसका उल्लघन उन्होंने स्वय किया है और न अपने किसी पात्र से होने दिया है। उन्होंने उतना ही कहा और कहलवाया है, जितने से समाज के सुसगठित शरीर को पुष्टि मिली है। वे प्रत्येक रस पर अपना नियत्रण रखते थे और अपनी सरस रचना-द्वारा उसे समाज के अग मे सन्निविष्ट करते थे। वे रसो के नियत्रण मे नहीं थे।

संस्कृत और व्रजभाषा के सैकड़ों कवि अपनी-अपनी रुचि के रसों के वश मे पड़ गये थे रस उनके वश मे नहीं थे। समाज

को कौन-सा रस कितना देना चाहिये, इस बात का विचार किये बिना ही उन्होंने अपने मस्तिष्क से रसो के असख्य कलश उँडेले थे। परिणाम यह हुआ कि कोई-कोई रस, मुख्यकर शृङ्गार-रस, इतनी अधिक मात्रा में समाज में भर गया है, कि वह समाज को हजम नहीं हुआ बल्कि उसके अगों से फूट-फूटकर निकलने लगा, और समाज का रूप सुन्दर होने के बदले वीभत्स हो गया। उन्होने कभी यह नहीं सोचा कि उस रस से समाज के अग में क्या-क्या विकार उत्पन्न होगे और उनसे क्या-क्या हानियाँ होंगी। सदियो से सस्कृत और हिन्दी के सैकड़ों कवि समाज में सयोग और वियोग-शृङ्गार के भाव भरते आये हैं, जो बढ़ते-बढते समाज के चरित्र-सबधी पतन के उत्तरदायी हो गये हैं।

पर यही बात वाल्मीकि, व्यास और तुलसीदास के लिये नहीं कही जा सकती। उन्होने हमेशा अपने समकालीन और भविष्य के भी समाज के कल्याण पर दृष्टि रक्खी है, और अपने मस्तिष्क पर पूरा नियत्रण रखकर हरएक बात को लाभ-हानि से तौलकर कहा है। इससे हमें यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय कवियों में उक्त तीन कवि एक स्वतत्र श्रेणी के कवि हैं, और चूँकि अपने कविता-गत चमत्कारो से आनन्द देने के साथ-साथ उन्होने हमारे समाज के शील-रक्षण का भी ध्यान रक्खा था, इससे उनका स्थान सब कवियो से भिन्न ही नहीं, सब से ऊँचा भी है और हमारे सबसे अधिक निकट भी। हमको उनका सत्कार सब से पहले और सबसे अधिक करना चाहिये; क्योंकि उन्होंने अपने जीवन के असख्य क्षण हमारे कल्याण की चिता में व्यतीत किये है।

अन्य कवियो ने केवल अपनी-अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखलाया है, और चमत्कार-प्रदर्शन ही उनका ध्येय भी था।

प्रसग-वश जहाँ कहीं उनकी वाणी में हमारा कल्याण गुम्फित दिखाई पड़ता है, वहाँ हमें यह भी दिखाई पड़ता है कि उसके पास ही हमारी प्राण-शक्ति को शोषण करनेवाले अन्य शब्द भी मुँह खोले बैठे हैं। कवि की कला की प्रशसा करके हम क्षणिक आनन्द का अनुभव तो कर लेते हैं, पर उसके साथ ही हम अपने जीवन में ऐसा विष भी भर लेते हैं, जो निकाले नहीं निकलता और भीतर ही भीतर प्रौढ़ होकर एक दिन वह हम पर शासन करने लगता है।

कवि का काम तो प्रकृति के सौन्दर्य को खोजकर उसे भाषा का जामा पहनाना है। जिस तरह किसी जमाने में किसी ने मनुष्य मे ईश्वर का आविष्कार किया था और उसे हमारे भूत, वर्तमान और भविष्य की घटनाओ से ऐसा सबद्ध कर दिया कि उसे देखे बिना और उससे परिचित हुये बिना भी हम उसके अभाव से घबराते हैं। इसी प्रकार प्रकृति मे सौन्दर्य व्याप्त है। कवि प्रकृति मे व्याप्त सौन्दर्य को अपने शब्दो की रूप-रेखा से मूर्तिमान करके उसमे भावों का प्राण डालता है। वह सौन्दर्य चाहे चर जगत् का हो, चाहे अचर जगत् का, कवि की पैनी दृष्टि उस पर पड़े बिना नहीं रहती। वह हरएक वस्तु और हरएक व्यापार को बड़ी गहराई से देखता है और उससे एक भाव उठाता है। वही उसकी सम्पत्ति है।

गाँवो मे बच्चे एक खेल खेलते हैं, जिसमे वे एक जगह खडे-खडे बड़ी तेजी से घूमते हैं। इससे उन्हें आँखों के भ्रम-वश आसपास के घर आदि घूमते हुये नजर आने लगते है। तुलसीदास ने बचो के इस खेल मे निहित गूढ़-रहस्य का इस प्रकार शोषण किया था।—

बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी।
कहहिं परस्पर मिथ्याबादी॥
(उत्तर-कांड)

यही दशा नौकारूढ़ व्यक्ति की होती है। उसे भी नदी-तट के वृक्ष आदि चलते दिखाई पड़ते हैं। तुलसीदास कहते हैं।—

नौकारूढ चलत जग देखा।
अचल मोहबस आपुहि लेखा॥
(उत्तर-कांड)

कण्व मुनि के आश्रम के आश्रम-वासी स्नान के लिये प्रतिदिन नदी-तट को एकही पथ से आते-जाते थे। उनके भीगे हुये वल्कल-वस्त्रों से जो जल चूता था, उससे घास पर एक रास्ता बन गया था। कालिदास ने उसका उल्लेख करके हमें यह समझने के लिये एक आधार प्रदान किया है कि आश्रम-वासियों का जीवन-पथ कैसा नियमित होता है, वल्कल के किनारों से चुये हुये जल-विन्दु भी उसके साक्षी हैं।—

नीवाराः शुककोटरार्भकमुख-
भ्रष्टास्तरूणामधः।
प्रस्निग्धा क्वचिदीङ्गुदीफलभिदः
सूच्यन्त एवोपला।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः
शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखा-
निष्यन्दरेखाङ्किताः॥
(शकुन्तला)

'वृक्षों के खोखलों में आराम करते हुये तोतों के बच्चों के मुख से वृक्षों के नीचे गिरे हुये नीवार के दाने पड़े हैं। पत्थर

चिकने हैं, शायद उन पर इंगुदी फल तोड़े गये हैं। मृग ऐसे विश्वस्त हो गये हैं कि शब्द सुनकर भी नहीं भागते। सरोवर-पथ भीगे वल्कल वस्त्रो से चुये हुये जल की रेखाओ से अंकित हैं।'

इस वर्णन के साथ कालिदास हमे मानो सचमुच किसी आश्रम में ले जाकर खड़ा कर देते हैं।

मेघदूत में कालिदास ने बच्चों के एक खेल का उल्लेख किया है। वह खेल स्वर्णरज और मणि के संयोग से खेला गया है, जो अलका के यक्षों की कन्याओं के लिये एक सुलभ सामग्री थी, पर आज हमारे गॉवों के गरीब लड़के उसे धूल और कौड़ी से खेलते हैं।—

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः
सेव्यमाना मरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां
छायया वारितोष्णाः।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकता-
मुष्टिनिक्षेपगूढैः।
संक्रीडन्ते मणिभिरमर
प्रार्थिता यक्ष-कन्या॥

(मेघदूत)

'अलका मे यक्षों की कन्याये अत्यंत रूपवती हैं। स्वर्ग के देवता भी उनकी अभिलाषा किया करते हैं। वे मंदाकिनी के जलकणों से मिले अत्यंत शीतल पवन के स्पर्श-सुख को लेती हुई, तथा तट पर लगे मंदार-वृक्षों की छाया से अपने ताप को दूर करती हुई, सुवर्णमयी मंदाकिनी के तट की बालू से भरी हुई मुट्ठियो में मणियो को छिपाकर फिर उनको खोजने का खेल किया करती हैं।'

अवश्य ही कालिदास ने अपने समय के गाँवों ही से इस खेल को लिया होगा; क्योंकि यक्षों का जगत् उनके समय तक केवल कवि-कल्पना का एक विषय रह गया था। कहने का तात्पर्य यह कि कवि वही श्रेष्ठ गिना जायगा जो अपने समाज के प्रत्येक छोटे-बड़े व्यापार से खूब परिचित होगा। साधारण बातों का यथार्थ वर्णन कवि-श्रेष्ट की महत्ता बताने की एक बड़ी पहचान है, क्योंकि उससे पता चल जाता है कि कवि कहाँ तक सूक्ष्म-द्रष्टा है।

कवि की सबसे बड़ी कसौटी समालोचक नहीं, बल्कि समाज है। जिस कवि के मुख से एक समाज की सरस्वती बोलती है, समाज उसी को अपना कवि मानकर उसे अपने जीवन में स्थान देता है। जो व्यक्ति समाज के किसी अङ्ग-विशेष का कवि होता है, जैसे, कालिदास, भवभूति, देव, बिहारी, मतिराम और पदमाकर आदि, तथा आजकल के राजनीतिक कवि, वह तभीतक समाज में कायम रह सकता है, जबतक समाज के उस अङ्ग में उसका कुछ रस रहता है।

एक समय था, जब हिन्दी में शृङ्गार-रस ही प्रधान रस था; क्योंकि समाज के एक खास अग में भौतिक सुख अधिक मात्रा में एकत्र होगया था; तब हिन्दी के शृङ्गारी कवियों ने अपना एक-एक जीवन उसी रस की सिद्धि में लगा दिया था। जब वह सुख खर्चते-खर्चते चुक गया और उसके स्थान पर दुःख उपस्थित होगया, तब शृङ्गारी कवियों का स्थान 'भारत-भारती' ने ले लिया। फिर तो समाज को शृङ्गार-रस से ऐसी अरुचि हुई कि सभाओं में उसका बहिष्कार-सा होने लगा और धीरे-धीरे शृङ्गार-रस के सब सरोवर सूखते गये।

यही दशा संस्कृत के समस्त शृङ्गारी कवियों की भी होती, यदि उन्हे परीक्षाओं के कोर्स ने न थाम रक्खा होता। आज कालिदास को समाज मे जीवित रखने मे वर्तमान शिक्षा-विभाग का भी थोड़ा नहीं, बल्कि बड़ा हाथ है, यह तो हमे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

पर वाल्मीकि, व्यास और तुलसीदास के लिये ऐसा नही कहा जा सकता। वे समूचे समाज के कवि थे; इससे समाज के किसी न किसी अङ्ग में उनकी विद्यमानता अनिवार्य रूप से हमेशा रहेगी। संस्कृत भाषा का प्रचार रुक जाने से यद्यपि वाल्मीकि और व्यास हमारे लिये अपरिचित-से होगये हैं और अवधी जब हिन्दी मे रूपान्तरित हो जायगी, तब तुलसीदास की भी दशा वैसी ही हो जायगी, पर हिन्दू-समाज को जब कभी कुछ जीवन-शक्ति लेनी होगी, तब वे ही कविगण उसके लिये सुरक्षित भाण्डार मिलेंगे।

काव्य का प्रयोजन

संस्कृत और हिन्दी-कवियो ने काव्य-रचना के भिन्न-भिन्न उद्देश्य बताये हैं। संस्कृत कवि मखक ने रीतिमात्र के कवि को महा दरिद्र कहकर उसका उपहास उड़ाया है और उसे कवि ही नहीं माना है। उन्होंने सुन्दर वर्णों से अलंकृत और अर्थ-रत्नो से चमत्कृत वाणी ही को कवीश्वरता की पहचान बताई है।—

तान्यर्थरत्नानि न सन्ति येषां
सुवर्णसंघेन च ये न पूर्णाः।
ते रीतिमात्रेण दरिद्रकल्पा
यान्तीश्वरत्वं हि कथं कवीनाम्॥

'अर्थ-रत्नो और सुवर्ण-समूह से जो पूर्ण नही हैं, वे महा-

दरिद्री लोग केवल रीतिमात्र के आधार पर कवीश्वर की पदवी कदापि नहीं पा सकते।'

क्षेमेन्द्र चमत्कार-पूर्ण पद लिखने तक ही कवि का अन्तिम ध्येय मानते हैं।—

एकेन केनचिदनर्घमणिप्रभेण
    काव्यं चमत्कृतिपदेन विना सुवर्णम्।
निर्दोषलेशमपि रोहति कस्य चित्ते
    लावण्यहीनमिव यौवनमङ्गनानाम्॥

'काव्य कैसा ही निर्दोष क्यों न हो, उसके सुवर्ण भी मनोहर क्यों न हों, पर यदि उसमें अनमोल रत्न के समान कोई चमत्कार-पूर्ण पद न हुआ, तो वह वैसा ही है, जैसा स्त्रियों का लावण्य-हीन यौवन।'

मम्मट कहते हैं।—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कांतासम्मिततयोपदेशयुजे॥

(काव्य-प्रकाश)

'काव्य यश, द्रव्य-लाभ, व्यवहार-ज्ञान, दुःख-नाश, तत्काल परमानन्द और कांता के समान रमणीय उपदेश प्राप्ति का साधन है।'

गीत-गोविन्दकार जयदेव कहते हैं।—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
    यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकांतपदावलिं
    शृणु तदा जयदेव-सरस्वतीम्॥

'यदि हरि-स्मरण में मन सरस हो रहा है, यदि विलास-

कलाओं के जानने की उत्कंठा है, तो मधुर, कोमल और कांत पदोंवाली जयदेव की वाणी सुनिये ।'

जयदेव का प्रयत्न हरि-स्मरण तथा विलास-कलाओं की उद्भावना तक ही सीमित है। पर तुलसीदास की परिभाषा इन सब से विलक्षण है। वे कहते हैं।—

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सबकर हित होई॥

(बाल-कांड)

कवि-कर्म की इससे अच्छी परिभाषा और क्या होगी? 'कीर्त्ति, कविता और सम्पत्ति वही सराहनीय है, जिससे गंगाजी की तरह सबका कल्याण हो।' बस, यही 'सबकर हित' तुलसीदास का ध्येय था। गंगाजी की मिसाल देकर तो उन्होंने अपने भाव को और भी स्पष्ट कर दिया है। जिस तरह गंगाजी में सब जातियों, सब श्रेणियों और सब सम्प्रदायों के लोग, बिना किसी भेदभाव के, समान रूप से अवगाहन करते हैं, वैसे ही काव्य भी वही उत्कृष्ट है जिससे छोटे-बड़े सब अपने जीवन के लिये संदेश ले सकें।

कविता कौन-सी आदरणीय है, इस पर भी तुलसीदास का कथन ध्यान देने योग्य है।—

सरल कबित कीरति बिमल,
सोइ आदरहिँ सुजान।
सहज बैर बिसराय रिपु,
जो सुनि करहिँ बखान॥

(बाल-कांड)

'शत्रु भी सहज-वैर भूलकर जिसकी प्रशंसा करे, वही कविता है'।

इस कसोटी पर खरा उतरना किसी कवि के लिये कितना कठिन है, इसका अनुमान सहृदय रसिकजन ही कर सकते हैं। तुलसीदास अवश्य खरे उतरे हैं और उन्होंने अपनी व्याख्या का स्वय समर्थन-सा किया है। उनके मत के विरोधी भी उनकी कविता की प्रशसा करते है और मैंने कितने ही भिन्न मतावलम्बियो को 'रामचरितमानस' का नियमित पाठ करते देखा है।

अग्निपुराण मे काव्य की उपादेयता के विषय मे लिखा है।—

नरत्वं दुर्लभं लोके,
विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र
शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

'पहले तो ससार मे मनुष्य-जन्म ही दुर्लभ है, फिर विद्या और भी दुर्लभ है। उस पर भी कवित्व प्राप्त करना और भी कठिन है और कवित्व प्राप्त होने पर भी कविता करने की स्वाभाविक शक्ति का पाना तो परम दुर्लभ है।'

हम निरपेक्ष होकर कह सकते हैं कि तुलसीदास को उक्त चारों विभूतियाँ प्राप्त थीं, और उन्हें लोक-कल्याण के यज्ञ मे उन्होंने होम दिया था।

काव्य के प्रयोजन के विषय मे आचार्य भामह ने जो यह कहा है कि:—

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्॥

'अच्छे काव्यों के पठन पाठन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

के साधनो और कलाओ मे विचक्षणता तथा ससार मे कीर्ति और हृदय मे प्रसन्नता प्राप्त होती है।' तुलसीदास के 'मानस' मे हम इस सत्य को चरितार्थ हुआ पाते हैं।

पद्य-कार और कवि

पद्य-रचयिता को हम दो रूपों मे विभक्त कर ले तो हमे कवि का स्वरूप समझने मे आसानी होगी। एक रूप है, साधारण पद्य-कार का, दूसरा है कवि का। प्रत्येक पद्य-कार कवि नहीं कहा जायगा। जैसे, न मनु कवि हैं, न शकराचार्य और न वैद्यक-ग्रन्थों के रचयिता चरक और सुश्रुत आदि। पर प्रत्येक कवि पद्य-कार होता है। जिस पद्य में किसी शब्द के आसपास हमे कवि खड़ा दिखाई पड़े, उसे हम कविता मानेंगे, जिसमें कवि नहीं विद्यमान है, वह केवल पद्य है।

तुलसीदास कितनी ही दुहाई क्यों न दे कि वे कवि नहीं थे, पर हम उसे केवल उनका नम्रता-प्रदर्शन ही मानेंगे। 'मानस' मे कई स्थानो पर उन्होंने छिपे-छिपे यह स्वीकार किया भी है कि वे कवि थे। बाल-काड के प्रारभ ही मे वे कहते हैं।—

जेहि प्रबन्ध बुध नहिँ आदरही।
सो स्रम बादि बाल कबि करहीं॥

बुधजनो से आदर पाने की लालसावाला व्यक्ति कवित्वहीन पद्य-रचना का श्रम क्यों करेगा? अवश्य ही तुलसीदास ने उच्च-कोटि की काव्य-रचना का प्रयास किया था।

बाल-काड में सीता की शोभा वर्णन करते हुये उन्होंने फिर इशारा किया है कि वे सुकवि थे।—

सिअ बरनिअ तेहि उपमा देई ।
कुकवि कहाइ अजस को लेई ॥

अर्थात् उनको यह भय था कि कोई ऐसी बात वे न कहे, जिससे लोग कुकवि कहकर उनकी निन्दा करें ।

'मानस' में और भी कई स्थानों पर उन्होंने अपने को कवि घोषित किया है और अपनी रचना में वे कवि के समस्त सुलक्षणों से अलंकृत भी दिखाई पड़ते हैं ।

संस्कृत-कवयित्री विज्जका ने कवि और काव्य-रसिक के विषय में एक बड़ा ही सारगर्भित श्लोक लिखा है ।—

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं
स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम् ।
वदद्भिरंगैः कृतरोमविक्रियै-
र्जनस्य तूष्णीं भवतोऽयमञ्जलिः ।

'कवि का अभिप्राय शब्दगोचर नहीं होता, वह केवल व्यंजना से उसे प्रकट करता है । कवि के अभिप्राय को समझकर जो मुख से कुछ नहीं कहता और जिसके रोमाञ्चित अंग ही जिसके हृदय की आनन्द लहरी का पता बताते है, वही सच्चा रसिक है ।'

तुलसीदासकी कविता में हमें ये दोनों गुण मिलते हैं । कवि ही की तरह उन्होंने अपना अभिप्राय व्यञ्जित किया है और उनके काव्य का रसास्वादन रसिक लोग विज्जका की बताई हुई विधि से करते भी हैं । एक उदाहरण लीजिये ।—

चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सुहाइ ।
जानि परै सिय हिअरे जब कुम्हिलाय ॥
(बरवै-रामायण)

इसमें कवि ने हमें सीता के शरीर का रङ्ग स्पष्ट शब्दों में

नही बताया। केवल इतना इशारा किया है कि चम्पे का हार सीता के अग-रग मे मिलकर अदृश्य होगया और उसका पता तभी लगा, जब वह कुम्हलाकर बदरग होगया। अब काव्य-रसिक के लिये आगे समझने का एक छोटा-सा मैदान खाली है, जिसे पारकर वह समझ लेगा कि सीता का अग-रग चम्पे के रग-जैसा था।

इसी भाव को विहारी ने अपने एक दोहे मे उड़ा लिया है।—

रंच न लखियति पहिरि यौं
कंचन सैं तन बाल।
कुम्हिलानैं जानी परै,
उर चंपक की माल॥

पर विहारी ने तो नायिका के शरीर के रग को कचन-जैसा बताकर काव्य-रसिक के लिये आगे बढ़ने की गुञ्जाइश ही नहीं रहने दी। अतएव अब हम कह सकते है कि तुलसीदास कवि-कौशल में विहारी से कही अधिक श्रेष्ठ थे।

काव्य कैसा होना चाहिये? इस विषय मे सस्कृत का एक सरस श्लोक मुझे याद आया है।—

अर्थोगिरामपिहितः पिहितश्चकश्चित्
सौभाग्यमेति मरहट्टवधूकुचाभ।
नान्ध्रीपयोधरइवातितरां प्रसिद्धा
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढः॥

'जिसमे अर्थ कुछ छिपा हो और कुछ प्रकट, जैसे मारवाड़-प्रात की स्त्रियों के कुच, वही वाणी प्रशसनीय है। आन्ध्र-देश की स्त्रियो के पयोधर के समान उसका बिल्कुल प्रकट रहना भी अच्छा

नहीं और न गुजरात की स्त्रियों के स्तन के समान उसका बिल्कुल छिपा ही रहना उचित है।'

इस श्लोक में कवि हमें कई स्थानों पर खड़ा दिखाई पडता है। पहले तो वह कविता की साधारण व्याख्या करके उच्चकोटि की कविता-सबधी अपना ज्ञान प्रकट करता है; फिर वह तीनों प्रकार की रचनाओं को तीनों प्रान्तों की स्त्रियों के स्तनों से तुलना करके हमें यह बतलाता है कि उस को उन तीनों प्रातों के स्त्री-समाज के देखने का अवसर मिल चुका हैं। इससे भी आगे बढ़-कर एक मधुर बात इस छद में यह है कि उसने स्तन के तीन पर्यायवाची शब्द कुच, स्तन और पयोधर इस्तेमाल किये हैं। तीनों शब्द अपने-अपने स्थान पर अपना अलग-अलग अर्थ रखते हैं। जिनको सस्कृत व्याकरण का ज्ञान है, वे इस श्लोक में प्रयुक्त उक्त तीनों शब्दों के धात्वर्थ को स्मरणकर साधारण रसिकजनो से अधिक आनन्द का अनुभव करेंगे।

तुलसीदास को हम सर्वत्र शब्दों के धात्वर्थ की मर्यादा की रक्षा करते हुये पाते हैं। शब्द-प्रयोग में ऐसा सावधान कवि हिन्दी में हमें कोई नहीं मिला। उन्होंने जैसे अपने पात्रों की मर्यादा का हमेशा ध्यान रक्खा है, वैसे ही शब्दों की मर्यादा भी उन्होंने निभा दी है। शब्दों की मर्यादा-रक्षा का एक उदाहरण लीजिये।—

हनुमान् ने सीता का सदेश राम को इन शब्दों में सुनाया था।—

विरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरइ छन माँह सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी।
जरइ न पाव देह विरहागी॥

इसमें तनु, शरीर और देह तीनो शब्द एक ही वाक्य मे आ गये हैं।

एक ही अर्थ के बोधक होने पर भी 'तनु', 'देह' और 'शरीर' शब्दो के धात्वर्थ भिन्न-भिन्न हैं। तनु (तन्+उन्) शब्द सुकुमारता का, देह (दिह्+घञ्) स्थूलता और पुष्टता का तथा शरीर (शृ+ईरन्) प्रतिक्षण क्षय होनेवाले अर्थ का बोधक है। उक्त तीनों शब्दो के प्रयोग की कला का सौन्दर्य देखिये।—

तूल की कोमलता के लिये 'तनु' छन के लिये 'शरीर' और जल से सींचे जाते रहने के कारण उत्पन्न हुई स्वस्थता के लिये 'देह' शब्द का प्रयोग करके तुलसीदास ने कवि के रचना-चातुर्य की पराकाष्ठा दिखला दी है।

ऐसे ही धात्वर्थ के साथ आँख, कमल और नदी आदि के पर्यायवाची शब्दो पर ध्यान दीजियेगा तो सर्वत्र उनके प्रयोग में कवि का कोई न कोई उद्देश्य लक्षित होगा। यही कवि का चमत्कार है।

इसी प्रकार हमें तुलसीदास की भी विद्यमानता उनकी रचना में शब्द-शब्द पर मिलती है। उनकी भी कविता 'अर्थोगिरामपिहितः पिहितश्चकश्चित्' के स्वरूपवाली है और उसमे भी शब्दो के प्रचलित अर्थ मे उनके धात्वर्थ का लावण्य झलमलाता हुआ दिखाई पड़ता है।

एक और उदाहरण लीजिये।—

महाराज दशरथ राम के विवाह की बरात सजाकर जनकपुर गये हैं। महाराज जनक से स्वागत-सत्कार पाकर वे जनवासे मे बैठे हुये हैं, पर मन मे अपने पुत्रों को देखने के लिये छटपटा रहे हैं। यकायक उनके दोनो पुत्र, राम और लक्ष्मण, विश्वामित्र

मुनि के साथ आते हुये दिखाई दिये। उन्हे देखकर, उनको हृदय से लगाने के लिये आतुर होकर महाराज उठे; और आगे बढ़े। उस अवसर पर तुलसीदास ने उन्हें दौड़ाया नहीं; क्योंकि वे पुत्र-स्नेह के भार से दवे हुए थे, अतएव उनका धीरे-धीरे चलना ही स्वाभाविक था। तुलसीदास कहते हैं।—

भूप बिलोके जबहिं मुनि,
आवत सुतन्ह समेत ।
उठेउ हरषि सुख सिन्धु महुँ,
चले थाह-सी लेत ॥

(बाल-कांड)

सारा रस 'चले थाह-सी लेत' में है। कवि हमें इसी स्थान पर खडा दिखाई पड़ता है। कवि मानो कह रहा है कि उसे पुत्र-स्नेही पिता के मनोभाव का अनुभव है।

पर वे ही तुलसीदास चित्रकूट में गुरु का आगमन-समाचार सुनाकर राम को कितने वेग से दौडाते हैं।—

सीलसिन्धु सुनि गुरु आगवनू।
सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
चले सवेग राम तेहि काला।
धीर धरमधुर दीनदयाला॥

इसमें कवि 'सीलसिन्धु' 'सवेग' और 'धीर धरमधुर दीनदयाला' शब्दों के निकट दिखाई पड रहा है।

स्नेह-भाराक्रात पिता को धीरे ही चलना चाहिये था, और कर्त्तव्य-बुद्धि से प्रेरित राम को वेग-सहित। और 'सवेग' चलने का भी कारण था, वह 'सीलसिन्धु' और 'धीर धरमधुर दीनदयाला' मे व्यक्त हो रहा है।

एक और उदाहरण लीजियें।—

धनुष-यज्ञ के अवसर का प्रसग है। राम और लक्ष्मण यज्ञ-शाला मे विराजमान हैं। तुलसीदास कहते हैं।—

राजत राजसमाज महँ,
कोसलराज किसोर।
सुन्दर स्यामल गौर तनु
बिस्व बिलोचन चोर॥

इस दोहे मे कवि 'राज-समाज' और 'चोर' शब्द के पास है। 'राज-समाज' मे 'चोर' की उपस्थिति सचमुच एक कौतूहल उत्पन्न करनेवाली बात है।

राजा जनक के दूत धनुर्भंग का समाचार लेकर जब महाराज दशरथ के सामने उपस्थित हुये, तब महाराज बारबार उनसे अपने पुत्रों की प्रशसा सुनने के लिये एक ही प्रश्न को दुहराने-तिहराने लगे। उनका आनन्द बढ़ाने के लिये वाक्‌चतुर दूत के मुख से तुलसीदास कहलाते हैं।—

देव देखि तव बालक दोऊ।
अब न आँखि तर आवत कोऊ॥
(बाल-कांड)

यहाँ कवि 'आँखि तर' के पास है। साधारण पद्य-कार इसे ऐसा लिख देता।—

'अब न नीक मोहिँ लागत कोऊ'

र पद्य कार के पद्य मे वह जोर, वह मिठास नहीं होती, जो कवि के महावरे में आ गई है।

इस प्रकार ध्यान से पढ़ा जाय तो तुलसीदास अपनी रचना में सर्वत्र, किसी न किसी शब्द के पास, खड़े दिखलाई पड़ेंगे, और यही उनका कवित्त्व है। जो कवि अपनी कविता मे उपस्थित नहीं

मिलता, वह केवल पद्य-कार है। ऐसी रचनाओं के उदाहरणों की आजकल कमी नहीं है।

भावों के प्रदर्शन में कितना ही बड़े से बड़ा कवि हो, सर्वत्र वह चमत्कार नहीं दिखा सकता। अनेक स्थलों पर वह कवि के स्थान पर केवल पद्य-कार-सा लगता है। ग़ालिब उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि हैं। उर्दू में उनकी टक्कर का कवि अभी तक कोई नहीं हुआ। उन्होंने एक शेर में ससार से ऊबे हुये किसी आदमी के मन की हालत का एक चित्र खींचा है।—

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमसख़ुन कोई न हो औ' हमज़बाँ कोई न हो॥
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
औ' अगर मर जाइये तो नोहाख्वाँ कोई न हो॥

ग़ौर कीजिये, इसमें कवि सागोपाङ्ग विद्यमान नहीं है; केवल एक पद्य-कार की सूरत में उसकी एक हलकी सी छाया दिखाई पड़ रही है। शेर के किसी शब्द में कोई चमत्कार नहीं है। पर यही भाव एक देहाती दोहे में इतनी खूबी से व्यक्त किया गया है कि यदि शेर और दोहे को लेकर उनके रचयिताओं का कोई मूल्य आँकने बैठे, तो दोहा-कार के सामने गालिब की कीमत एक कौड़ी की भी नहीं होगी। दोहा यह है।—

मरनो भलो विदेस को, जहाँ न अपनो कोय।
माटी खायँ जनावराँ, महा महोच्छव होय॥

सारा मजा 'महा महोच्छव' में है। ग़ालिब और देहाती दोनों के मरनेवाले ससार से ऊबे हुये हैं, पर गालिब का मरनेवाला ससार से घबराकर एकान्त में निराशामय जीवन बिताना चाहता है और देहाती का मरनेवाला ख़ुशी-ख़ुशी मरना चाहता है।

वह मरने के बाद भी अपने शरीर के खानेवाले जानवरों का भोज-महोत्सव भी देखना चाहता है । कैसा हृदय-स्पर्शी भाव है ! उसमें मृत्यु के स्मरण से भी भय की कहीं छाया तक नहीं; बल्कि मरनेवाला मृत्यु को आनन्द की वस्तु समझ रहा है और मरकर भी शरीर का सदुपयोग देखकर खुश होना चाहता है । 'महा महोच्छव' शब्द ने इस दोहे ही का नहीं, इसके रचयिता का भी मूल्य गालिब के कवित्व से बढ़ा दिया है ।

इसी प्रकार तुलसीदास में भी हम सर्वत्र चमत्कार नहीं पायेंगे; पर गौर करके देखेंगे तो चमत्कारोत्पादन का उनका कुछ न कुछ प्रयत्न हमे उनके, प्रत्येक शब्द के साथ दिखाई पड़ेगा। यह क्या कम महत्त्व की बात है ?

तुलसीदास का महाकाव्य

शास्त्र में महाकाव्य के ये लक्षण बताये गये हैं।—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्॥

(साहित्य-दर्पण)

'सर्ग-बन्ध काव्य महाकाव्य कहलाता है। उसका नायक कोई देवता या धीरोदात्तगुणवाला, उत्तम कुल में जन्म पाया हुआ कोई क्षत्रिय होता है। एक वश के सत्कुलीन अनेक राजा भी नायक हो सकते हैं। श्रृङ्गार, वीर और शान्त-रस में से कोई एक रस मुख्य होता है, शेष गौण। उसमें सब नाटक-सन्धियाँ रहती हैं। कथा या तो इतिहास-प्रसिद्ध होती है या किसी विश्व-विश्रुत सत्पुरुष की होती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से कोई एक उसका फल होता है। प्रारभ मे नमस्कार, आशीर्वाद या

वर्ण्य-विषय का निर्देश होता है। दुष्टों की निंदा और सज्जनों का गुण-कीर्तन भी कहीं-कहीं होता है। न बहुत छोटे, न बहुत बड़े, आठ से अधिक सर्ग होते हैं। प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार का-छन्द होता है, पर सर्ग का अन्तिम छंद भिन्न होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी होते हैं। सर्ग के अंत में अगली कथा की सूचना होनी चाहिये।'

इस परिभाषा के अनुसार तुलसीदास के रामचरितमानस में महाकाव्य के समस्त लक्षण मिलते हैं। उसका नायक देवता भी है और सद्वंश-संभूत क्षत्रिय राजा भी। उसमें शृङ्गार, वीर और शान्त तीनों रसो का समन्वय है। कथा भी ऐतिहासिक है। एक ही फल नहीं, उससे चारों फल प्राप्त हो सकते हैं। नमस्कार, आशीर्वाद, निन्दा-स्तुति के साथ वह सर्ग-बद्ध भी है, और उसके प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार का छंद व्यवहृत हुआ है। सर्गान्त में छन्द बदले भी गये हैं और प्रत्येक अगले सर्ग की सूचना उसके पहले सर्ग के अन्त में भी दे दी गई है। यदि त्रुटि है, तो केवल यही कि उसके सोपानो की संख्या सात ही है। पर कई आचार्यों ने सर्ग-संख्या का उक्त बंधन नहीं भी रक्खा है। अतएव सात सर्गों का भी महाकाव्य हो सकता है।

रामचरितमानस में महाकाव्य के सब लक्षण मिलने से यह निश्चित जान पड़ता है कि तुलसीदास ने उसे महाकाव्य ही के रूप में लिखा है। वे महाकाव्य के लक्षणों से पूर्ण रूप से अवगत थे और 'मानस' को सर्वाङ्गपूर्ण महाकाव्य बनाने का उन्होंने सदैव ध्यान रक्खा था।

रामचरितमानस में कितने ही प्रसंग ऐसे हैं, जहाँ उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा सूर्य की तरह देदीप्यमान है। 'मानस' के बारे में देहात में एक चौपाई प्रचलित है।—

बालक आदि उत्तर कर अंता ।
मध्य अयोध्या गावहिं संता ॥

इसमें एक सत्य निहित है। बाल-काड का आदि, उत्तर-काड का अत और अयोध्या-कांड का मध्य अवश्य ही उच्च-कोटि के ज्ञान से जगमगा रहे हैं; पर किनके लिये ? इसका उत्तर भी अगली पक्ति में है, संतो के लिये। पर कवि तुलसीदास के महाकाव्य का आनन्द लेनेवालों को उसके दूसरे ही स्थल देखने चाहिये । जैसे।—

मदन-दहन, नारद-मोह, प्रतापभानु का उपाख्यान, शिव-पार्वती-विवाह, सीता राम का मिलन और विवाह, परशुराम-लक्ष्मण-सवाद, सम्पूर्ण अयोध्या-कांड, उत्तर-काड का मध्य, इत्यादि।

यद्यपि राम का जीवन दुःखान्त है, पर तुलसीदास ने अपने महाकाव्य को सुखान्त ही रक्खा है। राम को अयोध्या की गद्दी पर बैठाकर उन्होंने पहले राम-राज्य के सुखों और वैभवो का वर्णन किया है। उनसे छुट्टी पाकर फिर वे समाज और व्यक्ति के लिये अनुकरणीय गुणो की व्याख्या करने तथा उन्नत जीवन के जिज्ञासु को उन्हें जो सन्देश देना था, उसकी पूर्ति में लग गये हैं।

मानस में जान-बूझकर उन्होंने सीता-वनवास की कथा नहीं दी है; यद्यपि वे उस कथा को जानते थे, और उन्होंने गीता-वली आदि में उसपर बड़ी ही ललित कविता भी की है।

यहाँ भी हम अपने महाकवि की सहृदयता की सराहना करेंगे कि उसने हमें राम के अन्तिम जीवन की मर्म-भेदिनी व्यथा से दूर ही रक्खा और राम का केवल अनुकरणीय चरित्र ही हमारे सम्मुख आने दिया।

तुलसीदास की निरभिमानता

संस्कृत में नम्र और अभिमानी दोनो तरह के कवि मिलते हैं। कालिदास-जैसे प्रकृत कवि की नम्रता तो सोने में सुगन्ध-जैसी लगती है।—

मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्यामुपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥
(रघुवंश)

अपने कालिदास की तरह अंग्रेज कवि शेक्सपियर में भी हम नम्रता और शील की यथेष्ट मात्रा पाते है।—

Thus far, with rough and all unable pen,
Our bending author hath pursued the story.
(King Henry V)

'इस तरह से हमारा वह कवि, जो (इतने महत्त्वपूर्ण) विषय के भार से झुका हुआ था, अपनी साधारण और पूर्णतया अयोग्य लेखनी-द्वारा इस कथा का निर्वाह कर सका।'

संस्कृत के अभिमानी कवियो में श्रीहर्ष का नाम पहले लिया जायगा। श्रीहर्ष कहते हैं।—

ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते
यः कान्यकुब्जेश्वरात्।
यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं
ब्रह्मप्रमोदार्णवम्॥
यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरो-
स्तर्केषु यस्योक्तयः।
श्री श्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे
तस्याभ्युदीयादियम्॥
(नैषध-चरित)

'कान्यकुब्ज-नरेश से जिसे दो पान और आसन भी मिलता है; समाधिस्थ तथा ब्रह्मानन्द के समुद्र में निमग्न होकर जो ब्रह्म का साक्षात्कार करता है; जिसका काव्य शहद के समान मधुर है; जिसकी तर्क-शास्त्रीय उक्तियाँ प्रतिपक्षी को धर्षित कर देती हैं; उसी श्रीहर्ष नामक कवि की यह कृति पुण्यशील पुरुषों को प्रमोद देनेवाली है।'

इससे यद्यपि समाधि लगाकर ब्रह्म का साक्षात्कार करनेवाले, तर्क-शास्त्र में अजेय और मधु के समान मधुर कविता करनेवाले श्रीहर्ष जैसे महाकवि का मूल्य कान्यकुब्ज-नरेश के दिये हुये दो पान के बराबर ही जँचता है: क्योंकि उन्होंने कान्यकुब्ज-नरेश के हाथ के पानों को इतना महत्त्व दिया है कि आगे आनेवाली पीढ़ी के लिये उसका वर्णन छोड़ जाना उन्होंने बहुत आवश्यक समझा। श्रीहर्ष जैसे महामहिम कवि यदि यह गर्वोक्ति न लिखकर अपनी प्रतिभा और रसज्ञ विद्वानों की रसज्ञता का भरोसा रखते तो उनकी प्रशसा उन्ही के शब्दो मे विद्वान लोग करते और उसका महत्त्व भी अधिक होता।

पडितराज जगन्नाथ की गर्वोक्ति है?—

माधुर्यपरमसीमा सारस्वतजलधिमथनसंभूता।
पिबतामनल्पसुखदा वसुधायां मम सुधाकविता॥
(भामिनी-विलास)

'मधुरता की परम सीमावाली, विद्यारूपी समुद्र के मथन से उत्पन्न और पान करने पर अत्यन्त आनन्ददात्री मेरी कविता ससार में अमृत है।'

यह प्रशसा किसी अधिकारी काव्य-रसिक के मुख से निकलती तो इसकी कैसी शोभा होती!

ब्रजभाषा के कवि बिहारीलाल ने भी अपनी प्रशंसा की है।—

सतसैया के दोहरे,
ज्यों नावक के तीर।
देखत के छोटे लगैं,
घाव करैं गंभीर॥
(बिहारी सतसई)

पर घाव का सुखानुभव वही बयान करता, जिसे घाव लगा है तो अधिक रोचक होता न ? गालिब का एक शेर है।—

क्या पूछते हो यारो, इस तीर नीमकश को।
य' खलिश कहाँ से होती जो जिगर के पार होता।

ऐसी मिठास बिहारी की गर्वोक्ति में नहीं है।

हमारे तुलसीदास ने कालिदास और शेक्सपियर ही की-सी नम्रता प्रदर्शित की है। वे कहते हैं।—

कबि न होउँ नहिँ बचन प्रबीनू।
सकल कला सब बिद्या हीनू॥
आखर अरथ अलंकृति नाना।
छंद प्रबंध अनेक बिधाना॥
भाव-भेद रस-भेद अपारा।
कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
कबित बिबेक एक नहिँ मोरे।
सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे॥
(बाल-कांड)

यह 'मानस' के प्रारम्भ का वचन है। पर जब 'कोरा कागद' पूरा लिखा जा चुका तब तो 'कवि न होउँ' वाली उनकी बात सत्य

नहीं निकलीं। वस्तुतः 'कोरे कागद' द्वारा तो वे कवि नहीं, महाकवि होकर प्रसिद्ध हुये हैं। हमारे महाकवि की यह नम्रता उनके यश के अनुरूप ही है। इस नम्रता ने उनकी कवितारूपी सुवर्ण-मुद्रिका पर हीरे के नग की तरह शोभा दे रही है।

आइये, अब हम अपने महाकवि की काव्य-संबंधी कुछ अन्य विशेषताओं पर विस्तार के साथ विचार करें।—

छंद

तुलसीदास ने अपनी कविता में आश्चर्य जनक सफलतापूर्वक विविध छन्दों का प्रयोग किया है। चौपाई के लिये तो वे प्रसिद्ध ही हैं, दोहे भी उन्होंने अधिक संख्या में और चौपाई ही की टक्कर के सरस लिखे हैं। यह बात ध्यान देने की है कि उन्होंने हमेशा ऐसे छन्द पसंद किये, जो सुमधुर स्वर में गाये भी जा सकते हैं। मानस की चौपाइयों को तो गाँव के लोग राम-लीला के अवसर पर और गृहस्थी के कामों से फुरसत पाकर साँझ-सबेरे अपनी बैठकों में बीसों प्रकार से गाते हैं।

मानस में आठ प्रकार के मात्रिक और ग्यारह प्रकार के वर्ण-वृत्त, कुल उन्नीस प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है।

मात्रिक छन्द—दोहा, सोरठा, चौपाई, चौपैया, तोमर, डिल्ला, त्रिभङ्गी और हरिगीतिका।

वर्ण-वृत्त—अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, तोटक, नग-स्वरूपिणी, भुजंग-प्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वसततिलका, वंशस्थ, शार्दूल-विक्रीड़ित और स्रग्धरा।

यहाँ हरएक छन्द के उदाहरण दिये जाते हैं।—

मात्रिक छन्द--

दोहा

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायक फल चारि ॥

सोरठा

मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन ॥

चौपाई

सोचनीय सबही बिधि सोई ।
जो न छाँड़ि छल हरिजन होई ॥

चौपैया

सुर मुनि गन्धर्वा मिलिकर सर्वा गे बिरञ्चि के लोका ।
सँग गो तनु धारी भूमि बिचारी परम बिकल भय शोका ।
ब्रह्मा सब जाना, मन अनुमाना, मोरउ कछु न बसाई ।
जाकरि तैं दासी, सो अबिनासी, हमरउ तोर सहाई ॥

तोमर

जयराम सोभा धाम । दायक प्रनत्त बिस्राम ॥
धृति श्रोन बर सर चाप । भुज दण्ड प्रबल प्रताप ॥

डिल्ला

अनुज जानकी सहित निरंतर ।
बसहु राम नृप मम उर अंतर ॥
मुनि रंजन महि मंडल मण्डन ।
तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन ॥

त्रिभंगी

करुना सुखसागर सब गुन आकर
जेहि गावहिँ स्रुति सन्ता ।

सो मम हित लागी जन अनुरागी
भयउ प्रगट श्रीकंता ॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया
रोम रोम प्रति वेद कहै ।
मम उर सो बासी यह उपहाँसी
सुनत धीरमति थिर न रहै ॥

हरिगीतिका

सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भये ।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये ॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहिँ सुधि देह की ।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की ॥

वर्ण-वृत्त—

अनुष्टुप्

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति ॥

इन्द्रवज्रा

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महाशायक चारु चापं,
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

तोटक

जय राम रमा रमनं समनं । भवताप भयाकुल पाहि जनं ॥
अवधेस रमेस दिनेस विभो । सरनागत माँगत पाहि प्रभो ॥

नग-स्वरूपिणी

विनिश्चितं वदामि ते, न अन्यथा वचांसि मे ।
हरिं नरा भजन्ति जेऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥

भुजगप्रयात

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम् ।
निजं निगुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम् ॥

मालिनी

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं ।
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ॥
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं ।
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥

रथोद्धता

कोशलेन्द्रपदकञ्जमंजुलौ
कोमलावजमहेशवन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौ
चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥

वसन्ततिलका

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्—
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥

वंशस्थ

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत—
स्तथा न मम्ले वनवास दुःखत ।

मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे
सदाऽस्तु सा मंजुल मङ्गल-प्रदा ॥

शार्दूलविक्रीड़ित

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं
ब्रह्मादि देवासुराः ।
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं
रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लव एक एव हि भवा-
म्भोधेस्तितीर्षावताम् ।
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं
रामाख्यमीशं हरिम् ॥

स्रग्धरा

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं
कालमत्तेभसिंहम् ।
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं
निर्गुणं निर्विकारम् ॥
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं
ब्रह्मवृन्दैकदेवम् ।
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं
देवमुर्वीशरूपम् ॥

ऊपर जिन छन्दों के नाम दियें गये हैं, मानस में इनमें से चौपाई, दोहा, सोरठा और हरिगीतिका छन्दों ही की सख्या अधिक है।

चौपाइयों मे कुछ चौपाइयाँ पन्द्रह ही मात्रा की हैं, परंतु बहुत कम। जैसे।—

मोह जलधि बोहित तुम्ह भये।
मोकहँ नाथ विविध सुख दये॥
(सुन्दर-कांड)

कुछ चौपाइयाँ ह्रस्वांत भी हैं। जैसे।—

रामहिं सुमिरिय गाइय रामहि।
संतत सुनिय रामगुन ग्रामहिं॥
(उत्तर-कांड)

दोहों में कहीं-कहीं पहले और तीसरे चरण बारह-बारह मात्राओं के भी मिलते हैं। जैसे।—

रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका वृन्द तहँ, देखि हरष कपिराइ॥
(सुन्दर-कांड)

तुलसीदास के पूर्ववर्ती कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी अपनी पद्मावत में अधिकांश दोहों में पहला और तीसरा चरण, खासकर पहला, बारह ही मात्रे का रक्खा है।—

नयन डोल भरि ढारै,
हिये न आग बुझाइ।
घरी घरी जिउ आवै
घरी घरी जिउ जाइ॥
(पद्मावत)

ऊपर कहा जा चुका है कि तुलसीदास ने छंदों के चुनाव में इस बात का खास ध्यान रक्खा है कि वे गाये भी जा सकें। सब मनुष्यों को एक ही प्रकार का छन्द प्रिय हो, यह संभव नहीं; इससे उन्होंने कृपा-पूर्वक विविध छन्दों का प्रयोग करके सब प्रकार की रुचिवालों में अपना ज्ञान वितरण किया है।

गीतावली और विनय-पत्रिका के गीत यद्यपि विविध रागों से सबधित हैं; पर उनमें भी एक-एक राग अनेक छंदों में मिलते हैं।

'रामचरितमानस' के छन्दों का विवरण ऊपर दिया जा चुका है, उसमें आये हुये छन्दों के अतिरिक्त तुलसीदास के अन्य ग्रन्थो में अनेक प्रकार के छन्द व्यवहृत हुये हैं। यहाँ स्थानाभाव से उन छन्दों के अलग-अलग नाम और उनके लक्षण न देकर केवल उदाहरण दिये जा रहे हैं।—

रामलला-नहछू—

आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो ॥१॥

बरवै-रामायण—

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥२॥

पार्वती-मंगल—

विनइ गुरुहि गुनि गनहि गिरिहि गननाथहि।
हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि ॥३॥

कवितावली—

कतहुँ विटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करक्खत।
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि भट, जयति राम जय उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल, जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥४॥

बल्कल बसन धनु बान पानि तून कटि
रूप के निधान घन दामिनि बरन हैं।
तुलसी सुतीय संग सहज सुहाये अंग
नवल कँवल हू ते कोमल चरन हैं।
औरै सो बसंत औरै रति औरै रतिपति
मूरति बिलोके तन मन के हरन हैं।
तापस बेषै बनाइ पथिक पथै सुहाइ
चले लोक लोचननि सुफल करन हैं ॥५॥

नाँगो फिरै कहै माँगतो देखि
न खाँगो कछू जनि माँगिये थोरो।
राँकनि नाकप रीझि करै
तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो।
नाक सँवारत आयो हौं नाकहि
नाहि पिनाकिहि नेकु निहोरो।
ब्रह्म कहै, "गिरिजा सिखवो
पति रावरो दानि है बावरो भोरो" ॥६॥

मत्त भट मुकुट दसकंध साहस सइल
सृङ्ग बिहरनि जनु बज्र टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ
सेष संकुचित संकित पिनाकी।
चलित महि मेरु उच्छलित सायर सकल
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।
रजनिचर घरनि घर गर्भ अर्भक स्रवत
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ॥७॥

गीतावली—

सिष्य सचिव सेवक सखा सादर सिर नाये।
साधु सुमति समरथ सबै सानंद सिधाये ॥८॥

बाल-बिनोद मोद मंजुल मनि किलकनि खानि खुलावौं ।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृग-नयनि बुलावौं ॥९॥

रानी राउ सहित सुत परिजन निरखि नयन फल पाइहौं ।
चारु चरित रघुबंस तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं ॥१०॥

बाल बोल बिनु अरथ के सुनि देत पदारथ चारि ।
जनु इन्ह बचननि तें भये सुरतरु तापस त्रिपुरारि ॥११॥

आजु महा मंगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भये ।
सदन सदन सोहिलो सोहावन नभ अरु नगर निसान हये ॥१२॥

जाकहँ सनकादि संभु नारदादि सुक मुनीन्द्र
करत बिबिध जोग काम क्रोध लोभ जारी ।
दसरथ गृह सोइ उदार भंजन संसार भार
लीला अवतार तुलसिदास त्रास-हारी ॥१३॥

बंधुक सुमन अरुन पदपंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आये ।
नुपुर जनु मुनिवर कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाये ॥१४॥

चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि ।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भये चहै तरनि ॥१५॥

सिद्ध सिहात सराहत मुनिगन कहै सुर किन्नर नाग ।
ह्वै बरु बिहँग बिलोकिय बालक बसि पुर उपबन बाग ॥१६॥

सुमिरत श्री रघुबरन की लीला लरिकाई ।
- तुलसिदास अनुराग अवध आनँद
अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई ॥१७॥

पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक दामिनि-ओढी मानो बारे बारिधर ॥१८॥

सुन्दर सब अंगनि सिसु भूषन राजत जनु सोभा आये लैन ।
बड़ो लाभ लालची लोभ बस रहि गये लखि सुखमा बहु मैन ॥१९॥

तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक दास ।
वपुष बारिद बरसि छविजल हरहु लोचन प्यास ॥२०॥

खेलत चौहट घाट बीथी बाटिकनि प्रभु
सिव सुप्रेम मानस-मरालु ।
सोभा दान दैदै सनमानत जाचक जन
करत लोक लोचन निहालु ॥२१॥

कहि न सकत कछु राम प्रेम बस
पुलक गात भरे नीर नयन ।
गुरु बसिष्ट समुझाय कह्यो तब
हिय हरषाने जाने सेष-सयन ॥२२॥

सिरनि सिखा सुहाय उपवीत पीतपट
धनु सर कर कसे कटि निखङ्ग ।
मानो मख-रुज निसिचर हरिबे को
सुत पावक के साथ पठये पतंग ॥२३॥

प्रबल पाप पति साप दुसह दव दारुन जरनि जरी ।
कृपा सुधा सिँचि बिबुध बेलि ज्यों फिरि सुख फरनि फरी ॥२४॥

भई है प्रकट अति दिव्य देह धरि मानो त्रिभुवन छवि छवनी ।
देखि बड़ो आचरज पुलकि तनु कहति मुदित मुनि भवनी ॥२५॥

इनके बिमल गुन गनत पुलक तनु
सतानन्द कौशिक नरेसहिँ सुनाये है ।
प्रभु पद मन दिये सो समाज चित किये
हुलसि हुलसि हिय तुलसिहुँ गाये हैं ॥ २६ ॥

सुनत चलीं प्रमदा प्रमुदित मन
प्रेम पुलकि तनु मनहुँ मदन मंजुल पेखन ।
तुलसी सहज सनेह सुरँग सब
सो समाज चित चित्रसार लागी लेखन ॥२७॥

ललित सकल अंग, तनु धरे कै अनंग,
नैननि को फल कैधों, सिय को सुकृत सारु ।
तुलसी नृपहि ऐसे कहि न बुझावै कोउ
पन औ कुँवर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु ॥२८॥

गौर स्याम सलोने लोने लोने लोयननि
जिन्हकी सोभा तें सोहै सकल भुवन ।
तुलसी प्रभु को अब जनक नगर नभ
सुजस विमल विधु चहत उवन ॥२९॥

राम लषन सुधि आई वाजै अवध वधाई ।
'ललित लगन लिखि पत्रिका
उपरोहित के कर जनक जनेस पठाई ॥३०॥

राजकुमारि कठिन कंटक मग क्यों चलिहौ मृदु पद गजगामिनि ।
दुसह वात वरषा हिम आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि ॥३१॥

जो हठि नाथ राखिहौ मोकहँ तो सँग प्रान पठावोंगी ।
तुलसिदास प्रभु विन जीवित रहि क्यों फिर वदन देखावोंगी ॥३२॥

हौं रही भवन भोग लोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु ।
तुलसिदास ऐसे विरह वचन सुनि कठिन हियो विहरो न आजु ॥३३॥
यों कहि भईं मगन बाल, विथकीं सुनि जुवति-जाल,
चितवत चले जात संग मधुप मृग विहंग ।

बरनौं किमि तिनकी दसहि, निगम-अगम प्रेम-रसहि,
तुलसी मन-बसन रँगे रुचिर रूप रंग ॥२४॥

करनि बर धनु तीर, रुचिर कटि तूनीर,
धीर, सुर - सुखद, मर्दन अवनि - द्रोही।
अंबुजायत नयन, बदन छबि बहु मयन,
चारु चितवनि चतुर लेति चित पोही ॥२५॥

सखिहि सुसिख दई, प्रेम-मगन भई,
सुरति बिसरि गई अपनी ओही।
तुलसी रही है ठाढी, पाहन गढी सी काढी,
कौन जानै कहाँ तें आई, कौन की को ही ॥२६॥

बय किसोर गोरे साँवरे, धनुबान धरे है।
सब अंग सहज सोहावने, राजीव जिते नैननि
बदननि बिधु निदरे है॥
तून सुमुनिपट कटि कसे, जटा मुकुट करे है।
मंजु मधुर मृदु मूरति, पानह्यों न पायनि,
कैसे धौ पथ बिचरे है ॥२७॥

कहाँ तें आए है, को है कहा नाम स्याम गोरे,
काज कै कुसल फिरि एहि मग ऐहैं ?
उठति बयरा, मसि भीजति, सलोने सुठि,
सोभा-देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं ॥२८॥

नखसिख नीके, नीके निरखि निकाई।
तन सुधि गई, मन अनत न जाई॥
हेरनि हँसनि हिय लिये है चोराई।
पावन - प्रेम - विवस भई हैं पराई ॥२९॥

मुनि सुर सुजन समाज के सुधारि काज,
बिगरि बिगरि जहाँ जहाँ जाकी रही है।
पुर पाँउ धारिहै उधारिहै तुलसी हूँ से जन,
जिन जिय जानि कै गरीबी गाढी गही है ॥४०॥

फटिक सिला मृदु बिसाल, संकुल तरुतल तमाल,
ललित लता जाल हरति छबि बितान की ॥४१॥

लखन कहेउ रघुनंदन देखिय बिपिन समाज।
मानहु चयन मयनपुर आयउ प्रिय ऋतुराज ॥४२॥

तिनको न काम सकै चापि छाँह।
तुलसी जे बसहिं रघुबीर बाँह ॥४३॥

तिलक को बोल्यो दियो बन चौगुनो चित चाउ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदरयो समुझि सील सुभाउ ।४४॥

निज कर खाल खैचि या तनु तें
जौ पितु पग पानही करावौ।
होउँ न उऋन पिता दसरथ ते,
कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं ॥४५॥

कहत सुगम करत अगम सुनत मीठी लगति।
लहत सकृत चहत सकल जुगजुग जगमगति ॥४६॥

जिन्हके मन मगन भये है रस सगुन
तिन्ह के लेखे अगुन मुकुति कवनि।
स्रवन सुख करनि भवसरिता तरनि
गावत तुलसिदास कीरति पवनि ॥४७॥

सरित जल मलिन, सरनि सूखे नलिन
अलि न गुंजत कल कूजैं न मराल ॥

कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखात
बन न बिलोकि जात खगमृग माल ॥४८॥

पिय को बचन परिहरयो जिय के भरोसे,
संग चली वन बड़ो लाभ जानि।
प्रीतम बिरह तौ सनेह सरबसु सुत,
औसर को चूकिबो सरिस न हानि ॥४९॥

कहन चह्यो संदेस नहिं कह्यो
पिय के जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो।
देखि दसा व्याकुल हरीस,
ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि तायो ॥५०॥

बहु राछसी सहित तरु के तर
तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति।
मनहुँ दुष्ट इन्द्रिय संकट महँ
बुद्धि बिवेक उदय मग जोवति ॥५१॥

तहँई मिले महेस, दियो हित उपदेस,
राम की सरन जाहि सुदिनु न हेरै ॥५२॥

विषय विषाद बारिनिधि बूड़त
थाह कपीस कथा लही।
गये दुख दोष देखि पदपंकज
अब न साध एकौ रही ॥५३॥

राम राजीव लोचन बिमोचन बिपति
स्याम नव तामरस दाम बारिद बरन।
लसत जट जूट सिर चारु मुनि चीर कटि
धीर रघुबीर तूनीर सर धनु धरन ॥५४॥

सानुज सुभग तनु, जबतें बिछुरे बन,
तब तें दव सो लगी तीनिहूँ भुवन।
मूरति सूरति किये प्रगट प्रीतम हिये,
मन के करन चाहैं चरन छुवन ॥२५॥

सूत मागध प्रवीन, बेनु बीना धुनि द्वारे,
गायक सरस राग रागे।
स्यामल सलोने गात, आलसबस जँभात,
प्रिया प्रेमरस पागे ॥२६॥

नील नीरद बरन वपुष भुवनाभरन,
पीत अंबर धरन हरन दुति दामिनी।
सरजु मज्जन किये संग सज्जन लिये,
हेतु जन पर हिये कृपा कोमल घनी ॥२७॥

गीतावली मे दो छन्दों के सयोग से नये छन्दो का निर्माण भी तुलसीदास ने किया है। नीचे के उदाहरणों मे पहले में एक दोहा सरीखे छन्द के साथ और दूसरे में एक दोहे के साथ एक हरिगीतिका जोड़कर उन्होंने नये छन्द बनाये हैं।

सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात॥
प्रभु खात माँगत देति सबरी राम भोगी जाग के।
पुलकत प्रससत सिद्ध सिव सनकादि भाजन भाग के॥
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के।
सुनु समुझि तुलसी जानु रामहिं बस अमल अनुराग के ॥२८॥

झुंड झुंड झूलन चलीं, गजगामिनि वर नारि।
कुसुम चीर तनु सोहहिँ, भूषन बिबिध सँवारि॥

पिक बयनी मृगलोचनी, सारद ससि सम तुंड।
राम सुजस सब गावहीं, सुसुर सुसारँग गुंड॥
सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं।
बहु भाँति तान तरंग सुनि गंध्रर्व किन्नर लाजहीं॥
अति मचत छूटत कुटिल कच छबि अधिक सुन्दरि पावहीं।
पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं॥५६॥

दोहे के दूसरे और चौथे चरणों में दो-दो मात्रायें बढ़ाकर उन्होंने एक और नया छन्द बनाया है।—

लोचन नील सरोज से, भ्रू पर मसि बिंद बिराज।
जनु बिधु मुख छवि अमिय को, रच्छक राखे रितुराज॥६०।

श्रीकृष्ण-गीतावली—

पूछत तोतरात बात मातहिं जदुराई।
अतिसय सुख जाते तोहिं मोहिं कहु समुझाई॥६१॥

बाल बोलि डहकि बिरावत चरित लखि,
गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात।
नूपुर की धुनि किंकिनि के कलरव सुनि,
कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात॥६२॥

विनय-पत्रिका—

गाइये गनपति जगबंदन।
संकर सुवन भवानी नंदन॥६३॥

जाके है सब भाँति भरोसो,
कपि केसरी किसोर को।
जनरंजन अरिगन गंजन मुख
भंजन खल बरजोर को॥६४॥

जानकी जग-जननि जन की किये बचन सहाइ ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुनगन गाइ ॥६५॥

मोह मद कोह कलि कंज हिम जामिनी ।
मुक्ति की दूतिका देह दुति दामिनी ॥६६॥

जग नभ बाटिका रही है फल फूलि रे ।
धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥६७॥

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव,
जागि त्यागु मूढ़तानुराग श्रीहरे ।
करु विचार तजु विकार भजु उदार रामचद्र,
भद्रसिंधु दीनबंधु बेद बदत रे ॥६८॥

सकल बिस्व बंदित सकल सुर सेवित,
आगम निगम कहैं रावरेई गुनग्राम ।
इहै जानिकै तुलसी तिहारो जन भयो,
न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ॥६९॥

सुख साधन हरि विमुख वृथा जैसे,
श्रमफल घृत हित मथे पाथ ।
यह बिचारि तजि कुपथ कुसंगति,
चलु सुपंथ मिलि भले साथ ॥७०॥

छुली मलीन हीन सबही अँग, तुलसी सो छीन छाम को ।
राम नरेस प्रताप प्रबल जग, जुग जुग चालत चाम को ॥७१॥

जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिये ।
प्रेम नेम के निबाहे चातक सराहिये ॥७२॥

कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भये,
जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि ।

करम कलाप परिताप पाप साने सब,
ज्यों सुफूल फूलै तरु फोकट फरनि ॥७३॥

बेद बिदित साधन सबै, सुनियत दायक फल चारि ।
राम प्रेम बिनु जानिबो, जैसे सर सरिता बिनु बारि ॥७४॥

कूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन ।
सुमिरत नाम राम पठये सब अपने भवन ॥७५॥

काल सुभाव करम विचित्र फलदायक सुनि सिर धुनि रहौं ।
मोको तो सकल सदा एकहि रस दुसह दाह दारुन दहौं ॥७६॥

संकर साखि जो राखि कहौं कछु तो जरि जीह गरो ।
अपनो भलो राम नामहिँ ते तुलसिहिँ समुझि परो ॥७७॥

तीन लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं ।
तुम्हसों कपट करि कलप कलप कृमि ह्वैहौं नरक घोर को हौं ॥७८॥

राम नाम को प्रताप जानियै नीके आप
मोको गति दूसरी न बिधि निरमई ।
खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु
रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ॥७९॥

आपको भले है सब आपने को कोऊ कहूँ,
सबको भलो है राम रावरो चरन ।
पाहन पसू पतङ्ग कोल भील निसिचर
काँच ते कृपानिधान किये सुबरन ॥८०॥

ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को ।
त्यों मेरे मन लालसा करिये
करुनाकर पावन प्रेम पीन को ॥८१॥

जग हँसिहै मेरे संग्रहे कत यहि उर धरिये।
कपि केवट कीन्हें सखा सील सरल चित
तेहि सुभाव अनुसरिये ॥८२॥

कृपासिन्धु ताते रहौं, निसिदिन मन मारे।
महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे ॥८३॥

कहु केहि कहिय कृपानिधे भवजनित विपति अति।
इन्द्रिय सकल विकल सदा निज निज सुभाउ रति।
जो सुख संपति सरग नरक संतत सँग लागी।
हरि परिहरि सोइ जतन करत मन मोर अभागी ॥८४॥

विनय-पत्रिका में भी कुछ ऐसे छन्द मिलते हैं, जिन्हे तुलसीदास ने दो भिन्न छन्दों को मिलाकर बनाया है। इससे जान पड़ता है कि नये छन्द निर्माण करने की सुरुचि उनमे पर्याप्त मात्रा में थी, और यह भी पता चलता है कि हरिगीतिका-छन्द उन्हे बहुत प्रिय था, क्योंकि अन्य छन्दो को उन्होंने हरिगीतिका ही के साथ मिलाया है। उदाहरण।—

ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि।
ध्यान अगम सिवहू भेंट्यो केवट उठि॥

भरि अंक भेंट्यो सजल नयन सनेह सिथिल सरीर सों।
सुर सिद्ध मुनि कवि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुबीर सों॥
खग सबरि निसिचर भालु कपि किये आपुतें बदित बड़े।
तापर तिन्हकि सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े ॥८५॥

हरिगीतिका के पहले वे जो छन्द लिखते थे, उसके अन्तिम चरण के कुछ शब्द हरिगीतिका के प्रथम चरण में लाने का प्रयास उन्होने अपने काव्यों में सर्वत्र किया है। जानकी मगल,

पार्वती-मंगल और मानस में उन्होंने अपना यह नियम बड़ी सतर्कता के साथ निभाया है।—

जो तेहि पंथ चलै मन लाई।
तौ हरि काहे न होहिं सहाई।
जो मारग स्रुति साधु बतावै।
तेहि पथ चलत सबै सुख पावै॥

पावै सदा सुख हरि कृपा संसार आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं दुख देत दरसन बात कोटिक को कहै॥
द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पावई।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गावई॥८६॥

(विनय-पत्रिका)

विनय-पत्रिका में तुलसीदास ने दोहे के दूसरे और चौथे चरणों में से दो-दो मात्रायें कम करके एक और छन्द बनाया है।—

देस काल पूरन सदा, बद बेद पुरान।
सब को प्रभु सब में बसै, सब की गति जान॥८७॥

तुक

हिन्दी-छन्दों में तुकों का मिलना उसके प्रारंभिक-काल ही से परम आवश्यक माना जा रहा है। यह एक गवेषणीय बात है कि हिन्दी में तुक मिलाने की प्रथा कैसे और कब से चल पड़ी। संस्कृत से यह नियम हिन्दी में आया न होगा, क्योंकि संस्कृत में तुक मिलाने की अनिवार्यता कभी थी ही नहीं। जान पड़ता है, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के ज़माने से तुक मिलाने की प्रथा चल निकली है।

इसमे तो सदेह ही नही कि तुक छन्द का एक आवश्यक अग है। क्योकि इससे छन्द का श्रुति-माधुर्य बढ़ जाता है और वह प्रभावोत्पादक भी हो जाता है।

फ़ारसी मे भी तुकबन्दी का प्राधान्य है। फ़ारसी से यह नियम उर्दू मे आया। उर्दू मे भी तुक का नियम बड़ी कड़ाई से पाला जाता है और वह रदीफ और काफ़िये की बन्दिश से हमेशा चुस्त-दुरुस्त रक्खा जाता है। अग्रेजी-कविता में भी पहले तुकों की प्रधानता थी। शेक्सपियर ने अपने को तुक-बन्धन से मुक्त किया, फिर तो बेतुकी कविताओं का प्रचलन जोरों से चल पड़ा।

सस्कृत में यद्यपि तुक का बन्धन नहीं है, पर जहाँ कही किसी कवि ने तुक मिला दिया है, वहाँ उसके छन्द की सरसता भी बढ़ गई है। आदि-कवि वाल्मीकि ने सुन्दर-काड मे कुछ अन्त्यानुप्रास-युक्त श्लोक दिये हैं, जो पढ़ने मे बहुत ही प्रिय लगते हैं। जैसे।—

पुष्पाह्वयं नाम विराजमानं रत्नप्रभाभिश्च विघूर्णमानम्।
वेश्मोत्तमानामपि चोच्चमानं महाकपिस्तत्र महाविमानम्॥

कृताश्च वैदूर्यमया विहंगा रूप्यप्रवालैश्च तथा विहङ्गाः।
चित्राश्च नानावसुभिर्भुजङ्गा जात्यानुरूपास्तुरगाः शुभांगाः॥

प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः सलीलमावर्जितजिह्मपक्षाः।
कामस्य साक्षादिव भान्ति पक्षाः कृता विहङ्गाः सुमुखाः सुपक्षाः॥

नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः।
बभूव देवी च कृतासुहस्ता लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्महस्ता॥

तुलसीदास को तुक मिलाने का अच्छा शौक जान पड़ता है। उन्होंने उत्तम कोटि के तुक मिलाने का हमेशा ध्यान रक्खा

है और इस कारण से भी उनके काव्यो के प्रचार मे बड़ी सहायता मिली है। उनके तुको के कुछ नमूने लीजिये।—

कुन्द इन्दु सम देह, उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन॥

राम राम कहि जे जमुहाही।
तिनहिँ न पाप पुञ्ज समुहाही॥

राम बान रवि उये जानकी।
तम बरूथ कहँ जातुधान की॥

(मानस)

मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहहि रतन कि राजहि ?

(पार्वती-मङ्गल)

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुँदरी कङ्कन होइ॥

(बरवै-रामायण)

लीन्ही उखारि पहार बिसाल
चल्यो तेहि काल बिलम्ब न लायो।
मारुत-नन्दन मारुत को
मन को खगराज को बेग लजायो।
तीखी तुरा तुलसी कहतो
पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की
नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥

(कवितावली)

पतित पावन रामनाम सों न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी-सो ऊसरो ॥
(विनय-पत्रिका)

गीतावली के एक गीत मे 'हारु' शब्द का प्रयोग तुलसीदास ने हरएक पंक्ति में करके तुकों पर अपना सहज अनुराग प्रकट किया है।—

सखि! रघुनाथ-रूप निहारु।
सरद-विधु रवि-सुवन मनसिज-मान-भंजनिहारु।
स्याम सुभग सरीर जनु मन-काम-पूरनिहारु।
भाल चन्दन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहारु।
रुचिर उर उपवीत राजत, पदिक गजमनि हारु।
मनहुँ सुरधनु नखतगन बिच तिमिर-भंजनिहारु।
विमल पीत दुकूल दामिनि-दुति-विनिन्दनिहारु।
वदन सुषमा सदन सोभित मदन-मोहनिहारु।
दासतुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहारु॥

पर कहीं-कहीं तुक मिलाने में उन्होंने अपनी शिथिलता भी दिखलाई है। यह आश्चर्य की बात होगी, यदि ऐसी असावधानी उन्होंने जान-बूझकर की हो। कुछ उदाहरण लीजिये।—

विश्वम्भर श्रीपति त्रिभुवनपति,
वेद विदित यह लीक।
बलिसों कछु न चली प्रभुता वरु
ह्वै द्विज माँगी भीख॥
(विनय-पत्रिका)

गै जननी सिसु पहिं भयभीता।
देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
(अयोध्या-कांड)

धवल धाम ऊपर नभ चुम्बत।
कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥
(उत्तर-कांड)

मुनि जेहि ध्यान न पावहीं,
नेति नेति कह वेद।
कृपासिन्धु सोइ कपिन्ह सन
करत अनेक बिनोद॥
(लङ्का-कांड)

बरनत रूप पार नहिं पावत
निगम सेष सुक संकर भारति।
तुलसिदास केहि बिधि बखानि कहै
यह मन बचन अगोचर मूरति॥
(गीतावली)

हिन्दी मे स्वर-युक्त व्यजन का तुक मिलाने की प्रथा प्रचलित है, केवल स्वर के तुक का मिलान उर्दू मे चलता है। तुलसीदास ने तुक के सबध मे यद्यपि प्रचलित नियम ही का सर्वत्र अनुसरण किया है, पर कवितावली मे उनके दो-एक ऐसे भी छद मिलते हैं, जिन मे केवल स्वर ही के तुक मिले हैं।—

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे धनु काँधे धरे कर सायक लै।
बिकटी भृकुटी बडरी अँखियाँ अनमोल कपोलन की छबि है।
तुलसी असि मूरति आनि हिये जड डारिहौं प्रान निछावरि कै।
स्रम सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारक मै॥

दसरत्थ के दानि सिरोमनि राम पुरान प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मनभावत पायो न कै॥

तुलसी कर जोरि करै बिनती जो कृपा करि दीनदयालु सुनै ।
जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियैं ॥
(कवितावली)

आजकल हिन्दी मे अतुकात कविता भी होने लगी है, पर अभी तक उसका प्रचार बढ़ता हुआ नही दिखाई पड़ रहा है। छन्दो के भी नये-नये रूप निकाले गये हैं; पर यह भी देखा जाता है कि जबतक ऐसे छन्दों के रचयिता स्वय गाकर उन्हे नही सुनाते, या पुस्तक से पढनेवाला स्वय गाकर उन्हे नही पढ़ता, तब तक उनमें कोई आकर्षण नहीं पाया जाता। अतएव पद्य-रचना में तुको की प्रधानता अभी तो कायम रहती-ही दिखाई पडती है।

प्रवाह

प्रवाह या गति छन्द का एक आवश्यक अंग है, बल्कि प्रवाह ही को छन्द कहना चाहिये। प्रवाह की विभिन्नता से छन्द का स्वरूप तो बदल ही जाता है, वह सुनने में भी प्रिय नही लगता।

तुलसीदास ने छन्द की गति या प्रवाह पर बहुत ध्यान रक्खा है। उनके छन्दों को पढ़ते समय जिह्वा आप से आप आगे को फिसलती-सी चलती है। उन्होंने प्रत्येक शब्द के आगे का शब्द उससे मिलता-जुलता हुआ ऐसा चुनकर रक्खा है कि उससे छन्द के स्वाभाविक प्रवाह में बड़ी सरलता आ जाती है। कुछ उदाहरण लीजिये।—

भूमि सयन बलकल बसन,
असन कद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं,
समय समय अनुकूल॥
(अयोध्या कांड)

प्रभुहिं चितइ पुनि चितव महि,
राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग,
जनु बिधुमंडल डोल ॥

(बाल-कांड)

जौं पटतरिय तीय महँ सीया ।
जग अस जुवति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी ।
रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥

(बाल-कांड)

जरा अंतिम पंक्ति को ध्यान से पढ़िये, लगातार ह्रस्व-चरण रखकर छंद के प्रवाह को कितना स्निग्ध बना दिया गया है ।

प्रवाह में व्यतिक्रम वहाँ होता है, जहाँ छन्द में कुछ मात्रायें बढ़ जाती हैं, या यति-भंग होता है । छन्द में जैसे प्रवाह की सरलता सहायक होती है, वैसे ही प्रवाह में यति या विराम का अपने उचित स्थान पर होना भी परमावश्यक है । तुलसीदास ने गति और यति के औचित्य का ध्यान तो काफी रक्खा, फिर भी कहीं-कहीं वे चूके हुये-से लगते हैं । यद्यपि ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, पर एक भी न मिलता तो अच्छा होता न ?

कुछ उदाहरण लीजिये ।—

मुनिबर बहुरि राम समुझाये ।
सहित समाज सुरसरित नहाये ॥

(अयोध्या-कांड)

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते॥

(अयोध्या-कांड)

होहिँ कुठायँ सुबंधु सुहाये।
ओडियहि हाथ असनिहुँ के घायें॥

(अयोध्या-कांड)

सेवक सेवकाई जानि जानकीस मानै कानि
सानुकूल सूलपानि नवै नाथ नाक को॥

(कवितावली)

ऊपर की पंक्तियों में एक-एक मात्रा अधिक है, इससे उनके स्वाभाविक प्रवाह में रुकावट पड़ती है।

छन्द की मात्रायें ठीक हों, पर शब्दों का जड़ाव ठीक न हो, तो भी प्रवाह में बाधा पड़ती है। जैसे।—

कहैं मोहिं मैया कहौं मैं न मैया भरत की,
बलैया लैहौं भैया! तेरी मैया कैकेई है।

(कवितावली)

यह ३१ अक्षरों का छन्द है। इसमें ३१ अक्षरों की गिनती ठीक होने पर भी शब्दों का संगठन ठीक नहीं है, इसीसे यह ठीक-ठीक पढा नहीं जा सकता।

इस प्रकार के दोष कहीं-कहीं और भी मिलते हैं। जैसे।—

मिला असुर विराध मग जाता।
आवत ही रघुबीर निपाता॥

(अरण्य-कांड)

इसमें 'असुर' के पहले 'विराध' शब्द कर दिया गया होता तो प्रवाह में शैथिल्य न आने पाता। ऐसे ही।—

देखि इन्दु चकोर समुदाई ।
चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥
(किष्किंधा-कांड)

जा बल सीस धरत सहसानन ।
अडकोस समेत गिरि कानन ॥
(सुन्दर-कांड)

उमा राम सुभाव जेहि जाना ।
ताहि भजन तजि भाव न आना ॥
(सुन्दर-कांड)

कंपहिं लोकप जाकी त्रासा ।
तासु नारि सभीत बडि हासा ॥
(सुन्दर-कांड)

अब कृपालु निज भगति पावनी ।
देहु सदा सभु मन भावनी ॥
(सुन्दर-कांड)

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं ।
मोर दरस अमोघु जग माहीं ॥
(सुन्दर-काण्ड)

सुनहु परम पुनीत इतिहासा ।
जो सुनि सकल सोक भ्रम नासा ॥
(उत्तर-कांड)

इत्यादि चौपाइयो में शब्दों का जड़ाव ठीक नहीं हुआ है, जिससे प्रवाह मे अटक पैदा होगई है ।

यति-भंग-दोष के भी कहीं-कहीं उदाहरण मिलते हैं। जैसे—

खल प्रबोध, जग सोध मन,
को, विरोध कुल सोध ॥
(दोहावली)

इसमे 'को' को 'मन' के पास रहना चाहिये था, पर वह दूसरी पक्ति में पड़कर निरर्थक-सा होगया है।

छन्द के प्रवाह मे बाधा डालनेवाले ऐसे प्रयोग 'रामचरितमानस' मे प्रायः मिलते हैं। यह बताना असभव है कि तुलसीदास ने किस उद्देश्य से उन्हे यों ही रहने दिया, क्योंकि वे चाहते तो शब्दों के साधारण हेर-फेर से छन्द का प्रवाह ठीक कर सकते थे।

गुण

तुलसीदास की कविता में उत्तम कोटि की काव्य-भाषा के समस्त गुण पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। मुख्य गुण प्रसाद है। प्रसाद गुण के बारे मे 'चन्द्रालोक' के कर्त्ता सुप्रसिद्ध सस्कृत-कवि पीयूषवर्ष जयदेव कहते हैं।—

यस्मादन्तःस्थितः सर्वः स्वयमर्थोऽवभासते ।
सलिलस्येव सूक्तस्य स प्रसाद इति स्मृतः ॥

'जिस प्रयोग से वाक्य में छिपा हुआ अर्थ विना प्रयास के, सहज ही में झलकता हुआ दिखाई पड़ने लगे, जैसे निर्मल जल के अंदर की वस्तु, उसे प्रसाद गुण कहते हैं।'

प्रसाद-गुण तुलसीदास की कविता की मुख्य विशेषता है। उनके सरल वाक्यों में उनके गूढ़ से गूढ़ भाव भी ऐसी स्पष्टता से झलक रहे हैं कि कोई साधारण समझ-बूझ का व्यक्ति भी उनकी कुछ न कुछ रूप-रेखा हृदयङ्गम कर ही लेता है। उनका कोई भाव भाषा की क्लिष्टता से अस्पष्ट नही होने पाया है। जहाँ

भाव क्लिष्ट था, वहाँ उन्होंने अत्यत प्रचलित लोक-भाषा का प्रयोग करके उसे सुबोध बना दिया है।

प्रसाद-गुण का एक चमत्कार रामचरितमानस में सवाद के प्रसगों मे देखने को मिलता है। सवादों में तुलसीदास ने सर्वनामों का प्रयोग बहुत कम किया है। किसने पूछा, किसने कहा, इसकी कोई सूचना पंक्ति में नहीं है, पर पढने या सुननेवाला आप से आप समझता चलता है कि बात क्या है और कौन कह रहा है। एक उदाहरण लीजिये।—

लक्ष्मण ने धनुर्भंग के अवसर पर परशुराम को कहा।—

कहेउ लखन मुनि सील तुम्हारा।
को नहिं जान बिदित संसारा॥ इत्यादि,

लक्ष्मण की वक्रोक्ति सुनकर परशुराम ने कुठार उठाया। चौपाई में परशुराम का नाम नहीं है, लेकिन पढ़ने या सुननेवालो को यह समझने में दिक्कत नहीं होती कि किसने कुठार सँभाला।—

सुनि कटु बचन कुठारु सुधारा।
हाय हाय सब सभा पुकारा॥

इसके आगे की चौपाई मे वक्ता का नाम नहीं है, पर पढ़ते ही मालूम हो जाता है कि कौन कह रहा है।

भृगुबर परसु देखावहु मोही।
बिप्र बिचारि बचउ नृपद्रोही॥

'मानस' ही की नहीं, तुलसीदास के समस्त काव्यो की भाषा प्रसाद-गुण से गौरवान्वित है।

भाषा का दूसरा गुण माधुर्य है। भाषा में माधुर्य गुण लाने के लिये-यह आवश्यक है कि उसमें मधुर अक्षरोंवाले

शब्दो-का प्रयोग अधिक हो। जैसे-क, त, न, म, ल, स इत्यादि; लबे-लबे समास न हों, और टवर्ग का अभाव हो। शृङ्गार, करुण, शात, अद्भुत और हास्य आदि कोमल रसो मे माधुर्य-गुण-युक्त भाषा ही का प्रयोग प्रशसनीय होता है।

तुलसीदास ने अपनी कविता में माधुर्य गुण कूट-कूटकर भरा है। टवर्ग से बने हुये शब्दो का प्रयोग उन्होने विवश होकर प्रायः वहीं किया है, जहॉ मधुराक्षरांवाले अन्य पर्यायवाची शब्द नही मिले। अनुप्रास और यमक की प्रचुरता से उन्होंने भाषा के सहज सौन्दर्य को बहुत बढ़ा दिया है। ऐसी साफ-सुथरी, परिमार्जित और प्रस्तुत रस को अनुसरण करनेवाली भाषा हिन्दी के किसी अन्य कवि की कविता मे नही मिलती।

साधारण पाठक को भी एक यह विशेषता प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है कि तुलसीदास ने अपने समस्त काव्यो में यथा-संभव ह्रस्व वर्णों वाले शब्दो ही का प्रयोग बहुत किया है। दीर्घ वर्ण वाले शब्द उनकी भाषा मे अपने अस्तित्व की जबरदस्ती मे बीच-बीच मे भले ही बैठ गये हैं, कवि की आन्तरिक इच्छा उनको वहॉ बैठने देने की नही दिखाई पडती। ह्रस्व वर्णो के बहुल प्रयोग से चौपाइयों में सचमुच बड़ा रस आ गया है और उनके प्रयोग-निपुण कवि को बड़ी सफलता प्राप्त हुई है।

तीसरा गुण ओज है। वीर, रौद्र, वीभत्स और भयानक रसो के लिये भाषा में मुख्यकर इसी गुण की आवश्यकता होती है। ओज-गुण लाने के लिये टवर्ग, द्वित्त्व और सयुक्त वर्ण, रकार, ह्रस्व वर्ण और लम्बे-लम्बे समास-युक्त कर्कश रचना प्रशसनीय मानी जाती है।

माधुर्य गुण के प्रभाव से अपनी कविता को सरस, सरल और मधुर बनाने के लिये सदा प्रयत्न-शील कवि तुलसीदास वीर

और रौद्र आदि रसों के प्रसंग आते ही, जरा भी असावधानी किये विना, परम ओजस्वी बन जाते थे। ओज-गुण युद्ध-वर्णन का प्राण-स्वरूप है। देखिये, राम की रण-भयकरता का कैसा ओज-पूर्ण वर्णन तुलसीदास ने किया है।—

भये क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे।
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ- भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

(लंका-कांड)

रस

कविता में मुख्य नौ रस माने गये हैं। कोई-कोई आचार्य वात्सल्य-भाव को भी रसों में गिनकर उनकी संख्या दस बतलाते हैं। शृंगार-प्रकाश के कर्ता भोजराज ने वात्सल्य-भाव को भी एक रस माना है।—

शृंगारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य-
बीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः।
आम्नासिषुर्दशरसान्सुधियो वयं तु
शृंगारमेव रसनाद् रसमामनामः॥

तुलसीदास की कविता में काव्य के उक्त दसों रसों का परिपाक हुआ है। यहाँ हरएक रस के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।—

शृङ्गार रस—

शृङ्गार रस का संबंध प्रकृति के बाह्य और अंतःसौन्दर्य से

है। वह सब रसो का राजा माना जाता है। मुख्यतः स्त्री-पुरुष के कामुक भावो का पोषक शृङ्गार-रस ही है।

तुलसीदास काम-क्रोध आदि मनोविकारो को मनुष्य का शत्रु मानते और उनको हमेशा त्याज्य कहते रहे, इससे कामोत्तेजक शृङ्गार उनकी कविता मे आने ही नही पाया। पर ससार के सहज सौन्दर्य की उपेक्षा उन्होने कभी नहीं की। पति-पत्नी के प्रेम-सभाषण, अनुराग-प्रदर्शन को वे गृहस्थ-मात्र के जीवन का एक मनोहर अग मानते थे और इसीसे उन्होने राम और सीता को पति-पत्नी ही के रूप मे देखा है। इसी भाव से प्रेरित होकर वे राम के एक दिन की बात, जो छोटी-सी है, पर प्रेमी की दृष्टि में बहुत महत्वपूर्ण है, इस प्रकार कहते हैं।—

एक बार चुनि कुसुम सुहाये।
निज कर भूषन राम बनाये॥
सीतहि पहिराये प्रभु सादर।
बैठे फटिक सिला पर सुन्दर॥

तुलसीदास ने शृ गार-स्थल मे सर्वत्र स्त्रियों को बडे ही विलास-व्यञ्जक-शब्दों में स्मरण किया है। स्त्रियों के लिये पिक-बैनी, बिधुबदनी, गजगामिनी, मृगलोचनी, रतिमानमोचनी आदि शब्द तो उनके तकिया कलाम-जैसे होगये थे। गीतावली में वे अवध के घर-घर मे अप्सरायें-जैसी सुन्दरी स्त्रियों का होना बतलाते हैं।—

निज निज अटनि मनोहर, गान करहिँ पिकबैनि।
मनहुँ हिमालय सिखरनि, लसहिँ अमर मृगनैनि॥
धवल धाम तें निकसहिँ, जहँ तहँ नारि बरूथ।
मानहुँ मथत पयोनिधि, बिपुल अपसरा जूथ॥

किंसुक बरन सुअंसुक, सुषमा सुखनि समेत।
जनु बिधु निवह रहे करि, दामिनि निकर निकेत॥

'मानस' में भी उन्होंने शृङ्गार की इन प्रतिमाओं को एकत्र कर प्रत्येक उपयुक्त स्थान को सुशोभित बनाया है। जो लोग उन्हे स्त्री-समाज का विरोधी बताते हैं, उन्हे उनके शृङ्गार-समारोह के वर्णन पढने चाहिये। स्त्रियो के सौन्दर्य पर ऐसा विमुग्ध शायद ही कोई साधु कवि हिन्दी मे हो। वे कितनी बारीकी से स्त्रियो का सौन्दर्य देखते थे, इसका एक नमूना लीजिये।—

राम-राज्य का सुख दिखलाने के लिये वे राघव के हिँडोले पर सखियों को झुलाने ले जा रहे हैं।—

आली री! राघौ के रुचिर हिँडोलना झूलन जैये।
उनये सघन घनघोर मृदु झरि सुखद सावन लाग।
बगपाँति सुरधनु दमक दामिनि हरित भूमि बिभाग॥
दादुर मुदित भरे सरितसर महि उमँग जनु अनुराग।
पिक मोर मधुप चकोर चातक सोर उपबन बाग॥
सो समौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि।
गुन रूप जोबन सींव सुन्दरि चली झुण्डन झारि॥
झूलहिँ झुलावहिँ ओसरिन्ह गावहिँ सुहो गौंड मलार।
मञ्जीर नूपुर बलय धुनि जनु काम करतल तार॥
अति मचत स्रमकन मुखनि बिथुरे चिकुर बिलुलित हार।
तम तडित उडुगन अरुन बिधु जनु करत व्योम बिहार॥

× × ×

झुण्ड झुण्ड झूलन चलीं,
गजगामिनि बरनारि।
कुसुँभि चीर तन सोहहिँ,
भूषन बिबिध सँवारि॥

सारङ्ग गुण्ड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं।
बहु भाँति तान तरङ्ग सुनि गंधर्व किन्नर लाजही॥
अति मचत छूटत कुटिल कच छवि अधिक सुन्दरि पावही।
पट उडत भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावही॥
(गीतावली)

इस वर्णन का कवि सावन की सुहावनी ऋतु मे, हिंडोले के समारोह में, गुणवती, रूपवती और यौवनवती सुन्दरियों के मुख पर पसीने की बूँदो और बिथुरी हुई अलकों का सौन्दर्य दर्शन कर चुका है, और उनके उड़ते हुये कुसुम्भी चीरों से जो सुन्दर दृश्य बन जाता है, उसका वह आनद ले चुका है, यह मानने में किसे आपत्ति होगी? 'अति मचत' का अर्थ क्या यह नहीं है कि युवतियाँ आपस में कल्लोल करती थीं और यह दृश्य साधारण श्रृङ्गारी जनों की तरह तुलसीदास को भी नेत्र-मनोरंजक लगा, तभी तो उन्होंने इसका उल्लेख किया है? इस तरह का वर्णन कवि की कामुकता का प्रमाण नहीं है, बल्कि यह उसकी सौन्दर्य-प्रियता है, जो एक उच्च कोटि के कवि और महान् पुरुष की सबसे बड़ी शोभा है।

वीर-रस—

वीर रस के चार भेद हैं।—दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर और दयावीर। तुलसीदास ने राम में वीर-रस के उक्त चारों भेदों के लक्षण घटित किये हैं।—

राम की दान-वीरता।—

जो संपति सिव रावनहि, दीन्हि दिये दस माथ।
सो सम्पदा बिभीषनहिँ, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

धर्म-वीरता ।—

कोटि विप्र बध लागै जाही ।
आये सरन तजौं नहिं ताही ॥

युद्ध-वीरता ।—

खरदूषण का सदेशा सुनकर राम ने उत्तर दिया ।—

हम छत्री मृगया बन करही ।
तुम्ह से खल मृग खोजत फिरही ॥
रिपु बलवंत देखि नहिँ डरही ।
एक बार कालहु सन लरहीं ॥
जौं न होइ बलु घर फिरि जाहू ।
समर बिमुख मैं हतउँ न काहू ॥

वीर-रस का एक और वर्णन लीजिये । लका पर बानर-सेना की चढाई का प्रसग है ।—

नानायुध सर चाप धर, जातुधान बलबीर ।
कोट कँगूरनि चढि गये, कोटि कोटि रनधीर ॥

कोट कँगूरन्हि सोहहिँ कैसे ।
मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे ॥
बाजहिँ ढोल निसान जुझाऊ ।
सुनि धुनि होहि भटन्ह मन चाऊ ॥
बाजहिँ भेरि नफीरि अपारा ।
सुनि कादर उर जाहिं दरारा ॥
देखि न जाइ कपिन्ह कै ठट्टा ।
अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा ॥
धावहिँ गनहि न अवघट घाटा ।
परवत फोरि करहिँ गहि बाटा ॥

कटकटाहिँ कोटिन भट-गरजहिँ ।
दसन ओंठ काटहिँ अति तरजहि ॥

उत रावन इत राम दोहाई ।
जयति जयति जय परी लड़ाई ॥

(लङ्का-कांड)

दयावीरता ।—

घायल जटायु को गोद में लेकर राम कहते हैं ।—

जल भरि नयन कहहिँ रघुराई ।
तात करम निज तें गति पाई ॥

(अरण्य-कांड)

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नयन सरोज सनेह सलिल सुचि मनहुँ अरघ जल दीन्हों ।
सुनहु लखन खगपतिहि मिले वन मैं पितु मरन न जान्यौं ।
सहि न सक्यो सो कठिन विधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यौ ॥

(गीतावली)

करुण-रस ।—

करुण-रस सब रसों से अधिक और स्थायी प्रभाव उत्पन्न करता है। इसीसे भवभूति ने करुण-रस ही को मुख्य रस माना है, और अन्य सब रसों को उसका भेद कहा है ।—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदा—
द्भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्त्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारा—
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम् ॥

'करुण रस ही एक मुख्य रस है, वही निमित्त-भेद से अनेक विकारों को प्राप्त होता है; जैसे भँवर, बुल्ले और लहर सब जल ही के भिन्न भिन्न रूप हैं।'

तुलसीदास की कविता करुण-रस के वर्णनों से ओत-प्रोत है। करुण-रस तुलसीदास का सिद्ध रस था। उन्होंने जहाँ कहीं अवसर पाया है, करुण-रस की तरंगिणी बहा दी है। रामचरित-मानस के अयोध्या-कांड मे आदि से अन्त तक करुण-रस का समुद्र लहरें मार रहा है। लंका-कांड मे जब लक्ष्मण को शक्ति लगी थी, उस अवसर पर उन्होंने राम के मुख से जो विलाप कराया है, वह पत्थर के कलेजे को भी पिघला देनेवाला है।—

जथा पंख बिनु खग अति दीना।
मनि बिनु फनि करिवर कर हीना॥

अस मम जिवन बंधु बिनु तोही।
जौ जड दैव जिआवइ मोही॥

जइहउँ अवध कवन मुँह लाई।
नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥

बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं।
नारि हानि विशेष छति नाहीं॥

अब अपलोकु सोकु सुत तोरा।
सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥

निज जननी के एक कुमारा।
तात तासु तुम प्रान अधारा॥

सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी।
सब विधि सुखद परमहित जानी॥
उतरु काह दइहउँ तेहि जाई।
उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥
बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन।
स्रवत सलिल राजिव-दल-लोचन॥

(लंका-कांड)

अद्भुत-रस—

भ्रम, विस्मय, रोमाञ्च और गद्गद शरीर हो आना आदि अद्भुत रस की मानसिक क्रियायें हैं। तुलसीदास ने बालकांड में कौशल्या को राम का विराट् रूप दिखलाया है, वह अद्भुत रस का एक सुन्दर उदाहरण है। उसके वर्णन में उन्होंने ऐसे शब्द भी डाल दिये हैं जो अद्भुत-रस की शास्त्रीय व्याख्या में प्रयुक्त होते हैं। देखिये।—

एक बार जननी अन्हवाये।
करि सिँगार पलना पौढ़ाये॥

निजकुल इष्टदेव भगवाना।
पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥

करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा।
आपु गई जहँ पाक बनावा॥

बहुरि मातु तहवाँ चलि आई।
भोजन करत देख सुत जाई॥

गइ जननी सिसुपहिँ भयभीता।
देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥

बहुरि आइ देखा सुत सोई।
हृदय कंप मन धीर न होई॥

इहाँ वहाँ दुइ बालक देखा।
मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा॥

देखि राम जननी अकुलानी।
प्रभु हँसि दीन मधुर-मुसुकानी॥

तनु पुलकित मुख बचन न आवा।
नयन मूँदि चरनन्हि सिर नावा॥

विसमयवंति देखि महतारी
भये बहुरि सिसुरूप खरारी ॥
अस्तुति करि न जाय भयमाना ।
जगत पिता मैं सुत करि जाना ॥

रौद्र-रस—

भौ चढ़ाना, क्रूरता से देखना, ओठ चबाना, ताल ठोकना, ललकारना, डींग मारना, हथियार घुमाना, रोमाञ्च होना और पसीना आना आदि इस रस के लक्षण हैं।

तुलसीदास ने रामचरित-मानस में युद्ध के प्रसंगों पर इस रस का यथार्थ स्वरूप दिखलाया है। सीता के स्वयंवर में जब जनक ने असफल-प्रयत्न राजाओं की भर्त्सना की, तब तेजस्वी लक्ष्मण ने अपना रौद्र-रूप प्रकट किया था। तुलसीदास ने उसका बड़ा ही ओज-पूर्ण वर्णन किया है।—

जनक वचन सुनि सब नरनारी ।
देखि जानकिहिं भये दुखारी ॥
माखे लखन कुटिल भइ भौंहें ।
रदपट फरकत नयन रिसौंहें ॥

× ×

सुनहु भानुकुल पंकज भानू ।
कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू ॥
जौं तुम्हार अनुसासन पावउँ ।
कन्दुक इव ब्रह्मांड उठावउँ ।
काचे घट जिमि डारौं फोरी ।
सकउँ मेरु मूलक इव तोरी ॥

तव प्रताप महिमा भगवाना ।
का बापुरो पिनाक पुराना ॥

× ×

तोरउँ छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ ।
जौं न करउँ प्रभु पद सपथ, पुनि न धरउँ धनु हाथ ॥

(बाल-कांड)

हास्य-रस—

मनुष्य और अन्य जीवधारियों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि मनुष्य हँस सकता है और अन्य जीवधारी हँसना नहीं जानते। मनुष्य के हँसने के अनेक कारण होते हैं। मुख्यकर उसको तब हँसी आती है, जब वह किसी वस्तु को अपनी जानकारी के विपरीत देखता या सुनता है। तुलसीदास ने अपने काव्यों में हास्यरस के बहुत-से मनोहर वर्णन दिये हैं। सभी वर्णन अपने-अपने स्थान पर अद्‌भुत और सुन्दर हैं। यहाँ उदाहरण-स्वरूप कवितावली से एक छंद दिया जाता है।—

विन्ध्य के बासी उदासी तपोव्रत-
भारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतम तीय तरी तुलसी सो
कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे ॥
ह्वैहैं सिला सब चंद्रमुखी
परसे पद मंजुल कंज तिहारे ।
कीन्ही भली रघुनायकजू
करुना करि कानन को पगु धारे ॥

इससे अधिक विन्ध्य-वासी तपोव्रतधारियों का मजाक और क्या उड़ाया जा सकता है! और फिर रामचंद्र ने करुणा भी की, तो किस काम के लिये? यह भी तो समझिये।

वीभत्स रस —

घिन उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं के देखने सेवीभत्स-रस की उत्पत्ति होती है। प्रायः युद्ध में इस रस के वर्णन की आवश्यकता पड़ती है। तुलसीदास ने इस रस के वर्णन में भी बड़ी सफलता प्राप्त की है।—

लोथिन सों लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ
मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं।
सोनित सरित घोर, कुञ्जर करारे भारे
कूल तें समूल बाजि बिटप परत हैं।
सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ
सूरनि उछाह कूर कादर डरत हैं।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात,
काक कंक बालक कोलाहल करत हैं॥

ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे
मूँड के कमंडलु खपर किये कोरि कै।
जोगिंनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी
तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुवा से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिये भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत है हाथ हाथ जोरि कै॥

(कवितावली)

रामचरित-मानस में भी युद्ध के वर्णन में वीभत्स-रस का जीता-जागता चित्र मिलता है।—

रघुपति कोपि बान झरि लाई।
घायल भे निसिचर समुदाई॥

लागत बान बीर चिक्करहीं।
घुरमि घुरमि जहँ तहँ महि परहीं॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर बारी।
सोनित सरि कादर भयकारी॥

कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त्त बहति भयावनी॥
जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गनै।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरङ्ग चर्म कमठ घने॥

बीर परहिँ जनु तीर तरु,
मज्जा बहु बहु फेन।
कादर देखि डरहिँ तहँ,
सुभटन के मन चैन॥

मज्जहिँ भूत पिसाच बेताला।
प्रमथ महा झोटिंग कराला।
काक कङ्क लेइ भुजा उड़ाहीं।
एक ते छीनि एक लेइ खाहीं॥
एक कहहिँ ऐसेउ सौंघाई।
सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥
कहरत भट घायल तट गिरे।
जहँ तहँ मनहुँ अर्ध जल परे॥
खैंचहिँ गीध आँत तट भये।
जनु बनसी खेलहिँ चित दये॥
बहु भट बहहिँ चढ़े खग जाहीं।
जनु नावरि खेलहिँ सरि माहीं॥

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिँ ।
भूत पिसाच बधू नभ नंचहिँ ॥
भट कपाल करताल बजावहिँ ।
चामुंडा नाना बिधि गावहिँ ॥
जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिँ ।
खाहिँ हुआहिँ अघाहिँ दपट्टहिँ ।
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिँ ।
सीस परे महि जय जय बोल्लहिँ ॥

बोल्लहिँ जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं ।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिँ सुभट भटन्ह ढहावही ॥
निसिचर बरूथ बिमर्दि गर्जहिँ भालु कपि दर्पित भये ।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिँ राम सर निकरन्हि हये ॥

(लङ्का-कांड)

वात्सल्य-रस—

वात्सल्य-रस माता-पिता और संतान के बीच का स्नेहानुभव है। अन्य रसों की अपेक्षा इस रस की सीमा यद्यपि संकुचित है, पर यह भी एक स्वतंत्र-रस है और प्रभावोत्पादन में किसी से कम नहीं है।

तुलसीदास के काव्यों में इस रस के अनेक प्रसंग उपस्थित हुये हैं और सब में उनकी प्रतिभा ने अपने अद्भुत चमत्कार दिखलाये हैं।

रामचरित मानस और गीतावली में राम के जन्म से लेकर, जब विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को राजा दशरथ से माँगकर ले गये, तथा जब पिता की आज्ञा से राम ने बनवास के लिये प्रस्थान किया, और फिर चौदह वर्ष बाद जब वे अयोध्या को

वापस आये, उस समय तक कई प्रसंग ऐसे आये है, जिनमें इस रस की पूर्ण जागृति हुई है। उन अवसरों पर तुलसीदास की प्रखर प्रतिभा ने हृदय को हिला देनेवाले ऐसे भाव प्रकट किये है, जो स्नेह-शील माता-पिता को हमेशा आनंद-विह्वल करते रहेगे।

गीतावली मे रामचरितमानस की अपेक्षा वात्सल्य-रस का वर्णन अधिक सरस हुआ है। और 'मानस' में एक बात का वर्णन तो छूट ही गया है कि राम के वन-गमन के पश्चात् चौदह वर्षों तक उनकी माताओं की मानसिक दशा क्या थी? कभी वे अपने पुत्रों और पतोहू को याद भी करती थी, या नहीं? 'मानस' मे भरत और हनुमान की भेट अकारण कराई गई है, वहाँ भी तुलसीदास कौशल्या आदि की दशा का वर्णन करने मे चूक-से गये हैं। गीतावली में वे उन्हे नहीं भूले हैं और उनका जो कुछ वर्णन उन्होंने किया है, वह अनुपम है। उससे अधिक माता के स्वभाव का चित्रण कोई कवि और क्या करेगा!

वात्सल्य-रस के अनेक उदाहरण इस पुस्तक मे पृष्ठ ७२७ से ७४ तक दिये जा चुके हैं। इससे यहाँ फिर से नहीं दिये जा रहे हैं। पाठकों को वहीं देखकर उनका आनन्द अनुभव करना चाहिये।

भयानक-रस—

भयानक-रस भय से उत्पन्न होता है और वह भय का उत्पादक भी होता है। कवितावली मे लंका-दहन के अवसर पर भयानक-रस के बड़े प्रभावशाली कवित्त मिलते है। एक उदाहरण लीजिये।—

हाट बाट कोट ओट अटनि अगार पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्हीं अति आगि है।
आरत पुकारत सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सों तहाँ लोग चले भागि हैं।

लालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं
बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागि है।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
चित्र-हू के कपि सों निसाचर न लागि है॥

लागि लागि आगि भागि भागि चले जहाँ तहाँ
धीय को न माय बाप पूत न सँभारही।
छूटे बार बसन उघारे धूम धुंध अंध,
कहै बारे बूढ़े बारि बारि बार बार ही।
हय हिहिनात भागे जात घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारही।
नाम-लै चिलात बिललात अकुलात अति,
तात तात तौंसियत झौंसियत झारही॥

(कवितावली)

शान्त-रस—

साहित्य-दर्पण मे शान्तरस की निम्नलिखित व्याख्या मिलती है।—

न तत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता,
न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितौ मुनीन्द्रैः
सर्वेषु भावेषु शमप्रधानः॥

'दुःख, सुख, चिन्ता, राग-द्वेष और इच्छा से रहित भाव को शान्त-रस कहते है। शान्तरस मे शम की प्रधानता होती है।'

तुलसीदास के काव्यों में शान्त-रस एक केन्द्रीय रस है। ससार के अनेक झकोरो में पडकर भी तुलसीदास ने शान्ति की

डोर हाथ से नहीं छोडो थी। शान्ति की सीमा में किसी तरह पहुँचना ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। जीवन के अन्तिम भाग मे, जहाँ वे अनेक प्रबल मनोविकारों से लड़-झगड़-कर बचे हुये पहुँचे थे, शान्ति की चौड़ी सड़क पाकर वे उस पर दौड़ने-से लगे थे। विनय-पत्रिका उनके शान्ति साम्राज्य तक पहुँचने के लिये एक राज-मार्ग ही तो है। मानस और विनय-पत्रिका को हम आत्म शान्ति के लिये तुलसीदास के अन्तर्नादों का सग्रह कहे, तो अत्युक्ति न होगी। शान्ति-पद की प्राप्ति के लिये कैसे जीवनादर्श की आवश्यकता है, इसे तुलसीदास ने इस पद मे बहुत स्पष्टता से बतलाया है।—

कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें सन्त सुभाउ गहौंगो।
जथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान सम सीतल मन पर गुन अवगुन न कहौंगो।
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि भक्ति लहौंगो॥
(विनय पत्रिका)

अलङ्कार

तुलसीदास का हृदय सम्पूर्ण हिन्दू-जाति के हृदय से बना था, इसीसे उनके स्वर में समस्त सुसस्कृत हृदय की भाषायें बोल रही हैं, और यही कारण है कि आज वे हिन्दू-जाति के इतने गहनतम प्रान्तों में मौजूद मिलते हैं, जहाँ हमारी कल्पना भी नहीं पहुँच सकती। उत्तर भारत में, खासकर पूर्वी युक्तप्रान

मे, जिस मनुष्य को हम अत्यन्त घने अन्धकार में पड़ा हुआ एक भाग्यहीन प्राणी समझते हो, उसकी भी एकान्त-चिंता के निकट यदि हम खड़े होकर सुनें, तो यह देखकर आश्चर्य-चकित हो जायँगे कि तुलसीदास की कोई न कोई किरन उसके पास भी मौजूद है। यही इस बात का प्रमाण है कि सम्पूर्ण हिन्दू-जाति का हृदय उनकी वाणी मे बोल रहा है।

तुलसीदास ने अपनी कविता को जहाँ अनेक रसों से अनुप्राणित किया है, वहाँ उसे नाना आकार-प्रकार के अलंकारों से खूब सजाया भी है। अलंकार भाषा के भूषण हैं। वे भाषा ही में से चुने जाते हैं और भाषा ही को पहनाये जाते हैं। अतएव सहृदय-जन अपनी-अपनी भाषा के अलकारो को पहचानते हैं और उनकी सुन्दर सजावट पर मुग्ध होते हैं। अलकारो को सुन्दरता से सजानेवाले कवि को उनसे लोक-प्रियता प्राप्त होती है और यही उसका ध्येय भी है।

तुलसीदास के काव्यों मे प्रायः सभी अलंकारो के उदाहरण मिलते हैं। बरवै-रामायण तो अलंकारो के उदाहरणों ही के लिये लिखा गया-सा लगता है। यद्यपि अलंकार-निरूपण के लिये तुलसीदास ने शायद कभी एक पंक्ति भी लिखने का प्रयत्न न किया होगा, पर उनकी तो वाणी ही ऐसी अलंकारमयी होगई थी कि वे जो कुछ सोचते और लिखते थे, सबमे अलंकार अपने आप अपनी-अपनी जगह पर आ बैठते थे। तुलसीदास की आलकारिक वाणी का आनन्द पहले अलकारो के लक्षण समझकर तब उनके उदाहरण पढ़ने से आयेगा, केवल उदाहरण पढ़ने से नहीं।

सभी ग्रथो से अलंकारो के उदाहरण खोज-खोजकर देने में स्थानाभाव से हम असमर्थ हैं। इससे यहाँ केवल रामचरितमानस

से कुछ अलकारों के उदाहरण लेकर दिये जाते हैं ।—

अतद्गुण—

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू ।
मिटहिं न मलिन सुभाउ अभंगू ॥

अतिशयोक्ति—

प्रभु प्रताप बड़वानल भारी ।
सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी ॥
तव रिपु नारि रुदन जलधारा ।
भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा ॥

अत्यंतातिशयोक्ति—

राजन राउर नाम जस,
सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिप मनि,
मन अभिलाष तुम्हार ॥

अत्युक्ति—

सरबस दान दीन्ह सब काहू ।
जेहि पावा राखा नहिं ताहू ॥

अधिक—

बहुत उछाह भवन अति थोरा ।
मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा ॥

अनन्वय—

मिली न कतहुँ हारि हिय मानी ।
इन्ह सम ये उपमा उर आनी ॥

अनुगुण—

मज्जन फल पेखिअ ततकाला ।
काक होहिं पिक बकहु मराला ॥

अनुप्रास—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि ।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥

अनुमान—

तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई ।
बाट परै मोरि नाव उड़ाई ॥

अनुज्ञा—

गामहिं चितव सुरेसू सुजाना ।
गौतम साप परम हित माना ॥

अन्योन्य—

अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयं ।
दुइ दंड भरि ब्रह्माण्ड भीतर काम कृत कौतुक अयं ॥

अपन्हुति—

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू ।
लूक न असनि केतु नहिं राहू ॥
ये किरीट दसकन्धर केरे ।
आवत बालि तनय के प्रेरे ॥

अप्रस्तुत-प्रशसा—

कोउ कह जब बिधि रतिमुख कीन्हा ।
सार भाग ससि कर हरि लीन्हा ॥
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर माहीं ।
तेहि मग देखिय नभ परछाहीं ॥

अर्थान्तरन्यास—

अब सुख सोवत सोच नहिँ,
भीख माँगि भव खाहिँ ।
सहज एकाकिन्ह के भवन,
कबहुँ कि नारि खटाहिँ ॥

अवज्ञा—

सो सुख कर्म धर्म जरि जाऊ।
जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥

असंगति—

तैसहि सुकवि कवित बुध कहहीं।
उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं॥

असंभव—

कहँ कुम्भज कहँ सिंधु अपारा।
सोखेउ विदित सकल संसारा॥

आवृत्ति दीपक—

पुरी विराजत राजत रजनी।
रानी कहहिं विलोकहु सजनी॥

आक्षेप—

राज देन कहि दीन्ह बन,
मोहि न सो दुख लेस।
तुम बिन भरतहि भूपतिहि,
प्रजहि प्रचण्ड कलेस॥

उत्तर—

का वर्षा जब कृषी सुखाने।
समय चूकि पुनि का पछिताने॥

उत्प्रेक्षा—

लता भवन ते प्रगट भये,
तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु,
जलद पटल बिलगाइ॥

उदात्त—

कर जोरे सुर दिसप विनीता।
भृकुटि विलोकत सकल सभीता॥

उन्मीलन—

बय बपु बरन रूप सोइ आली ।
सील सनेह सरिस सम चाली ॥
बेष न सो सखि सीय न संगा ।
आगे अनी चली बहुरंगा ॥

उपमा—

लखन उतर आहुति सरिस,
भृगुवर कोप कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन,
बोले रघुकुल भानु ॥

पूर्णोपमा—

राम लखन सीता सहित,
राजत परन निकेत ।
जिमि बासव बस अमरपुर,
सची जयंत समेत ॥

उपमेयोपमा—

कर कमलन धनु सायक फेरत ।
जिअ की जरनि हरत हँसि हेरत ॥

उल्लास—

सज्जन-सकुल सिन्धु सम कोई ।
देखि पूर बिधु बाढ़हिँ जोई ॥

उल्लेख—

जिनकी रही भावना जैसी ।
प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी ॥

एकावली—

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान , ज्ञान कि होइ बिराग बिनु ।

काकु वक्रोक्ति—

कह कपि धर्मसीलता तोरी ।
हमहुँ सुनी कृत परतिय चोरी ॥
धर्मसीलता तव जग जागी ।
पावा दरस हमहुँ बड भागी ॥

कारक-दीपक—

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े ।
काहु न लखा देख सब ठाढ़े ॥

कारण-माला—

ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग ।
त्याग को भूषन सांतिपद, तुलसी अमल अदाग ॥

(वैराग्य-संदीपिनी)

काव्य-लिंग—

स्याम गौर, किमि कहौं बखानी ।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥

काव्यार्थापत्ति—

जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं ।
कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥

गूढ़ोक्ति—

पुनि आउब इहि बिरियाँ काली ।
अस कहि मन बिहँसी इक आली ॥

तद्गुण—

धूमउ तजै सहज करुआई ।
अगरु प्रसङ्ग सुगन्ध बसाई ॥

तुल्ययोगिता—

कीरति भनिति भूति भलि सोई ।
सुरसरि सम सब कर हित होई ॥

दीपक—

भानु पीठ सेइय उर आगी।
स्वामिहिं सर्व भाव छल त्यागी।

दृष्टान्त—

प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं।
अगिनि धूम गिरि सिर तृन धरहीं॥

निदर्शना—

उपजहिं एक संग जल माहीं।
जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥

निरुक्ति—

जेहि तिरहुति तेहि समय निहारी।
तेहि लघु लाग भुवन दस चारी॥

छेकोक्ति—

सत्य सराहि कहेउ बर देना।
जानेहु माँगि कि लेइ चबेना॥

प्रत्यनीक—

रे खल का मारसि कपि भालू।
मोहिं बिलोकु तोर मैं कालू॥

प्रतिवस्तूपमा—

बरषहिं जलद भूमि नियराये।
जथा नवहिं बुध बिद्या पाये॥

प्रतीप—

नाँघहिं खग अनेक बारीसा।
सूर न होहिं सुनहु ते कीसा॥

प्रतिषेध—

निपटहिं द्विज करि जानेसि मोहीं।
मैं जस बिप्र सुनावउँ तोहीं॥

प्रहर्षण—

चितवत पंथ रहेउँ दिनराती।
अब प्रभु देखि जुडानी छाती॥

प्रमाण—

जापर जाकर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलत न कछु संदेहू॥

पर्याय—

जनक लहेउ सुख सोच बिहाई।
पैरत थके थाह जनु पाई॥

पर्यायोक्ति—

करहिं कूट नारदहिं सुनाई।
नीक दीन विधि सुन्दरताई॥

परिकर—

गूढ कपट प्रिय वचन सुनि,
तीय अधर बुधि रानि।
सुर माया बस बैरिनिहिं,
सुहृद मानि पतियानि॥

परिकरांकुर—

सुनहु विनय मम बिटप असोका।
सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

परिणाम—

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी।

परिवृत्ति—

एकहि बान प्रान हरि लीन्हा।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

परिसख्या—

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ,
नर्तक नृत्य समाज।
जीतिय मनहिँ सुनिय अस,
रामचन्द्र के राज॥

पिहित—

अंगद नाम बालि कर बेटा।
तासों कबहुँ भई ही भेटा॥

पुनरुक्तवदाभास—

जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं।

पूर्वरूप—

खलहु करहिँ भल पाइ सुसंगू।
मिटहिँ न मलिन स्वभाव अभंगू॥
गगन चढै रज पवन प्रसंगा।
कीचहि मिलै नीच जल संगा॥

भ्रान्ति—

जथा गगन घन-पटल निहारी।
झंपेउ भानु कहत अबिचारी॥

भाविक—

भयउ न अहहि न अब होनिहारा।
भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥

माला-दीपक—

जग जपु राम राम जपु जेही॥

मिथ्याध्यवसिति—

कमठ पीठि जामहिँ बहु बारा।
बंध्या सुत बरु काहुहिँ मारा॥

मीलित—

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें।
सरल सपर्ण परहिं नहिं चीन्हें॥

यथा-संख्य—

मनि मानिक मुकुता छवि जैसी।
अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥

यमक—

भव भव विभव पराभव कारिनि।
बिस्व बिमोहनि स्ववस विहारिनि॥

युक्ति—

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि।
निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि॥

रत्नावली—

बहुरि बच्छ कहि लाल कहि,
रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बुलाय लगाइ उर,
हरषि निरखिहौं गात॥

रूपक—

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी।
प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥

ललित—

सुनिअ सुधा देखिअ गरल,
सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक,
मानस सकृत मराल॥

लेश—

मोहिँ दीन्ह सुख सुजस सुराजू ।
कीन्ह कैकई सब कर काजू ।।

वक्रोक्ति—

भरत कि राउर पूत न होहीं ।
आनेहु मोल बेसाहि कि मोहीं ।

व्यतिरेक—

संत हृदय नवनीत समाना ।
कहा कविन पै कहइ न जाना ।।
निज परिताप द्रवै नवनीता ।
पर दुख द्रवहिँ ते सन्त पुनीता ।।

व्याज—

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा ।
जहँ तहँ नाचहिँ परिहरि लाजा ।।

व्याघात—

मिलत एक दारुन दुख देहीं ।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं ।।

व्याजोक्ति—

नाक कान बिनु भगिनि निहारी ।
छमा कीन्ह तुम्ह धरम बिचारी ।।

विकल्प—

की तनु प्रान कि केवल प्राना ।
विधि करतब कछु जाइ न जाना ।।

विकस्वर—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू ।
अपने बस करि राखेउ रामू ।।

विचित्र—

राम कहेउ रिस तजिय मुनीसा ।
कर कुठार आगे यह सीसा ॥

विनोक्ति—

कहहुँ सुभाव न छल मन माही ।
जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥

विभावना—

बूडहिँ आनहिँ बोरहिँ जेई ।
भये उपल बोहित सम तेई ॥

विरोध—

बंदौ मुनि पद कंज,
रामायन जिन निरमयउ ।
सखर सकोमल मंजु,
दोष रहित दूषन-सहित ॥

विवृतोक्ति

बेगि बिलम्बु न करिय नृप,
साजिय सबै समाज ।
सुदिन सुमंगल तबहिँ जब,
राम होहिँ जुवराज ॥

विषय—

कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी ।
लघु कुल तिय करतूति मलीनी ॥
बसहिँ कुदेस कुगाँव कुठामा ।
कहँ यह दरस पुन्य परिनामा ॥

विशेषक—

सोइ सर्बज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता ।
रामचरन जाकर मन राता ॥

विशेषोक्ति—

सकइ उठाइ सरासुर मेरू।
सोउ हिअ हारि गयेउ करि फेरू॥

विषाद—

लिखत सुधाकर लिखिगा राहू।
विधि गति बाम सदा सब काहू॥

विशेष—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन,
मज्जहिँ अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु,
साधु समाज प्रयाग॥

वीप्सा—

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि,
जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपती,
उदधि पयोधि नदीस॥

लोकोक्ति—

आरत कहहिँ बिचारि न काऊ।
सूझ जुआरिहिँ आपन दाऊ॥

श्लेष—

रावन सिर सरोज बनचारी।
चले रघुनाथ सिलीमुख धारी॥

स्मरण—

प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा।
सिय मुख सरिस देखि सुख पावा॥

स्वभावोक्ति—

कोटि विप्र वध लागहि जाहू।
आये सरन तजौं नहिं ताहू॥

सम—

सुनि सनेह साने वचन,
मुनि रघुवरहिं प्रसंस।
राम कस न तुम कहहु अस,
हंस वंस अवतंस॥

समाधि—

अति अपार जे सरितवर,
जे नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिका परम लघु,
बिनु स्रम पारहि जाहिं॥

समासोक्ति—

अरुन उदय अवलोकहु ताता।
पंकज कोक लोक सुखदाता॥

समुच्चय—

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस,
तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पिआइय बारुनी,
कहहु कौन उपचार॥

सहोक्ति—

बल प्रताप बीरता बड़ाई।
नाक पिनाकहिं संग सिधाई॥

सामान्य—

भरत राम एकइ अनुहारी।
सहसा लखि न सकै नर नारी॥

सार—

सब मम प्रिय सब मम उपजाये ।
सबते अधिक मनुज मोहिँ भाये ॥
तिनमहँ द्विज द्विज महँ स्रुतिधारी ।
तिन महँ निगमनीति अनुसारी ॥

सूक्ष्म—

गौतम तिय गति सुरति करि,
नहिँ परसत पद पानि ।
उर बिहँसे रघुबंसमनि,
प्रीति अलौकिक जानि ॥

संदेह—

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ ।
नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥

संभावना—

जौ हठ करहु प्रेम बस बामा ।
तौ तुम दुख पाउब परिनामा ॥

हेतु—

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा ।
सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥

अलंकारों में अनुप्रास और यमक पर तुलसीदास की बड़ी रुचि दिखाई पड़ती है । समान वर्णों से बननेवाले शब्दों को लगातार प्रयोग करने की उनमें उत्कट इच्छा थी । अवश्य ही इससे उनकी वाणी का माधुर्य बढ़ गया है और इस कारण से भी उसको विशेष लोक-प्रियता प्राप्त हुई है ।

अनुप्रास और यमक के कुछ और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं, जिनसे हम अपने महाकवि के भाषा-संबंधी स्वाभाविक शौक का अनुभव कर सकेंगे ।—

जनक सुता तब उर धरि धीरा।
नील नलिन लोयन भरि नीरा॥

'मानस' में अनेक स्थानो पर कवि ने 'लोचन' शब्द को उसके शुद्ध रूप ही में प्रयोग किया है। यहाँ पर 'लोचन' का अपभ्रंश 'लोयन' करके कवि ने 'च' का ठोसपन निकाल दिया है। निश्चय ही कवि पर 'लोयन' के आसपास के कोमल-वर्ण-निर्मित शब्दो का प्रभाव पड़ा हुआ है। कवि की शब्द-प्रयोग-सम्बन्धी ऐसी सहृदयता उसकी रचनाओं में सर्वत्र मिलती है।

एक और उदाहरण लीजिये।—

कङ्कन किङ्किनि नूपूर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥

जैसी वस्तु का वर्णन है, उसीके अनुकूल भाषा भी है। उच्चारण मे नूपुर की ध्वनि का-सा आनन्द मिलता है।

एक चौपाई में अनुप्रास की छटा देखिये।—

जौ पटतरिय तीय महँ सीया।
जग अस जुवति कहाँ कमनीया॥

गिरा मुखर तनु अरध भवानी।
रति अति दुखित अतनु पति जानी॥

इन पक्तियों को ग़ौर से पढ़िये तो मालूम होगा कि इनमें एक-एक वर्ण कई-कई बार आये हुये मिलेगे और अंतिम पक्ति में 'तकार' की बहार तो देखने ही योग्य है। कवि ने अपनी भाषा को सुन्दर बनाने में कितना प्रयास किया है।

ह्रस्व वर्णों की प्रचुरतावाला एक दोहा लीजिये।—

खग मृग परिजन नगर वन,
बलकल बिमल दुकूल।

नाथ साथ सुर सदन सम,
परनसाल सुखमूल ।
(मानस)

इस दोहे मे ह्रस्व वर्ण कैसी सुदरता से पक्तियो मे सजाकर बैठा दिये गये है । न, ल और स वर्णो का बार-बार पुनरावर्त्तन कैसा मधुर जान पड़ता है !

सकार की बहार देखिये ।—

सासु ससुर गुर सजन सहाई।
सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ।।
(मानस)

ककार की शोभा देखिये ।—

कुस कंटक काँकरी कुराई।
कटुक कठोर कुबस्तु दुराई ॥
(मानस)

बकार से उत्पन्न लालित्य पर गौर कीजिये ।—

बादि बसन बिनु भूषन भारू।
बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ।।
(मानस)

गीतावली से एक नमूना लीजिये ।—

सरित सरनि सरसीरुह संकुल सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूँजत बिहँग मंजु गुञ्जत अलि जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥

पहली पक्ति मे 'स' का सौदर्य और दूसरी पक्ति मे भौरो के गुञ्जार को व्यक्त करनेवाले सानुनासिक वर्णो का सरस समन्वय कैसा श्रुति-मधुर है ।

अब ज़रा बातुल और मातुल के साथ 'का तुलसी' का जोड़ देखिये।—

बातुल मातुल की न सुनी सिख
का तुलसी कपि लङ्क न जारी॥
(कवितावली)

'बकार' के बाहुल्य का एक उदाहरण और लीजिये।—

बैरि बृन्द बिधवा बनितनि को
देखिबो बारि बिलोचन बहिबो॥
(गीतावली)

उपमायें

मनुष्य एक अनुकरण-प्रिय प्राणी है। उपमाओं से उसकी अनुकरण-शीलता की प्यास बुझती है, इससे उपमाओं का अस्तित्व तभी से है, जब से पृथ्वी पर मनुष्य है। उपमाओं की सहायता से किसी भाव को स्पष्ट करने में कवि को बड़ी सुविधा होती है। उपमाओं से कवि की ज्ञान-सीमा और उसकी सूक्ष्म-निरीक्षण-शक्ति का भी पता लगता है और कविता-गत भाव का प्रभाव भी बढ़ जाता है। उपमा कविता-देवी का सबसे अधिक मूल्यवान् भूषण है।

तुलसीदास ने अपनी कविता को अनेक मरम उपमाओं से अलङ्कृत किया है। उन्होंने चुन-चुनकर ऐसी उपमायें दी हैं, जो उस समाज के, जिसमें उन्होंने जीवन पाया और जिसपर उन्होंने जीवन निछावर कर दिया, अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् का परदा उठा देती हैं। भाषा तो उनकी सरल और सुरुचिपूर्ण है ही, भावों को व्यक्त करने की उनकी शैली भी ऐसी परिस्कृत

है कि वे उनके द्वारा अपने पाठकों को अत्यन्त सरलता से एक दुनिया से उठाकर दूसरी दुनिया में पहुँचा देते हैं। मार्मिक उपमायें इस काम में उनको बहुत सहारा देती हैं।

उपमा भी एक अलंकार है, और इस पुस्तक में अन्य अलंकारों के उदाहरणों में इसका नाम आ भी चुका है, पर हम इसे एक स्वतन्त्र शीर्षक भी देना चाहते हैं, जिससे हम अपने महदाकाङ्क्षी मेधावी कवि को अधिक निकट में और अधिक यथार्थरूप में देख सकें।

तुलसीदास के सब ग्रन्थों में प्रयुक्त उपमायें बहुत हैं। हमने उनमें से थोड़ी-सी चुन ली हैं, जो यहाँ दी जाती हैं। उनकी उपमाओं में उत्प्रेक्षाओं ही की संख्या अधिक है। काव्य-रसिक सज्जन वर्ण्य-विषय के साथ उपमाओं की संगति मिलाकर अधिक आनन्द ले सकते हैं।—

रामलला-नहछू।— १

दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो।
कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो॥

वैराग्य-सदीपिनी।— २

फिरी दोहाई राम की,
गे कामादिक भाजि।
तुलसी ज्यों रवि के उदय,
तुरत जात तम लाजि॥

बरवै-रामायण।— ३

कोउ कह नर नारायन हरिहर कोउ।
कोउ कह बिहरत बन मधु मनसिज दोउ॥

पार्वती-मगल ।— ४

पितु मातु प्रिय परिवार हरपहिँ, निरखि पालहिँ लालहीं ।
सित पाख बाढति चंद्रिका जनु चन्द्रभूषन भालहीं ॥

५

बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ ।
अचल सुता मन अचल बयारि कि डोलइ ॥

६

साँच सनेह साँचि रुचि जो हठि फेरइ ।
सावन सरित सिंधु रुख सूप सों घेरइ ॥

७

गौरी नैहर केहि बिधि कहहुँ बखानिअ ।
जनु ऋतुराज मनोज राज रजधानिअ ॥

जानकी-मगल ।— ८

दुहुँ दिसि राजकुमार बिराजत मुनिबर ।
नील पीत पाथोज बीच जनु दिनकर ॥

९

लागि झरोखन्ह झाँकहिँ भूपति भामिनि ।
कहत बचन रद लसहिँ दमक जनु दामिनि ॥

१०

रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ ।
नील कमल सर स्रेनि मयन जनु डारइ ॥

११

प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिँ ।
जनु हिरदय गुन ग्राम थूनि थिर रोपहिँ ।

१२

राम सीय वय समौ सुभाय सुहावन ।
नृप जोबन छवि पुरइ चहत जनु आवन ।।

१३

नहिँ सगुन पायेउ रहे सिसु करि एक धनु देखन गये ।
टकटोरि कपि ज्यों नारियरु सिर नाइ सब बैठत भये ।।
इक करहिँ दाप, न चाप सज्जन बचन जिमि टारे टरै ।
नृप नहुप ज्यों सब के बिलोकत बुद्धि बल बरबस हरै ।।

१४

सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहि ।
भेद कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहि ।।

१५

होति बिरह सर मगन देखि रघुनाथहि ।
फरकि बाम भुज नयन देहिँ जनु हाथहि ।।

१६

प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ ।
जनु मृगराज किसोर महागज गंजेउ ।।

१७

हित मुदित अनहित रुदित मुख, छवि कहत कवि धनु जाग की ।
जनु मोर चक चकोर कैरव सघन कमल तड़ाग की ।।

१८

सीय सनेह सकुच बस पिय तन हेरइ ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ ।।

१९

लसत ललित कर कमल माल पहिरावत ।
कामफंद जनु चन्दहिँ वनज फँदावत ।।

२०

प्रभुहिँ माल पहिराइ जानकिहिँ लै चली ।
सखी मनहुँ विधु उदय मुदित कैरव कली ॥

२१

मंगल आरति साजि वरहिँ परिछन चलीं ।
जनु विगसी रवि उदय कनक पंकज कली ॥

२२

नहिँ तनु सम्हारहिँ छवि निहारहिँ, निमिप रिपु जनु रन जये ।
चकवै लोचन रामरूप सुराज सुख भोगी भये ॥

दोहावली ।—

२३

जथा भूमि सब बीज मे,
नखत निवास अकास ।
रामनाम सब धरम मे,
जानत तुलसीदास ॥

२४

राम दूरि माया बढति,
घटति जानि मन माँह ।
भूरि होति रवि दूरि लखि,
सिर पर पग तर छाँह ॥

२५

हम हमार आचार बड,
भूरि भार धरि सीस ।
हठि सठ परबस परत जिमि,
कीर कोस-कृमि कीस ॥

२६

सधन चोर मग मुदित मन,
धनी गही ज्यों फेंट ।

त्यों सुग्रीव विभीषनहिं
भई भरत की भेंट ॥

२७

परमारथ पहिचानि मति,
लसति विषय लपटानि ।
निकसि चिता तें अधजरति,
मानहुँ सती परानि ॥

कवितावली ।— २८

तुलसी मुदित मन जनक नगर जन,
झाँकतीं झरोखे लागी सोभा रानी पावतीं ।
मनहुँ चकोरी चारु बैठीं निज-निज नीड़,
चन्द की किरन पीवे पलकैं न लावतीं ॥

२९

बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि, भट
भारी-भारी रावरे के चाउर से काँडिगो ।

३०

सोनित छींटि छटानि जटे,
तुलसी प्रभु सोहैं महाछवि छूटी ।
मानो मरकत सैल बिसाल मे,
फैलि चली बर बीरबहूटी ॥

गीतावली ।— ३१

आलबाल कल कौसिला दल बरन सोहायो ।
कंद सकल आनंद को जनु अंकुर आयो ॥

३२

बाल-केलि बात बस झलकि झलमलति
सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है ।

३३

मूलमूल सुरवीथि बेलि तम तोम सुदल अधिकाई।
नखत-सुमन नभ-विटप बौंडि मानो छपा छिटकि छवि छाई॥

३४

लोयन नील सरोज से, भ्रूपर मसि-बिंदु बिराज।
जनु बिधु-मुख-छबि-अमिय को रच्छक राखे रसराज॥

३५

भाल बिसाल ललित लटकन वर
बाल-दसा के चिकुर सोहाये।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि,
ससिहि मिलन तम के गन आये॥

३६

उपमा एक अभूत भई तब
जब जननी पटपीत ओढ़ाये।
नील जलद पर उडुगन निरखत
तजि सुभाव मनों तड़ित छिपाये॥

३७

पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली
बालक दामिनि ओढ़ी मानों बारे बारिधर॥

३८

तुलसिदास बहु-बास-बिबस अलि,
गुञ्जत सुछवि न जाति बखानी।
मनहुँ सकल स्रुति ऋचा मधुप ह्वै,
बिसद सुजस बरनत बर बानी॥

३९

अरुन उदित बिगत सर्वरी ससांक किरनिहीन
दीन दीपजोति मलिन दुति, समूह तारे।

मनहुँ ज्ञान घन प्रकास, बीते सब भव-बिलास
आसत्रास तिमिर तोष तरनि तेज जारे ॥

४०

चलत पद प्रतिबिंब राजत अजिर सुखमा पुंज ।
प्रेमबस प्रति चरन महि मानो देति आसन कंज ॥

४१

नखसिख सुन्दरता अवलोकत
कह्यो न-परत सुख होत जितौ री।
साँवर रूप सुधा भरिबे कहँ
नयन कमल कल कलस रितौ री ॥

४२

आपुही बिचारिये निहारिये सभा की गति,
बेद मरजाद मानो हेतुवाद हई है।

४३

तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे,
सूने परे सून से मनो मिटाये आँक के ॥

४४

सुनि रघुबीर की बचन रचना की रीति,
भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को ॥

४५

रामबाहु-बिटप बिसाल बौंडी देखियत,
जनक-मनोरथ कलपबेलि फरी है ॥

४६

पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो ।
करम-चोर नृप-पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो ॥

४७

जुगुल बीच सुकुमार नारि इक, राजति बिनहि सिंगार ।
इंद्रनील, हाटक, मुकुतामनि, जनु पहिरे महि हार ॥

४८

असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यौ,
बिपिन-गवनु भले भूखे को सुनाजु भो ।

४९

तुलसी यों कहि चले भोरहीं, लोग बिकल सँग लागे ।
जनु बन जरत देखि दारुन दव निकसि बिहँग मृग भागे ॥

५०

बनबासी, पुरलोग, महामुनि किए हैं काठ के से कोरि ।
दै दै स्रवन सुनिबे को जहँ तहँ रहे प्रेम मन बोरि ॥

५१

स्याम सरीर रुचिर स्रमसीकर,
सोभित-कन बिच बीच मनोहर ।
जनु खद्योत-निकर हरिहित-गन
भ्राजत मरकत-सैल-सिखर पर ॥

५२

घायल बीर बिराजत चहुँ दिसि,
हरषित सकल रिच्छ अरु बनचर ।
कुसुमित किंसुक-तरु-समूह महँ
तरुन तमाल बिसाल बिटप बर ॥

५३

सुखमा सुख सील अयन नयन निरखि निरखि नील,
कुञ्चित कच, कुण्डल कल नासिक चित पोहैं ।
मनहुँ इंदुबिम्ब मध्य कञ्ज मीन खञ्जन लखि
मधुप मकर कीर आये तकि तकि निज गौं हैं ॥

५४

चारु चामर व्यजन छत्र मनिगन बिपुल
दाम मुकुतावली जोति जगमग रही।
मनहुँ राकेस सँग हंस उडुगन बरहि
मिलन आये हृदय जानि निज नाथही॥

५५

मुकुट सुन्दर सिरसि, भालवर तिलक भ्रू
कुटिल कच कुंडलनि परम आभा लही।
मनहुँ हर-डर जुगल मारध्वज के मकर
लागि स्रवननि करत मेरु की बतकही॥

५६

अरुन-राजीव-दल-नयन करुना-अयन,
बदन सुषमा सदन, हास त्रय-तापही।
विविध कङ्कनहार, उरसि गजमनि-माल
मनहुँ बग-पाँति जुग मिलि चली जलद ही॥

५७

सुन्दर नासा कपोल चिबुक अधर अरुन बोल
मधुर दसन राजत जब चितवत मुख मोरी।
कंज-कोस भीतर जनु कंजराग-सिखर निकर,
रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ित-रंग बोरी॥

५८

कंबु कंठ, उर बिसाल तुलसिका नवीन माल,
मधुकर बर बास बिबस उपमा सुनु सो री।
जनु कलिंदजा सुनील सैल तें धसी समीप,
कंद-वृन्द बरषत छबि मधुर घोरि घोरी॥

५९

प्रातकाल रघुबीर-बदन-छबि चितै चतुर चित मेरे।
होहिं बिबेक-बिलोचन निर्मल सुफल सुसीतल तेरे॥
भाल बिसाल बिकट भ्रुकुटी बिच तिलक-रेख रुचि राजै।
मनहुँ मदन तम तकि मरकत धनु जुगुल कनक सर साजै॥

६०

रुचिर पलक-लोचन जुग तारक स्याम अरुन सित कोए।
जनु अलि नलिन-कोस महँ बंधुक सुमन सेज सजि सोए॥

६१

बिलुलित ललित कपोलनि पर कच मेचक कुटिल सोहाए।
मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलि बिपुल सकौतुक आए॥

६२

सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिबि भुज मूले।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले॥

६३

अधर अरुन तर दसन-पाँति वर, मधुर मनोहर हासा।
मनहुँ सोन सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत बासा॥

६४

सकल सुचिन्ह सुजन सुखदायक ऊरध रेख बिसेष बिराजति।
मनहुँ भानु-मंडलहि सँवारत धरयो सूत बिधि-सुत बिचित्र मति॥

६५

निरखि बाल-बिनोद तुलसी जात बासर बीति।
पिय-चरित सिय-चित चितेरो लिखत नित हित-भीति॥

६६

दुखी सिय पिय बिरह तुलसी सुखी सुत सुख पाइ।
आँच पय उफनात सीचत सलिल ज्यों सकुचाइ॥

श्रीकृष्ण-गीतावली ।— ६७

देखु सखी हरिबदन इंदु पर ।
चिक्कन कुटिल अलक-अवली-छबि,
कहि न जाइ सोभा अनूप-बर ॥
बाल-भुअंगिनि-निकर मनहुँ मिलि
रहीं घेरि रस जानि सुधाकर ।

६८

अरुन बनेज-लोचन, कपोल सुभ,
स्रुति मंडित कुण्डल अति सुन्दर ।
मनहुँ सिंधु निज सुतहि मनावन
पठए जुगुल बसीठि बारिचर ॥

६९

आजु उनीदे आए मुरारी ।
आलसवंत सुभग लोचन सखि
छिन मूँदत छिन देत उघारी ॥
मनहुँ इन्दु पर खञ्जरीट दोउ
कछुक अरुन विधि रचे सँवारी ॥

७०

कुटिल अलक जनु मार फंद कर
गहे सजग ह्वै रह्यो सँभारी ॥
मनहुँ उडन चाहत अति चंचल
पलक पङ्ख छिन देत पसारी ॥

७१

दारु सरीर, कीट पहिले सुख,
सुमिरि सुमिरि बासर निसि घुनिये ॥

विनय-पत्रिका—— ७२

मन माधव को नेकु निहारहि।
सुनु, सठ सदा रङ्क के धन ज्यों छन छन प्रभुहि सँभारहि॥

७३

कुटिल करम लै जाय मोहि जहँ जहँ अपनी वरिआई।
तहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँडिये कमठ अंड की नाईं॥

७४

वेनु करील, श्रीखंड वसन्तहि दूषन मृषा लगावै।
सार-रहित, हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहु कहँ पावै॥

७५

वेद पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकल जग व्यापी।
भेदत नहिं श्रीखंड वेनु इव सारहीन मन पापी॥

७६

सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें वरिआईं।
त्यागव गहव उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं॥

७७

असन वसन वसु वस्तु विविध विधि सब मनि महँ रह जैसे।
सरग नरक चर अचर लोक बहु वसत मध्य मन तैसे॥

७८

मानत नाहिं निगम अनुसासन त्रास न काहू केरो।
भूल्यो सूल कर्म कोल्हुन तिल ज्यों बहु वारनि पेरो॥

७९

कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस, सालन साग अलोने॥

८०

कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए,
जैसे तम नासिवे को चित्र के तरनि॥

८१

देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किए बिचार।
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार॥

८२

ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए अरु चित न रहै अनुहारि।
त्यों सेवतहुँ न आपने ये, मातु पिता सुत नारि॥

८३

दै दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक, तनु सेत॥

८४

सदा मलीन पंथ के जल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने।

८५

ज्यों कुरङ्ग निज अङ्ग रुचिर मद
अति मतिहीन मरम नहि पायो।
खोजत गिरि, तरु, लता, भूमि, बिल
परम सुगन्ध कहाँ धौं आयो॥

-रामचरित मानस, बाल-काड—

८६

बरनत बरन प्रीति बिलगाती।
ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥

८७

समरथ कहँ नहिँ दोष गोसाईं।
रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

८८

तड़ित बिनिन्दक पीतपट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेत जनु, जमुन भँवर छबि छीनि॥

८९

फिरत विपिन नृप दीख बराहू।
जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं।
मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं॥

९०

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती।
प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी।
तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी॥

९१

अगर धूप जनु बहु अँधियारी।
उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥

९२

मन्दिर मनि समूह जनु तारा।
नृप गृह कलस सो इन्दु उदारा॥

९३

हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा।
सूचत किरन मनोहर हासा॥

९४

अरुन चरन पंकज नख जोती।
कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥

९५

लता भवन तें प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु युग विमल विधु, जलद पटल बिलगाइ॥

९६

जन्म सिंधु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द बापुरो रंक॥

९७

अरुन उदय सकुचे कुमुद, उडुगन जोति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन॥

९८

प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे।
जनु राकेस उदय भये तारे॥

९९

डगइ न सम्भु सरासन कैसे।
कामी बचन सती मन जैसे॥

१००

सब नृप भये जोग उपहाँसी।
जैसे बिनु बिराग संन्यासी॥

१०१

सो धनु राजकुँवर कर देहीं।
बाल मराल कि मन्दर लेहीं॥

१०२

विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा।
सिरिस सुमन कन बेधिय हीरा॥

१०३

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु मण्डल डोल॥

१०४

लोचन जल रह लोचन कोना।
जैसे परम कृपिन कर सोना॥

१०५

सियहिं बिलोकि तकेउ धनु कैसे।
चितव गरुड़ लघु ब्यालहिं जैसे॥

१०६

सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी।
सूखत धान परा जनु पानी॥

१०७

जनक लहेउ सुख सोच बिहाई।
पैरत थके थाह जनु पाई॥

१०८

हरषि परस्पर मिलन हित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनन्द समुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल॥

१०९

श्रीहत भये भूप धनु टूटे।
जैसे दिवस दीप छबि छूटे॥

११०

सीय सुखहिं बरनिय केहि भाँती।
जनु चातकी पाव जल स्वाती॥

१११

रामहिं लषन बिलोकत कैसे।
ससिहि चकोर किसोरक जैसे॥

११२

सखिन मध्य सिय सोहति कैसी।
छबिगन मध्य महा छबि जैसी॥

११३

जाइ समीप राम छबि देखी।
रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी॥

११४

सुनत जुगल कर माल उठाई।
प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥

सोहत जनु जुग जलज सनाला ।
ससिहि सभीत देत जयमाला ॥

११५

बैनतेय बलि जिमि चह कागू ।
जिमि सस चहइ नागअरि भागू ॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही ।
सब सम्पदा चहै सिव द्रोही ॥
लोभी लोलुप कीरति चहई ।
अकलंकता कि कामी लहई ॥
हरिपद बिमुख परम गति चाहा ।
तस तुम्हार लालच नरनाहा ॥

११६

मन मलीन तनु सुन्दर कैसे ।
बिष रस भरा कनक घट जैसे ॥

११७

राम सीय सुन्दर परिछाहीं ।
जगमगाति मनि खंभन माहीं ॥
मनहुँ मदन रति धरि बहुरूपा ।
देखत राम बिबाह अनूपा ।
दरस लालसा सकुच न थोरी ।
प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी ॥

११८

अरुन पराग जलजु भरि नीके ।
ससिहि भूप अहि लोभ अमीके ॥

११९

मरनसील जिमि पाव पियूषा ।
सुरतरु लहइ जनम कर भूखा ॥

पाव नारकी हरिपद जैसे ।
इन कर दरसन हम कहँु तैसे ॥

१२०

तिन्ह कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे ।
देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे ॥

१२१

अस कहि रही चरन गहि रानी ।
प्रेम पंक जनु गिरा समानी ॥

१२२

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं ।
यद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख सम्पति बिनहिं बुलाये ।
धर्म सील पहँ जाहिं सुहाये ॥

१२३

सत्य गवन सुनि सब बिलखाने ।
मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने ॥

१२४

धूप धूम नभ मेचक भयऊ ।
सावन घन घमंड जनु ठयऊ ॥

१२५

सुरतरु सुमन माल सुर बर्षहिं ।
मनहुं बलाक अवलि मन कर्षहिं ॥

१२६

मंजुल मनिमय बंदनवारे ।
मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे ॥

१२७

प्रगटहि दुरहि अटन पर भामिनि ।
चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि ॥

१२८

दुन्दुभि धुनि घन गर्जनि घोरा ।
जाचक चातक दादुर मोरा ॥

१२९

पावा परम तत्व जनु जोगी ।
अमृत लहेउ जनु संतत रोगी ॥

१३०

जनम रंक जनु पारस पावा ।
अंधहिं लोचन लाभ सुहावा ॥

१३१

मूक बदन जस सारद छाई ।
मानहुँ समर सूर जय पाई ॥

१३२

सो मैं कहउँ कवन बिधि बरनी ।
भूमिनाग सिर धरइ कि धरनी ॥

१३३

नीदहु बदन सोह सुठि लोना ।
मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना ॥

१३४

सुन्दरि बधुन्ह सासु लेइ सोई ।
फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई ॥

१३५

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी ।
अभिमत बिरव परेउ जनु पानी ॥

१३६

नृपहिं मोद सुनि सचिव सुभाषा ।
बढ़त बौंड जनु लही सुसाखा ॥

१३७

रामहिं बंधु सोच दिन राती ।
अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती ॥

१३८

एहि अवसर मंगलु परम,
सुनि बिहँसेउ रनिवासु ।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु,
बारिधि बीचि बिलासु ॥

१३६

हरषि हृदय दसरथ पुर आई ।
जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई ॥

१४०

देखि लागि मधु कुटिल किराती ।
जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती ॥

१४१

सादर पुनि पुनि पूछति ओही ।
सबरी गान मृगी जनु मोही ॥

१४२

कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू ।
फिरि न नवइ जिमि उकठ कुकाठू ॥

१४३

फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली ।
बकिहि सराहइ मानि मराली ॥

१४४

लखइ न रानि निकट दुख कैसे।
चरइ हरित तृन बलि पसु जैसे॥

१४५

सुनत बात मृदु अन्त कठोरी।
देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥

१४६

दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू।
जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥

१४७

ऐसेउ पीर बिहँसि तेइ गोई।
चोर नारि जिमि प्रगट न रोई॥

१४८

सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू।
ससिकर छुवत बिकल जिमि कोकू॥

१४९

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा।
जनु सचान बन झपटेउ लावा॥

१५०

बिबरन भयउ निपट नरपालू।
दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥

१५१

माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन।
तनु धरि सोचु लागु जनु सोचन॥

१५२

मोर मनोरथ सुरतरु फूला।
फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥

१५३

कवने अवसर का भयेउ,
गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि,
जतिहि अविद्या नास॥

१५४

अति कटु बचन कहति कैकेयी।
मानहुँ लोन जरे पर देई॥

१५५

आगे दीखि जरति रिसि भारी।
मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥

१५६

सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई।
मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥

१५७

व्याकुल राउ सिथिल सब गाता।
करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥

१५८

कंठ सूख मुख आव न बानी।
जनु पाठीन दीन बिनु पानी॥

१५९

पुनि कह कटु कठोरु कैकेई।
मनहुँ घाय महँ माहुर देई॥

१६०

राम राम रटि बिकल भुआलू।
जिमि बिनु पंख बिहङ्ग बेहालू॥

अयोध्या-कांड* ।—

१६१

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ ।
मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ ॥

१६२

मंगल सकल सोहाहिँ न कैसे ।
सहगामिनिहिँ बिभूषन जैसे ॥

१६३

जाइ दीख रघुबंसमनि,
नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहिँ,
मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥

१६४

जीभ कमान बचन सर नाना ।
मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना ॥
जनु कठोरपनु धरे सरीरू ।
सिखइ धनुष बिद्या बर बीरू ॥

१६५

सहज सरल रघुबर बचन,
कुमति कुटिल करि जान ।
चलइ जोंक जिमि बक्र गति,
जद्यपि सलिल समान ॥

१६६

लागहिं कुमुखि बचन सुभ कैसे ।
मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥

१६७

रामहि मातु बचन सब भाये ।
जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाये ॥

---

*अयोध्या-कांड की उपमाओं का प्रारंभ संख्या १२९ से हुआ है।

१६८

लिये सनेह विकल उर लाई।
गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥

१६६

अस मन गुनइ राउ नहि बोला।
पीपर पात सरिस मन डोला॥

१७०

नगर व्यापि गइ बात सुतीछी।
छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

१७१

सुनि भये विकल सकल नर नारी।
बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥

१७२

एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ।
छाइ भवन पर पावक धरेऊ॥

१७३

निज कर नयन काढि चह दीखा।
डारि सुधा बिष चाहत चीखा॥

१७४

पालव बैठि पेड एइ काटा।
सुख महँ सोक ठाट धरि ठाटा।

१७५

सहमि सूखि सुनि सीतल बानी।
जिमि जवास पर पावस पानी॥

१७६

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू।
मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥

१७७

नयन सजल तनु थर थर काँपी।
माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥

१७८

जिमि भानु बिनु दिन प्रान बिनु तनु
चंदु बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु
समुझि धौं जिय भामिनी॥

१७९

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी।
मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥

१८०

बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी।
जनु जलचर गन सूखत पानी॥

१८१

धर्म सनेह उभय मति घेरी।
भइ गति साँप छुछूँदरि केरी॥

१८२

सुरसरि सुभग बनज बन चारी।
डाबरि जोग कि हंस कुमारी॥

१८३

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली।
जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥

१८४

नव रसाल बन बिहरनसीला।
सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥

१८५
सियरे बदन सूखि गये कैसे।
परसत तुहिन तामरस जैसे॥

१८६
हरपित हृदय मातु पहिँ आये।
मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाये॥

१८७
गई सहमि सुनि वचन कठोरा।
मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा॥

१८८
मातु चरन सिरु नाइ,
चले तुरत सङ्कित हृदय।
वागुर विपम तोराइ,
मनहुँ भाग मृगु भागवस॥

१८९
तन कृस मनु दुखु बदन मलीने।
विकल मनहुँ माखी मधु छीने॥

१९०
कर मीजहि सिर धुनि पछिताही।
जनु विनु पङ्ख बिहँग अकुलाही॥

१९१
सिख सीतल हित मधुर मृदु
सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद्र चंदनि लगत,
जनु चकई अकुलानि।

१९२

मनहुँ बारिनिधि बूड जहाजू।
भयउ बिकल बड बनिक समाजू॥

१९३

राम दरस हित नेम ब्रत,
लगे करन नरनारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल,
दीन बिहीन तमारि॥

१९४

राम लषन सिय पद सिर नाई।
फिरेउ बनिक जिमि मूरु गँवाई॥

१९५

राम सप्रेम पुलकि उर लावा।
परम रंक जनु पारस पावा॥

१९६

मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ।
मिलत धरे तनु कह सब कोऊ॥

१९७

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी।
लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥

१९८

थके नारि नर प्रेम पियासे।
मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे॥

१९९

भई मुदित सब ग्राम बधूटी।
रंकन्ह राय रासि जनु लूटी॥

२००

मधुर वचन कहि कहि परितोषी।
जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी॥

२०१

मिटा मोदु मन भये मलीने।
बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने॥

२०२

नारि सनेह बिकल बस होंहीं।
चकई साँझ समय जनु सोहीं॥

२०३

उभय बीच सिय सोहति कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

२०४

बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई।
जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥

२०५

उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही।
जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥

२०६

यह सुधि कोल किरातन पाई।
हरषे जनु नव निधि घर आई॥

२०७

कन्द मूल फल भरि भरि दोना।
चले रंक जनु लूटन सोना॥

२०८

वेद बचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्हि के सुनत, जिमि पितु बालक बैन॥

२०९

सो मै बरनि कहौं बिधि केही।
डाबर कमठ कि मन्दर लेही॥

२१०

छिनु छिनु प्रिय विधु बदन निहारी।
प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥

२११

नाह नेहु नित बढत बिलोकी।
हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥

२१२

राम लषन सीता सहित, सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर, सची जयत समेत॥

२१३

जोगवहि प्रभु सिय लषनहि कैसे।
पलक बिलोचन गोलक जैसे॥

२१४

सेवहि लषन सीय रघुबीरहि।
जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥

२१५

राम लखन सिय पद सिरु नाई।
फिरेउ बनिक जिमि मूरु गँवाई॥

२१६

तरफराहि मग चलहिं न घोरे।
बन-मृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥

२१७

मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई।
मनहुँ कृपिन धनरासि गँवाई॥

२१८

बिरद बाँधि वर वीर कहाई।
चलेउ समर जनु सुभट पराई॥

२१९

हृदय न बिदरेउ पङ्क जिमि, बिछुरत प्रियतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन विधि, यह जातना सरीर॥

२२०

रथ पहिचानि विकल लखि घोरे।
गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥

२२१

सचिव आगमन सुनत सब, विकल भयउ रनिवास।
भवन भयङ्कर लागु तेहि, मानहुँ प्रेत निवास॥

२२२

भयउ कोलाहल नगर अति, सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहँग बन परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर॥

२२३

इन्द्री सकल बिकल भई भारी।
जनु सर सरसिज बन बिनु वारी॥

२२४

प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु, चितयेउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचेउ सीतल वारि॥

२२५

भरत दुखित परिवारु निहारा।
मानहुँ तुहिन बनज बन मारा॥

२२६

कैकेयी हरषित येहि भाँती।
मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥

२२७

सुनि सुत बचन कहति कैकेयी ।
मरमु पाँछि जनु माहुर देई ॥

२२८

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति ।
मनहुँ जरे पर लोन लगावति ॥

२२९

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू ।
पाके छत जनु लाग अँगारू ॥

२३०

मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भारु ।
कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुषारु ॥

२३१

कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवास ।
व्याकुल बिलपत राज गृह, मानहुँ सोक निवास ॥

२३२

लोग बियोग बिषम बिष दागे ।
मंत्र सबीज सुनत जनु जागे ॥

२३३

भा सबके मन मोद न थोरा ।
जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ॥

२३४

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा ।
रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥

२३५

तात गलानि करहु जिय जाये ।
डरहु दरिद्रहि पारस पाये ॥

२३६

का आचरज भरत अस करहीं।
नहिं विष बेलि अमिय फल फरहीं॥

२३७

भरत दसा तेहि अवसर कैसी।
जल प्रवाह जल अलि गति जैसी॥

२३८

झलका झलकहि पायन्ह कैसे।
पंकज कोस ओस कन जैसे॥

२३९

राम वास वन सम्पति भ्राजा।
सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥

२४०

अस अनन्दु अचरज प्रति ग्रामा।
जनु मरु भूमि कलपतरु जामा॥

२४१

भरत दरस देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंहल बासिन्ह भयेउ, विधि बस सुलभ प्रयागु॥

२४२

भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
कविहि अगम जिमि ब्रह्मसुख, अहमम मलिन जनेषु॥

२४३

अलिगन गावत नाचत मोरा।
जनु सुराज मङ्गल चहुँ ओरा॥

२४४

राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेम।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम॥

२४५

मानहुँ तिमिर अरुन मय रासी।
बिरची बिधि सकेलि सुखमा सी॥

२४६

हरषहिं निरखि राम पद अङ्का।
मानहुँ पारस पायउ रङ्का॥

२४७

करत प्रबेस मिटेउ दुख दावा।
जनु जोगिहि परमारथ पावा॥

२४८

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा।
जनु मुनि बेस कीन्ह रति कामा॥

२४९

लसत मंजु मुनि मडली, मध्य सीय रघुनन्द।
ज्ञान सभा जनु तन धरे, भगति सच्चिदानन्द॥

२५०

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं।
भूतल परेउ लकुट की नाईं॥

२५१

बंधु सनेह सरस एहि ओरा।
इत साहिब सेवा बर जोरा॥

२५२

रहे राखि सेवा पर भारू।
चढी चंग जनु खैंच खेलारू॥

२५३

सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती।
बाजु सुराग कि गाँडर ताँती॥

२५४

राम-सखा रिसि बरबस भेंटा ।
जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥

२५५

यह बडि बात राम कै नाहीं ।
जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं ॥

२५६

देखी राम दुखित महतारी ।
जनु सुबेलि अवली हिम मारी ॥

२५७

तेहि अवसर कर हरष विषादू ।
किमि कवि कहइ मूक जिमि स्वादू ॥

२५८

परी बधिक बस मनहुँ मराली ।
काह कीन्ह करतार कुचाली ॥

२५९

राम बचन सुनि सभय समाजू ।
जनु जलनिधि महँ बिकल जहाजू ॥

२६०

हमहिं अगम अति दरस तुम्हारा ।
जस मरुधरनि देवधुनि धारा ॥

२६१

बिहरहि बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब ।
जल ज्यों दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥

२६२

निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरतु बिकल सुठि सोच ।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहिं सलिल सँकोच ॥

२६३

और करइ को भरत बड़ाई ।
सरसि सीप किमि सिंधु समाई ॥

२६४

फरइ कि कोदव सालि सुसाली ।
मुकता प्रसव कि संबुक ताली ॥

२६५

सोक मगन सब सभा खँभारू ।
मनहुँ कमल बन परेउ तुषारू ॥

२६६

रानि कुचालि सुनत नरपालहिं ।
सूझ न कछु जस मनि बिनु व्यालहिं ॥

२६७

कहत सारदहु कर मति हीचे ।
सागर सीप कि जाहिं उलीचे ॥

२६८

दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी ।
सरित सिंधु संगम जनु बारी ॥

२६९

भरत हृदय सिय राम निवासू ।
तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥

२७०

होहिं कुठाय सुबंधु सुहाये ।
ओड़ियहि हाथ असनिहु के घाये ॥

२७१

मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू ।
भा जनु गूँगहि गिरा प्रसादू ॥

२७२

मुनिगन गुरु धुरधीर जनक से ।
ज्ञान अनल मन कसे कनक से ॥

२७३

सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर ।
भगति ज्ञान वैराग जनु, सोहत धरे सरीर ॥

२७४

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा ।
चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥

२७५

रमा विलासु राम अनुरागी ।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥

अरण्य-कांड ।—

२७६

मुनि मगु माँझ अचल होइ वैसा ।
पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥

२७७

राम बदनु बिलोकु मुनि ठाढ़ा ।
मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा ॥

२७८

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला ।
कनक तरुहिं जनु भेंट तमाला ॥

२७९

ऊमरि तरु बिसाल तव माया ।
फलु ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥

२८०

नाक कान बिनु भइ बिकरारा ।
जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥

२८१

धाये निसिचर निकर बरूथा।
जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥

२८२

आइ गये बगमेल, धरहु धरहु धावहु सुभट।
जथा बिलोकि अकेल, बाल रबिहिं घेरत दनुज॥

२८३

नवनि नीच कै अति दुखदाई।
जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई॥

२८४

भयदायक खल कै प्रिय बानी।
जिमि अकास के कुसुम भवानी॥

२८५

बिपति मोर को प्रभुहिं सुनावा।
पुरोडास चह रासभ खावा॥

२८६

अधम निसाचर लीन्हे जाई।
जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई॥

२८७

धावा क्रोधवन्त खग कैसे।
छूटै पबि पर्बत कहुँ जैसे॥

२८८

करत बिलाप जात नभ सीता।
व्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥

२८९

सन्त हृदय जस निर्मल बारी।
बाँधे घाट मनोहर चारी॥

२६०

जहँ तहँ पियहिं विविध मृग नीरा ।
जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

२६१

पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म ।
मायाछन्न न देखिय, जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥

२६२

सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्हि के, दिन सुख संयुत जाहिं ॥

२६३

फल भर नम्र बिटप सब, रहे भूमि नियराइ ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ ॥

२६४

दीप सिखा सम जुवति जनु, मन जनि होसि पतङ्ग ।

किष्किन्धा-काण्ड ।— २६५

सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी ।
कपटी मित्र सूल सम चारी ॥

२६६

छुद्र नदी भरि चली तोराई ।
जस थोरेहु धन खल बौराई ॥

२६७

भूमि परत भा ढाबर पानी ।
जनु जीवहि माया लपटानी ॥

२६८

हरित भूमि तृन संकुलित, समुझि परहि नहि पंथ ।
जिमि पाखंड बाद ने, गुप्त होहिं सद्ग्रन्थ ॥

२९९

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी।
उपकारी कै सम्पति जैसी॥

३००

जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना।
जिमि इंद्रियगन उपजे ज्ञाना॥

३०१

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतङ्ग।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाइ कुसङ्ग सुसङ्ग॥

३०२

रस रस सूख सरित सर पानी।
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥

३०३

जानि सरद रितु खञ्जन आये।
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये॥

३०४

पंक न रेनु सोह असि धरनी।
नीति-निपुन नृप कै जसि करनी॥

३०५

चक्रवाक मन दुख निसि पेखी।
जिमि दुरजन पर सम्पति देखी॥

३०६

सरदातप निसि ससि अपहरई।
संत दरस जिमि पातक टरई॥

सुन्दर-काण्ड।— ३०७

देखि प्रताप न कपि मन सङ्का।
जिमि अहिगन महँ गरुड असङ्का॥

३०८

सहि सक न भार उदार अहिपति बारबारहिं मोहई।
गहि दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी॥

३०९

सो पर-नारि लिलार गोसाईं।
तजइ चौथि के चन्द कि नाईं॥

३१०

अस सज्जन मम उर बस कैसे।
लोभी हृदय बसइ धन जैसे॥

३११

करत राज लङ्का सठ त्यागी।
होइहि जव कर कीट अभागी॥

३१२

जिमि हरि बधुहिं छुद्र सस चाहा।
भयेसि काल बस निसिचर नाहा॥

लङ्का-काड— ३१३

तुम्हहि रघुपतिहिं अन्तर कैसा।
खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥

३१४

अवहीं ते उर संसय होई।
वेनु मूल सुत भयउ घमोई॥

३१५

हित मत तोहि न लागत कैसे।
काल विवस कहँ भेषज जैसे॥

३१६

अंगद दीख दसानन बैसे।
सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे।

३१७

भुजा बिटप सिर सृङ्ग समाना।
रोमावली लता जनु नाना॥

३१८

मुख नासिका नयन अरु काना।
गिरि कन्दरा खोह अनुमाना॥

३१९

जासु चलत डोलति इमि धरनी।
चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥

३२०

भूमि न छाड़त कपि चरन, देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न तें सन्त कर, मन जिमि नीति न त्याग॥

३२१

भयउ तेजहत श्री सब गई।
मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥

३२२

सिंहासन बैठेउ सिर नाई।
मानहुँ सम्पति सकल गँवाई॥

३२३

उमा रावनहिं अस अभिमाना।
जिमि टिट्टिभ खग सूल उताना॥

३२४

लंका दोउ कपि सोहहिं कैसे।
मथहि सिंधु दुइ मंदर जैसे॥

३२५

प्राविट सरद पयोद घनेरे।
लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे॥

३२६

भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं।
ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं॥

३२७

सर समूह सो छाडइ लागा।
जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥

३२८

देखि पवनसुत कटक बिहाला।
क्रोधवंत धायउ जनु काला॥

३२९

जिमि कोउ करइ गरुड़ सन खेला।
डरपावइ गहि स्वल्प सँपेला॥

३३०

एकै बान काटी सब माया।
जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥

३३१

जागा निसिचर देखिय कैसा।
मानहुँ काल देह धरि बैसा॥

३३२

रुधिर गाड भरि भरि जमेउ, ऊपर धूरि उड़ाइ।
जिमि अँगार रासीन्ह पर, मृतक धूम रह छाइ॥

३३३

घायल बीर बिराजहिं कैसे।
कुसुमित किंसुक के तरु जैसे॥

३३४

मुरेउ न मन तन टरेउ न टारे।
जिमि गज अर्क फलनि के मारे॥

३३५

कुम्भकरन रन-रंग बिरुद्धा।
सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥

३३६

कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई।
जनु टीडी गिरि गुहा समाई॥

३३७

रन मद-मत्त निसाचर दर्पा।
बिस्व ग्रसहि जनु एहि बिधि अर्पा॥

३३८

सत्यसंन्ध छाड़े सर लच्छा।
काल सर्प जनु चले सपच्छा॥

३३९

तन महँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं।
जनु दामिनि घन माँझ समाहीं॥

३४०

सोनित स्रवत सोह तनु कारे।
जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥

३४१

भागे भालु बलीमुख जूथा।
वृक बिलोकि जनु मेष बरूथा॥

३४२

यह निसिचर दुकाल सम अहई।
कपि-कुल देस परन अब चहई॥

३४३
काटे भुजा सोह खल कैसा।
पच्छहीन मन्दर गिरि जैसा॥

३४४
उग्र विलोकनि प्रभुहिँ विलोका।
ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका॥

३४५
सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा।
काल त्रोन सजीव जनु आवा॥

३४६
राम कृपा कपि दल बल बाढा।
जिमि तृन पाइ लागि अति डाढ़ा॥

३४७
छीजहिँ निसिचर दिन अरु राती।
निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती॥

३४८
रहे दसहुँ दिसि सायक छाई।
मानहुँ मघा मेघ झरि लाई॥

३४९
कोट कँगूरन्हिँ सोहहिँ कैसे।
मेरु के सृङ्गनि जनु घन बैसे॥

३५०
जाहिं कहाँ भये व्याकुल बन्दर।
सुरपति बन्दि परे जनु मन्दर॥

३५१
चले बीर सब अतुलित बली।
जनु कज्जल कै आँधी चली॥

३५२

चले मत्त गज जूथ घनेरे।
प्राविट जलद मरुत के प्रेरे॥

३५३

पनव निसान घोर रव बाजहिं।
महा प्रलय के घन जनु गाजहिं॥

३५४

सत सत सर मारे दस भाला।
गिरि सृङ्गन्हि जनु प्रविसहिं व्याला॥

३५५

प्रभु सन्मुख धाये खल कैसे।
सलभ समूह अनल कहँ जैसे॥

३५६

देखि चले सन्मुख कपि भट्टा।
प्रलयकाल के जनु घन घट्टा।

३५७

बहु कृपान तरवारि चमंकहिं।
जनु दस दिसि दामिनी दमंकहिं॥

३५८

गज रथ तुरग चिकार कठोरा।
गरजहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥

३५९

कपि लंगूर बिपुल नभ छाये।
मनहुँ इंद्रधनु उये सुहाये॥

३६०

उठइ धूरि मानहुँ जलधारा।
बान बुन्द भइ बृष्टि अपारा॥

२६१

दुहुँ दिसि परबत करहिँ प्रहारा।
बज्रपात जनु बारहिँ बारा॥

२६२

जनि जलपना करि सुजसु नासहि, नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध, पाटल-रसाल-पनस-समा।
एक सुमन प्रद एक सुमन फल, एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं, कहहिं करहिं अपर, एक करहिं कहत न बागहीं॥

२६३

निफल होइ रावन सर कैसे।
खल के सकल मनोरथ जैसे॥

२६४

बिफल होहिं सब उद्यम ताके।
जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥

२६५

रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू।
मानहुँ अमित केतु अरु राहू॥

२६६

जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि, नित नित नूतन मार॥

२६७

एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं॥

२६८

दंड एक रथ देखि न परेऊ।
जनु निहार महँ दिनकर दुरेऊ॥

३६९

सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं।
कज्जल गिरि सुमेरु जनु लरही॥

३७०

प्रभु छन महँ माया सब काटी।
जिमि रवि उये जाहि तम फाटी॥

३७१

गहे न जाहिं करन्ह पर फिरही।
जनु जुग मधुप कमल बन चरही॥

३७२

तब रघुपति रावन के, सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि, जिमि तीरथ कर पाप॥

३७३

तेहि मध्य कौशल राज सुन्दर स्याम तन शोभा लही।
जनु इन्द्र-धनुष अनेक की बर बारि तुङ्ग तमाल ही॥

३७४

ताके गुन गन कछु कहे, जडमति तुलसीदास।
निज पौरुष अनुसार जिमि, मशक उडाहिं अकास॥

३७५

काटत बढ़हिं सीस समुदाई।
जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥

३७६

सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नील गिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुज दंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठी बिपुल सुख आपने॥

३७७

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरही।
मसक कबहुँ खगपति हित करही॥

३७८

राजत राम सहित भामिनी।
मेरु शृङ्ग जनु घन दामिनी॥

उत्तर-काण्ड— ३७६

राम विरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।
विप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयेउ जनु पोत॥

३८०

राकाससि रघुपति पुर, सिन्धु देखि हरषान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान॥

३८१

राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन धनी।
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहँ जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु शृङ्गार तनु धरि मिले वर सुखमा लही॥

३८२

कौसल्यादि मातु सब धाई।
निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।

३८३

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परवश गईं।
दिन अन्त पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटी बचन मृदु बहु विधि कहे।
गइ विषम बिपति बियोग भव तिन्हँ हर्ष सुख अगनित लहे॥

३८४

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भये समर सागर कहँ बेरे॥

३८५

नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भये विकसित भईं, निरखि राम राकेस॥

३८६

सुनत बचन बिसरे सब दूखा।
तृषावन्त जनु पाइ पियूषा॥

३८७

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं।
जिमि पर द्रोह सन्त मन माही॥

३८८

धवल धाम ऊपर नभ चुम्बत।
कलस मनहुँ रबिससि द्युति निंदत॥

३८९

संत असंतन कै असि करनी।
जिमि कुठार चन्दन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई॥

३९०

तिन्हकर संग सदा दुखदाई।
जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥

३९१

जहँ कहुँ निन्दा सुनहिँ पराई।
हरषहिँ मनहुँ परी निधि पाई॥

३६२

काहू के जौ सुनहिँ बड़ाई।
स्वास लेहिँ जनु जूड़ी आई॥

३६३

नाथ तवानन ससि स्रवत, कथा सुधा रघुबीर।
स्रवन पुटन्हि मन पान करि, नहिँ अघात मतिधीर॥

३६४

जो अति आतप व्याकुल होई।
तरु छाया सुख जानइ सोई॥

३६५

भगतिहीन गुन सब सुख ऐसे।
लवन बिना बहु व्यंजन जैसे॥

३६६

प्रीति बिना नहिँ भगति दृढाई।
जिमि खगपति जलकै चिकनाई॥

३६७

कोउ बिस्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।
चलइ कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि-पचि मरिय॥

३६८

जेहि तें नीच बड़ाई पावा।
सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा॥
धूम अनल संभव सुनु भाई।
तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥

३६९

उदासीन नित रहिय गोसाईं।
खल परिहरिअ स्वान की नाईं॥

४००

सो तै ताहि तोहि नहि भेदा।
बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥

४०१

भूरज तरु सम सन्त कृपाला।
परहित निति सह बिपति बिसाला॥

४०२

सन इव खल पर बन्धन करई।
खाल कढाइ बिपति सहि मरई॥

४०३

खल बिनु स्वारथ पर अपकारी।
अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥

४०४

संत उदय संतत सुखकारी।
बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥

४०५

पर सम्पदा बिनासि नसाहीं।
जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं॥

४०६

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

रूपक

रूपकों पर तुलसीदास का स्वाभाविक अनुराग दिखाई पड़ता है। रामचरित-मानस में रूपकों का ताँता-सा लगा हुआ है। उसका कोई काड ऐसा नहीं है, जिसमें तुलसीदास ने कोई न कोई नया रूपक न बाँधा हो। बाल-काड के प्रारम्भ ही से रूपक शुरू हो गये हैं।

तुलसीदास ने छोटे-छोटे रूपक भी बाँधे हैं और बड़े-बड़े भी। छोटे रूपको की संख्या बहुत है। बड़े रूपकों की अपेक्षा छोटे रूपको में कवि की प्रतिभा का चमत्कार विशेष रूप से लक्षित होता है; क्योंकि थोड़े स्थान मे उसे अधिक भाव भरना पड़ता है। दिग्दर्शन-मात्र के लिये कुछ रूपको के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

'मानस' में तुलसीदास ने पहला रूपक संत-समाज और प्रयाग का बाँधा है। उन्होंने प्रयाग के सर्वाङ्ग की तद्रूपता साधु-समाज के सर्वाङ्ग से बड़ी विज्ञता के साथ दिखलाई है।—

मुद-मंगल-मय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भगति जहँ सुरसरि-धारा।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
बिधि-निषेध-मय कलि-मल-हरनी।
करमकथा रबि नन्दिनि बरनी॥
हरि-हर-कथा बिराजति बेनी।
सुनत सकल-मुद-मंगल-देनी॥
बट बिस्वासु अचल निज धर्मा।
तीरथ राज समाज सुकर्मा॥

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ।
देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

सुनि समुझहि जन मुदित मन, मज्जहि अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाजु प्रयाग॥

इसके वाद कविता और मुक्ता का एक वड़ा ही सुन्दर रूपक है।—

हृदय सिन्धु मति सीपि समाना।
स्वाती सारद कहहिँ सुजाना॥
जौ बरखइ बर बारि बिचारू।
होहिँ कबित मुकतामनि चारू॥

जुगुति बेधि पुनि पोहिअहि, राम चरित बर ताग।
पहिरहिँ सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग॥

'मानस' भर मे 'रामचरित-मानस' का रूपक सवसे वड़ा है। वडा होने पर भी वह आदि से अंत तक ऐसा सरस है कि पढ़ते समय जी नहीं ऊबता। तुलसीदास ने मानसरोवर के एक-एक अग से अपने रामचरित-मानस की तुलना की है। संभवतः यह रूपक मानसरोवर की उनकी किसी यात्रा के बाद का है, क्योंकि इसके पद-पद में मानसरोवर के प्रत्यक्ष-दर्शी यात्री का अनुभव झलक रहा है।—

संभु प्रसाद सुमति हिअ हुलसी।
रामचरितमानस कबि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी।
सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।
वेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी।
मधुर मनोहर मंगल कारी॥

लीला सगुन जो कहहिं बखानी।
सोइ स्वच्छता करै मल हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई।
सोइ मधुरता सुसीतलताई॥

सो जल सुकृत सालि हित होई।
राम भगत जन जीवन सोई॥
मेधा महिगत सो जल पावन।
सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन॥

भरेउ सुमानस सुथल थिराना।
सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

सुठि सुन्दर संवाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना।
ग्यान नयन निरखत मनमाना॥
रघुपति महिमा अगम अबाधा।
बरनब सोइ बरबारि अगाधा॥

राम सीय जस सलिल सुधासम।
उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई।
जुगुति मंजु मनि सीप सोहाई॥

छंद सोरठा सुन्दर दोहा ।
सोइ बहुरङ्ग कमल कुल सोहा ॥

अरथ अनूप सुभाव सुभासा ।
सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥

सुकृत-पुञ्ज मंजुल अलिमाला ।
ग्यान बिराग विचार मराला ॥

धुनि अवरेव कबित गुन जाती ।
मीन मनोहर ते बहु भाँती ॥

अरथ धरम कामादिक चारी ।
कहब ज्ञान बिज्ञान बिचारी ॥

नव रस जप तप जोग बिरागा ।
ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥

सुकृती साधु नाम गुन गाना ।
ते बिचित्र जल बिहग समाना ॥

संत सभा चहुँदिसि अँबराई ।
स्रद्धा रितु बसन्त सम गाई ॥

भगति निरूपन बिबिध बिधाना ।
छमा दया द्रुम लता बिताना ॥

सम जम नियम फूल फल ग्याना ।
हरिपद रस बर बेद बखाना ॥

अउरउ कथा अनेक प्रसंगा ।
तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा ॥

पुलक बाटिका-बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु ।
माली सुमन सनेह जल; सींचत लोचन चारु ॥

जे गावहिं यह चरित सँभारे।
तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नरनारी।
तेइ सुर वर मानस अधिकारी॥
अति खल जे बिषई बक कागा।
एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सिवार समाना।
इहाँ न विषय कथा रस नाना॥
तेहि कारन आवत हिय हारे।
कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहि सर अति कठिनाई।
राम कृपा बिनु आइ न जाई॥
कठिन कुसंग कुपंथ कराला।
तिन्हके बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला।
तेइ अति दुर्गम सैल बिसाला॥
बन बहु बिषम मोह मद नाना।
नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

जे स्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन कहुँ मानस अगम अति, जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥

जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई।
जातहि नींद जुडाई होई॥
जडता जाड़ बिषम उर लागा।
गयेहु न मज्जन पाव अभागा॥

करि न जाइ सर मज्जन पाना ।
फिरि आवइ समेत अभिमाना ॥

जौं बहोरि कोउ पूछन आवा ।
सर निन्दा करि ताहि बुझावा ॥

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहि तेही ।
राम सुकृपा बिलोकहि जेही ॥

सोइ सादर सर मज्जन करई ।
महाघोर त्रय ताप न जरई ॥

ते नर यह सर तजहिं न काऊ ।
जिन्हके रामचरन भल भाऊ ॥

जो नहाइ चह एहि सर भाई ।
सो सतसंग करउ मन लाई ॥

अस मानस मानस चष चाही ।
भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही ॥

भयउ हृदय आनन्द उछाहू ।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू ॥

चली सुभग कबिता सरिता सी ।
राम बिमल जस जल भरिता सी ॥

सरजू नाम सुमंगल मूला ।
लोक-बेद मत मंजुल कूला ॥

नदी पुनीत सुमानस-नंदिनि ।
कलि-मल-तिन-तरु-मूल-निकंदिनि॥

स्रोता त्रिबिध समाज पुर , ग्राम नगर दुहुँ कूल ।
संत सभा अनुपम अवध , सकल सुमंगल मूल ॥

राम भगति सुर-सरितहि जाई।
मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम-समर-जस पावन।
मिलेउ महानद सोन सुहावन॥
जुग बिच भगति देव-धुनि-धारा।
सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिविध ताप-त्रासक तिमुहानी।
राम-सरूप सिन्धु समुहानी॥
मानस मूल मिली सुरसरिही।
सुनत सुजन-मन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा।
जनु सरि तीर तीर बन बागा॥
उमा-महेस-बिवाह-बराती।
ते जलचर अगनित बहु भाँती॥
रघुबर-जनम-अनन्द बधाई।
भवँर तरंग मनोहरताई॥

बाल चरित चहुँ बन्धु के, बनज बिपुल बहु रंग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग॥

सीय स्वयंबर-कथा सुहाई।
सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका।
केवट कुसल उत्तर सबिबेका॥
सुनि अनुकथन परस्पर होई।
पथिक समाज सोह सरि सोई॥

घोर धार भृगुनाथ रिसानी ।
घाट सुबद्ध राम बर बानी ॥

सानुज राम-विवाह उछाहू ।
सो सुभ उमग सुखद सब काहू ॥

कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं ।
ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ॥

राम तिलक हित मङ्गल साजा ।
परब जोग जनु जुरेउ समाजा ॥

काई कुमति केकई केरी ।
परी जासु फल बिपति घनेरी ॥

समन अमित उतपात सब, भरत चरित जप जाग ।
कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जल मल बक काग ॥

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी ।
समय सुहावनि पावनि भूरी ॥

हिम-हिमसैल- सुता-सिव-ब्याहू ।
सिसिर सुखद प्रभु-जनम-उछाहू ॥

बरनब राम-बिबाह-समाजू ।
सो मुद मंगलमय रितुराजू ॥

ग्रीषम दुसह राम-बन-गवनू ।
पंथ कथा खर आतप पवनू ॥

बरषा घोर निसाचर- रारी ।
सुरकुल सालि सुमंगलकारी ॥

राम-राज-सुख बिनय बड़ाई ।
बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥

सती सिरोमनि सिय-गुन-गाथा।
सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥

भरत सुभाउ सुसीतलताई।
सदा एक रस बरनि न जाई॥

अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास।
भायप भलि चहुँ बंधु की, जल माधुरी सुवास॥

आरति बिनय दीनता मोरी।
लघुता ललित सुबारि न खोरी॥

अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी।
आस पियास मनोमलहारी॥

राम सुपेमहि पोषत पानी।
हरत सकल कलि-कलुष-गलानी॥

भव-स्रम-सोषक तोषक तोषा।
समन दुरित दुख दारिद दोषा॥

काम कोह मद मोह नसावन।
बिमल बिबेक बिराग बढावन॥

सादर मज्जन पान किये तें।
मिटहि पाप परिताप हिये तें॥

जिन्ह एहि बारि न मानस धोये।
ते कायर कलिकाल बिगोये॥

तृषित निरषि रबिकर भव बारी।
फिरिहहि मृग जिमि जीव दुखारी॥

जनकपुर में धनुर्यज्ञ के अवसर पर राम के प्रताप की तुलना सूर्योदय से करते हुये कवि ने लक्ष्मण के मुख से एक सुंदर रूपक की सृष्टि कराई है।—

उयेउ अरुन अवलोकहु ताता।
पंकज-कोक-लोक-सुख-दाता॥
बोले लखन जोरि जुग पानी।
प्रभु-प्रभाव-सूचक मृदु बानी॥

अरुनोदय सकुचे कुमुद, उडुगन-जोति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन॥

नृप सब नखत करहिँ उजियारी।
टारि न सकहिँ चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना।
हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे।
होइहहि टूटे धनुष सुखारे॥
उयेउ भानु बिन स्रम तम नासा।
दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥
रबि निज-उदय-व्याज रघुराया।
प्रभु प्रताप सब नृपन्ह दिखाया॥

रग-मञ्च पर राम के खडे होने की तुलना बाल-सूर्य के उदय से करके कवि ने उसका एक दूसरा रूपक भी इस प्रकार बाँधा है।—

उदित उदयगिरि मञ्च पर, रघुबर बाल पतङ्ग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृङ्ग॥

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी।
बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने।
कपटी भूप उलूक लुकाने॥

भये बिसोक कोक मुनि देवा ।
बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥

राम और सीता का विवाह हो चुकने पर बरात जनकपुर से अयोध्या को वापस आई है। मातायें आरती सजाकर वधुओं का परिछन करने के लिये राज-द्वार पर आई हैं। उस समय धूप के धुयें से सावन की घटा-सी घिर आई है। तुलसीदास ने उसपर, देखिये, कैसा सुन्दर रूपक बाँधा है।—

धूम धूम नभ मेचक भयऊ।
सावन घन घमंड जनु ठयऊ॥
सुरतरु-सुमन-माल सुर बरषहिं।
मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं॥
मंजुल मनिमय बंदनवारे।
मनहुँ पाक-रिपु चाप सँवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्हि पर भामिनि।
चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥
दुन्दुभि धुनि घन गरजनि घोरा।
जाचक चातक दादुर मोरा॥
सुर सुगन्ध सुचि बरषहिं बारी।
सुखी सकल ससि पुर-नर-नारी॥

अवध और अम्बुधि का भी एक रूपक देखिये।—

भुवन चारिदस भूधर भारी।
सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥
रिधि सिधि संपति नदी सुहाईं।
उमगि अवध अंबुधि कहुँ आईं॥

मनिगन पुर-नर-नारि सुजाती।
सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती॥

कैकेयी को जब राजा दशरथ मनाने लगे, तब वह सर्पिणी की तरह क्रोध-पूर्ण नेत्रों से उनको देखने लगी। इस दृश्य को लक्ष्य करके तुलसीदास ने यह रूपक बाँधा है।—

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि विषम भाँति निहारई।
दोउ बासना रसना दसन बर मरमु ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवितव्यता बस काम कौतुक लेखई॥

कैकेयी और तरंगिणी का रूपक भी बड़ा ही मनोहर है।—

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढी।
मानहुँ रोष तरङ्गिनि बाढी॥

पाप पहार प्रगट भइ सोई।
भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा।
भवँर कूबरी-बचन-प्रचारा॥

ढाहति भूप रूप तरु मूला।
चली बिपति बारिधि अनुकूला॥

वन की ओर जाते हुये जब राम प्रयाग में पहुँचे हैं, उस समय भी तुलसीदास ने एक रूपक-द्वारा तीर्थराज और राजा की एक-रूपता प्रदर्शित की है।—

प्रात प्रात-कृत करि रघुराई।
तीरथ-राजु दीख प्रभु जाई॥

सचिव सत्य सद्धा प्रिय नारी।
माधव सरिस मीतु हितकारी॥

चारि पदारथ भरा भँडारू।
पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥

छेत्रु अगमु गढ़ु गाढ सुहावा।
सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥

सेन सकल तीरथ बर बीरा।
कलुष-अनीक-दलन रनधीरा॥

संगमु सिंहासनु सुठि सोहा।
छत्रु अषयबटु मुनि मनु मोहा॥

चँवर जमुन अरु गंग तरंगा।
देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

सेवहि सुकृती साधु सब, पावहिं सब मनकाम।
बंदी वेद पुरानगन, कहहिं बिमल गुन-ग्राम॥

चित्रकूट पर भी एक रूपक है, जिसमें चित्रकूट की तुलना शिकारी से की गई है।—

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू।
करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥

लखन दीख पय उतर करारा।
चहुँदिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥

नदी पनच सर सम दम दाना।
सकल कलुष कलि साउज नाना॥

चित्रकूट जनु अचलु अहेरी।
चुकइ न घात मार मुठभेरी॥

अयोध्या-काड मे एक रूपक भरत पर भी है, जिसमें भरत की कीर्ति को चन्द्रमा के समान बताया गया है।—

नवबिधु विमल तात जसु तोरा ।
रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना ।
घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥
कोक तिलोक प्रीति अति करही ।
प्रभु प्रतापु रबि छबिहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू ।
ग्रसहि न कैकइ करतब राहू ॥
पूरनु रामु-सु-प्रेम पियूखा ।
गुरु अवमान दोख नहिँ दूषा ॥
राम भगत अब अमिय अघाहू ।
कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू ॥
कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा ।
जहँ बस रामु प्रेम-मृग-रूपा ॥

चित्रकूट मे राम के बस जाने से वन मे जो सुख और समृद्धि की वृद्धि हुई थी, उसकी तुलना सुराज से करके तुलसीदास ने एक बड़ा ही सुन्दर रूपक बाँधा है ।—

राम बास बन संपति भ्राजा ।
सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू ।
बिपिन सुहावन पावन देसू ॥
भट जम नियम सैल रजधानी ।
सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी ॥
सकल अंग सम्पन्न सुराऊ ।
रामचरन आस्रित चित चाऊ ॥

जीति मोह-महिपाल-दल, सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राज पुर, सुख संपदा सुकालु॥

बन प्रदेस मुनिबास घनेरे।
जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे॥
विपुल बिचित्र बिहँग मृग नाना।
प्रजा समाज न जाइ बखाना॥

खगहा करि हरि बाघ बराहा।
देखि महिष वृष साजु सराहा॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा।
जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं।
मनहु निसान बिबिध बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन।
कूजत मञ्जु मराल मुदित मन॥
अलिगन गावत नाचत मोरा।
जनु सुराज मङ्गल चहुँ ओरा॥

राम को मिलने के लिये महाराज जनक जब चित्रकूट आये, तब उनकी अगवानी करके राम उन्हे अपने आश्रम की ओर ले चले। उस प्रसंग को तुलसीदास ने एक रूपक द्वारा बड़ा ही प्रभावोत्पादक बना दिया है।—

आस्रम सागर सांतरस, पूरन पावन पाथ।
सेन मनहुँ करुना सरित, लियें जात रघुनाथ॥

बोरति ज्ञान बिराग करारे।
बचन ससोक मिलत नद नारे॥

सोच उसास समीर तरंगा ।
धीरज तट-तरुवर कर भंगा ॥
बिषम बिषाद तोगवति धारा ।
भय भ्रम भँवर अवर्त्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा ।
सकहिं न खेइ एक नहिं आवा ॥
बनचर कोल किरात बेचारे ।
थके बिलोकि पथिक हिय हारे ॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई ।
मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ॥

सीता-हरण के बाद राम की विरहावस्था दिखलाने के लिये कवि ने उनपर कामदेव की चढ़ाई का एक मनोहर रूपक बाँधा है।—

बिरह बिकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल ।
सहित बिपिन मधुकर खग, मदन कीन्हि बगमेल ॥
देखि गयेउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात ।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब, कटकु हटकि मनजात ॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी ।
बिबिध बितानु दिये जनु तानी ॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका ।
देखि न मोह धीर मनु जाका ॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना ।
जनु बानैत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुन्दर बिटप सुहाये ।
जनु भट बिलग बिलग होइ छाये ॥

कूजत पिक मानहुँ गज माते।
ढेक महोख ऊँट बिसराते॥

मोर चकोर कीर वर बाजी।
पारावत मराल सब ताजी॥

तीतर लावक पदचर जूथा।
बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥

रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना।
चातक बन्दी गुनगन बरना॥

मधुकर मुखर भेरि सहनाई।
त्रिबिध बयारि बसीठी आई॥

चतुरङ्गिनी सेन सँग लीन्हे।
बिचरत सबहिं चुनौती दीन्हें॥

लछिमन देखत काम अनीका।
रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥

एहि के एक परम बल नारी।
तेहितें उबर सुभट सोइ भारी॥

लंका-कांड में विश्व-रूप भगवान का एक बड़ा ही दिव्य रूपक है। कौतूहल की बात है कि इस रूपक में एक स्त्री के, सो भी राक्षस-स्त्री मन्दोदरी के, मुख से तुलसीदास ने उपनिषद् का यह प्रवचन कराया है।—

बिस्वरूप रघुबंस मनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर, अंग अंग प्रति जासु॥

पद पाताल सीस अज धामा।
अपर लोक अँग अँग बिस्रामा॥

भृकुटि बिलास भयंकर काला।
नयन दिवाकर कच घन-माला ॥

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा।
निसि अरु दिवसु निमेष अपारा ॥

स्रवन दिसा दस बेद बखानी।
मारुत स्वास निगम निजु बानी ॥

अधर लोभ जमु दसन कराला।
माया हास बाहु दिगपाला ॥

आनन अनल अंबुपति जीहा।
उतपति पालन प्रलय समीहा ॥

रोमराजि अष्टादस भारा।
अस्थि सयल सरिता नस जारा ॥

उदर उदधि अधगो जातना।
जग मय प्रभु की बहु कलपना ॥

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास चर-अचर-मय, रूप राम भगवान ॥

एक रूपक मे रावण की तुलना काजल के पहाड़ से इस प्रकार की गई है।—

अंगद दीख दसानन बइसे।
सहित प्रान कज्जलगिरि जैसे ॥

भुजा बिटप सिर सृंग समाना।
रोमावली लता जनु नाना ॥

मुख नासिका नयन अरु काना।
गिरि कंदरा खोह अनुमाना ॥

रावण को रथ पर से और राम को पैदल युद्ध करते देख-कर विभीषण को सदेह हुआ कि राम कैसे विजयी होंगे। उसका सदेह निवारण करते हुये राम से जो उत्तर दिलाया गया है, वह आज तीन सौ वर्षों के बाद बिल्कुल चरितार्थ हो रहा है। उक्त रूपक के उपकरण आजकल स्वराज के लिये महात्मा गाँधी के उपकरण हैं। तुलसीदास का यह रूपक उनके अन्य सब रूपकों से अधिक मूल्यवान् है।—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना।
जेहि जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिज्ञान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र-गुरु-पूजा।
येहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके।
जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताके॥
महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ, सुनहु सखा मतिधीर॥

युद्ध-काल में वानर-सेना की तुलना प्रलय-काल के मेघ से करके तुलसीदास ने यह रूपक बाँधा है।—

देखि चले सन्मुख कपि भट्टा।
प्रलयकाल के जनु घनघट्टा॥
बहु कृपान तरवारि चमंकहिं।
जनु दस दिसि दामिनी दमंकहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा।
गरजहिँ मनहुँ बलाहक घोरा।
कपि लंगूर विपुल नभ छाये।
मनहुँ इंद्र धनु उये सुहाये॥
उठइ धूरि मानहुँ जलधारा।
बान बुन्द भइ वृष्टि अपारा॥
दुहुँ दिसि परबत करहिँ प्रहारा।
बज्रपात जनु बारहिँ बारा॥

राम ने गण मार-मारकर राक्षसों को घायल कर दिया। उनके घावों से रक्त की नदी बह चली। उसका यह रूपक है।—

स्रवहिं सैल जनु निर्झर बारी।
सोनित सरि कादर भयकारी॥

कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी॥
जलजंतु गज पदचर तुरग खर विविध वाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥

बीर परहिं जनु तीर तरु, मज्जा बहु बहु फेन।
कादर देखि डरहिं तहँ, सुभटन के मन चैन॥

उत्तर-काड मे कई रूपक हैं। एक रूपक राम के प्रताप रूपी सूर्योदय का है।—

जब ते राम प्रताप खगेसा।
उदित भयेउ अति प्रबल दिनेसा॥

पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका।
बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका॥

जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी।
प्रथम अविद्या निसा नसानी॥

अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने।
काम - क्रोध - कैरव सकुचाने॥

त्रिविध करम गुन काल सुभाऊ।
ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥

मत्सर मान मोह मद चोरा।
इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥

धरम तडाग ग्यान बिज्ञाना।
ए पङ्कज विकसे बिधि नाना॥

सुख संतोष बिराग विवेका।
विगत सोक ए कोक अनेका॥

यह प्रताप रवि जाके, उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढहिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास॥

एक रूपक विज्ञान और दीपक का भी बहुत ही भावपूर्ण है।—

जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई॥

जीव हृदय तम मोह बिसेषी।
ग्रन्थि छूट किमि परइ न देखी॥

अस संजोग ईस जब करई।
तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।
जो हरिकृपा हृदय बसि आई॥

जप तप ब्रत जम नियम अपारा।
जे श्रुति कह सुभ धरम अचारा॥

तेइ तृन हरित चरइ जब गाई।
भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥

नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा।
निर्मल मन अहीर निज दासा॥

परम धरम मय पय दुहि भाई।
अवटइ अनल अकाम बनाई॥

तोष मरुत तब छमा जुड़ावइ।
धृति सम जावन देइ जमावइ॥

मुदिता मथइ बिचार मथानी।
दम अधार रजु सत्य सुबानी॥

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।
बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

जोग अगिनि करि प्रगट तब, करम सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावइ ग्यान घृत, ममता मल जरि जाइ॥

तब बिज्ञान निरूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरइ दृढ़, समता दियटि बनाइ॥

तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करइ सुगाढ़ि॥

एहि बिधि लेसइ दीप, तेजरासि बिग्यानमय।
जातहि जासु समीप, जरहि मदादिक सलभ सब॥

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥

आतम-अनुभव-सुख सुप्रकासा।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

प्रबल अबिद्या कर परिवारा।
मोह आदि तम मिटइ अपारा॥

तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा।
उर गृह बैठि ग्रन्थि निरुवारा॥

छोरन ग्रन्थि पाव जौं सोई।
तौ यह जीव कृतारथ होई॥

छोरत ग्रन्थि जानि खगराया।
बिघन अनेक करइ तब माया॥

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई।
बुद्धिहि लोभ देखावहि आई॥

कल बल छल करि जाइ समीपा।
अंचल बात बुझावहि दीपा॥

होइ बुद्धि जो परम सयानी।
तिन्ह तनु चितव न अनहित जानी॥

जौं तेहि बिघन बुद्धि नहिं बाधी।
तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥

इन्द्री द्वार झरोखा नाना ।
जहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥

आवत देखहिं विषय बयारी ।
ते हठि देहिं कपाट उघारी ॥

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई ।
तबहिं दीप विग्यान बुझाई ॥

ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा ।
बुद्धि विकल भइ बिषय बतासा ॥

इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सुहाई ।
विषय भोग पर प्रीति सदाई ॥

बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी ।
तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ॥

तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेस ।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाय बिहँगेस ॥

कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥

एक रूपक रामभक्ति-रूपी चिन्तामणि का है। यह रूपक सचमुच उत्तर-कांड का मणि-स्वरूप है।—

कहेउँ ज्ञान सिद्धांत बुझाई ।
सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ॥

राम भगति चिन्तामनि सुन्दर ।
बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ॥

परम प्रकास रूप दिन राती ।
नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती ॥

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा ।
लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥

प्रबल अविद्या तम मिटि जाई ।
हारहिँ सकल सलभ समुदाई ॥

खल कामादि निकट नहिँ जाहीं ।
बसइ भगति जाके उर माहीं ॥

गरल सुधासम अरि हित होई ।
तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥

कामहिँ मानस रोग न भारी ।
जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥

राम-भगति-मनि उर बस जाके ।
दुख-लव-लेस न सपनेहुँ ताके ॥

चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं ।
जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई ।
रामकृपा बिनु नहिँ कोउ लहई ॥

सुगम उपाय पाइबे केरे ।
नर हतभाग्य देहिँ भटभेरे ॥

पावन परबत बेद पुराना ।
राम कथा रुचिराकर नाना ॥

मरमी सज्जन सुमति कुदारी ।
ग्यान बिराग नयन उरगारी ॥

भाव सहित खोदइ जो प्रानी ।
पाव भगति-मनि सब सुखखानी ॥

उत्तर-काड का अन्तिम रूपक मानसिक व्याधियो का है ।—

सुनहु तात अब मानस रोगा ।
जेहि तें दुख पावहिं सब लोगा ॥

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला ।
तिन्ह ते पुनि उपजहि बहु सूला ॥

काम बात कफ लोभ अपारा ।
क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई ।
उपजइ सन्निपात दुखदाई ॥

बिषय मनोरथ दुर्गम नाना ।
ते सब सूल नाम को जाना ॥

ममता दादु कण्डु इरषाई ।
हरष बिषाद गरह बहुताई ॥

परसुख देखि जरनि सोइ छई ।
कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥

अहंकार अति दुखद डवँरुआ ।
दंभ कपट मद मान नेहरुआ ॥

तृस्ना उदर-वृद्धि अति भारी ।
त्रिबिधि इंषना तरुन तिजारी ॥

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका ।
कहँ लगि कहउँ कुरोग अनेका ॥

एक ब्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु ब्याधि ।
पीडहिं संतत जीव कहुँ, सो किमि लहइ समाधि ॥

नेम धरम आचार तप, ज्ञान जग्य जप दान ।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिँ, रोग जाहिं हरिजान ॥

एहि विधि सकल जीव जग रोगी ।
सोक हरष भय प्रीति वियोगी ॥
मानस रोग कछुक मैं गाये ।
हहिं सबके लखि बिरलेन्हि पाये ॥
जाने तें छीजहिं कछु पापी ।
नास न पावहिं जन परितापी ॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे ।
मुनिहु हृदय का नर बापुरे ॥

रामचरित-मानस मे छोटे-छोटे रूपक बहुत-से हैं । स्थानाभाव से सबका उद्धरण नही दिया जा रहा है । तुलसीदास के अन्य ग्रन्थो मे भी रूपक हैं । जान पड़ता है, रूपको पर उनका अनुराग साहित्यिक जीवन के प्रारभ ही से था । उन्होने इतने रूपक लिखे हैं और सभी ऐसे सर्वाङ्ग पूर्ण हैं कि उनको रूपकों का सम्राट् कहना उचित होगा ।

यहाँ उनके अन्य ग्रन्थों से भी कुछ रूपक उद्धृत किये जाते हैं ।—

एक रूपक मे रामचन्द्र के हाथ की तुलना कल्पवृक्ष से की गई है ।—

कनक कुधर केदार बीज सुन्दर सुर मुनिवर ।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय विसुद्धतर ॥
तीरथपति अंकुर सरूप यच्छेस रच्छ तेहि ।
मरकतमय साखा सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि ॥
कैवल्य सकल फल कलपतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस ।
कह तुलसिदास रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस ॥
(कवितावली)

एक रूपक में राम के चरण और प्रयाग की तद्रूपता निरूपण की गई है।—

रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथराज बिराजै।
शङ्कर हृदय भगति भूतल पर प्रेम अछयबट भ्राजै॥
स्याम बरन पद पीठ अरुन तल लसति बिसद नख-स्रेनी।
जनु रबिसुता सारदा सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी॥
अंकुस कुलिस कमल धुज सुन्दर भँवर तरंग बिलासा।
मज्जहिं सुर सज्जन मुनिजन मन मुदित मनोहर बासा॥
बिनु बिराग जप जाग जोग व्रत बिनु तप बिनु तन त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु पद प्रयाग अनुरागे॥
(गीतावली)

एक रूपक मे विरह और ग्रीष्म की एकता दिखलाई गई है।—

जब तें ब्रज तजि गये कन्हाई।
तब तें बिरह रबि उदित एकरस
सखि बिछुरनि वृष पाई॥

घटत न तेज चलत नाहिन रथ
रह्यो उर नभ पर छाई।
इंद्रिय रूपरासि सोचहिं सुठि
सुधि सब की बिसराई॥

भयो सोक-भय-कोक कोकनद
भ्रम भ्रमरनि सुखदाई।
चित चकोर मन मोर कुमुद मुद
सकल बिकल अधिकाई॥

तनु तड़ाग बल बारि सूखन लाग्यो
परी कुरूपता काई।

प्रान मीन दिन दीन दूबरो
दसा दुसह अब आई ॥
तुलसीदास मनोरथ मन मृग
मरत जहँ तहँ धाई ।
राम स्याम सावन भादों बिनु
जिय की जरनि न जाई ॥

(श्रीकृष्ण-गीतावली)

एक रूपक मे शिव की समता वसंत ऋतु के पुष्पित वन से प्रदर्शित की गई है ।—

देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत ।
मनो देखन तुमहि आई ऋतु बसंत ॥
जनु तनु - द्युति चंपक-कुसुम माल ।
बर बसन नील नूतन तमाल ॥
भूषन प्रसून बहु विविध रंग ।
नूपुर किंकिनि कलरव बिहंग ॥
कर नवल बकुल-पल्लव रसाल ।
श्रीफल कुच, कंचुकि लता - जाल ॥
आनन सरोज कच मधुप पुंज ।
लोचन बिसाल नव नील कंज ॥
पिक-बचन चरित बर बरहि कीर ।
सित सुमन हास, लीला समीर ॥
कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान ।
उर बसि प्रपंच रचै पंच - बान ॥
करि कृपा हरिय भ्रम फंद काम ।
जेहि हृदय बसहिँ सुखरासि राम ॥

(विनय-पत्रिका)

एक रूपक मे काशी और कामधेनु की एकरूपता का वर्णन है।—

सेइय सहित सनेह देहभरि
कामधेनु कलि कासी।
समनि सोक सताप पाप रुज
सकल सुमंगलरासी॥

मरजादा चहुँओर चरन बर
सेवत सुरपुर - बासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम
सिव लिग अमित अबिनासी॥

अंतर अयन अयन भल थन फल
बच्छ बेद बिस्वासी।
गल कंबल बरुना बिभाति
जनु लूम लसति सरिता-सी॥

दंडपानि भैरव बिषान मल-
रुचि खलगन भयदा-सी।
लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन
करनघंट घंटा-सी॥

मनिकर्निका बदन-ससि सुन्दर
सुरसरि सुख सुषमा-सी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन
पंच - कोस महिमा-सी॥

बिस्वनाथ पालक कृपालुचित
लालति नित गिरिजा-सी।
सिद्ध सची सारद पूजहिं मन
जोगवति रहति रमा-सी॥

पंचाच्छरी प्रान मुद माधव
गव्य सुपंचनदा सी।
ब्रह्म जीव सम राम नाम जुग
आखर विस्व-विकासी॥

चारितु चरति करम कुकरम कर
मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन जेहि
चहत प्रपंच उदासी॥

कहत पुरान रची केसव निज
कर करतूति-कला-सी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु
जो भयो चहै सुपासी॥

(विनय-पत्रिका)

एक रूपक मे संसार और कातार की एकरूपता निरूपित की गई है।—

दीनउद्धरन रघुबर्य करुनाभवन
समन संताप पापौघ-हारी।
बिमल बिज्ञान विग्रह अनुग्रह रूप
भूपबर बिबुध नर्मद खरारी॥

संसार कंतार अतिघोर गंभीर घन
गहन तरु कर्म संकुल मुरारी।
बासना बल्लि खर कंटकाकुल बिपुल,
निबिड बिटपाटवी कठिन भारी॥

बिबिध चित बृत्ति खग-निकर सेनोलूक
काक बक गृध्र आमिष अहारी।

अखिल खल निपुन छल छिद्र निरखत सदा
जीवजन पथिक मन खेदकारी ॥
क्रोध करि मत्त मृगराज कंदर्प मद-
दर्प बृक भालु अति उग्र-कर्मा ।
महिष मत्सर क्रूर लोभ सूकर रूप
फेरु छल दम्भ मार्जार-धर्म्मा ॥
कपट मरकट बिकट व्याघ्र पाखंड
मुख दुखद मृग व्रात उत्पात-कर्त्ता ।
हृदय अवलोकि यह सोक सरनागतं
पाहि मां पाहि भो बिस्वभर्त्ता ॥
प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर महा
मोह गिरिगुहा निबिड़ांध-कारम् ।
चित्त बैताल मनुजाद मन प्रेतगन
रोग भोगौघ बृश्चिक बिकारम् ॥
बिषय-सुख लालसा दंस मसकादि
खल झिल्लि रूपादि सब सर्प स्वामी ।
तत्र आक्षिप्त तव बिषम माया नाथ
अंध मैं मंद व्यालाद-गामी ॥
घोर अवगाह भव आपगा पापजल
पूर दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर अपारा ।
मकर षड्वर्ग गोनक्र चक्राकुला
कूल सुभ असुभ दुख तीव्र धारा ॥
सकल सघट पोच सोचबस सर्बदा
दास तुलसी बिषय गहन ग्रस्तम् ।
त्राहि रघुबंस भूषन कृपाकंर कठिन
काल बिकराल कलि-त्रास-त्रस्तम् ॥
(विनय-पत्रिका)

संवाद

सवाद किसी विषय को खोलकर उसे अधिक सुबोध बनाने ही मे सहायक नही होते, अपने लेखक या कवि की भाषा-सबधी प्रवीणता और लोक-व्यवहार-दक्षता के भी द्योतक होते हैं। संवाद लोक-भाषा में प्रचलित मुहावरो, कहावतो और लोक-कथाओ का बड़ा ही हृदयग्राही समन्वय होता है। उत्तम कोटि का सवाद रचनेवाला कवि किसी भी भाषा और साहित्य मे क्रान्ति उत्पन्न कर सकता है।

तुलसीदास सरस्वती के अत्यत कृपापात्र कवि थे। ऐसा जान पड़ता है कि वे जब काव्य-समाधि लेते थे, तब सरस्वती स्वय उनके मनोनीत विषय को लिख देती थीं। ऊपर हम उपमा और रूपक आदि विषयों मे उनकी आश्चर्य-जनक क्षमता का कुछ परिचय दे चुके हैं, यहाँ उनके सवादो पर प्रकाश डालकर हम बतलाना चाहते हैं कि सवाद-रचना मे भी वे अपने समकक्ष आप ही थे।

यों तो सारा रामचरित-मानस आदि से अत तक सवाद ही सवाद है, यहाँ तक कि मानस के चार घाटो पर चार सवाद—भरद्वाज - याज्ञवल्क्य - सवाद, उमा - शम्भु - सवाद, गरुड़ - काक-भुशुण्डि-सवाद और गोसाईं और भक्त-संवाद, एक साथ ही चल रहे हैं। पर बीच-बीच में अनेक बड़े-छोटे सवाद और भी हैं, जो मानस के रत्न हैं।

बड़े सवादों मे परशुराम लक्ष्मण-सवाद और अगद-रावण-संवाद मुख्य हैं। छोटे सवादों में सीता-राम-सवाद, भरत-राम-सवाद, और रावण-मन्दोदरी-संवाद आदि कई सवाद हैं और सभी बहुत सरस हैं।

यहाँ कुछ संवादो के सक्षिप्त परिचय दिये जा रहे है।—

राम के हाथ से धनुष के टूटने का समाचार पाकर परशुराम राज-सभा मे आये। उस समय सभा मे उपस्थित राजाओ मे बडी उत्तेजना फैल रही थी, और वाग्युद्ध का वातावरण गरम हो रहा था। ऐसे अवसर पर भयकर क्रोधी और प्रतिहिंसा की मूर्ति परशुराम का आगमन हुआ। तुलसीदास ने प्रसग के उपयुक्त बडी ही सुन्दर भूमिका पहले से तैयार कर ली है। जातीय युद्ध-कर्म से विरक्त-प्राय परशुराम के मुकाबले मे तेजस्वी युवक लक्ष्मण को खडा करके तुलसीदास ने मानो पुराने और नये ससार की मिलन-सीमा निर्धारित कर दी है।

परशुराम और लक्ष्मण-संवाद मानस के सवादो मे सबसे श्रेष्ठ और सर्वाङ्ग-सुन्दर है। इसमे मनुष्य के भिन्न-भिन्न स्वभावो का चित्रण बड़ी ही विचक्षणता से किया गया है। हरएक पात्र के मन का चढ़ाव-उतार, हृदय और बुद्धि का खेल, ध्वनि और अलकार का समन्वय जैसा इस संवाद मे मिलता है, वैसा हिन्दी के अन्य किसी कवि की रचना मे नहीं मिलता। तुलसीदास के भी अन्य सवादो मे ऐसी विशेषताये दृष्टिगोचर नहीं होतीं। सस्कृत मे भी शायद ही इस प्रकार का युक्ति-युक्त संवाद किसी कवि की रचना मे मिले।

परशुराम ने आते ही जनक को इतनी लापरवाही से 'जड़' कह डाला, मानो उनको वे कीट-पतग के समान भी नहीं समझते थे।—

अति रिस बोले बचन कठोरा।
कहु जड जनक धनुष कै तोरा॥
बेगि दिखाउ मूढ न त आजू।
उलटौ महि जहँ लगि तव राजू॥

इसपर राम ने आगे बढ़कर नम्रतापूर्वक कहा।—

नाथ संभु धनु भंजनिहारा।
होइहि केउ एक दासु तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही।

यह सुनकर परशुराम ने 'दास' शब्द पर लक्ष्य करके कहा।—

सेवकु सो जो करै सेवकाई।
अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा।
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा।
न त मारे जैहैं सब राजा॥

इसी बीच में लक्ष्मण का प्रादुर्भाव होता है और फिर दोनों में शब्दों और अर्थों के बड़े ही मनोरञ्जक दाँव-पेच चलते हैं।—

सुनि मुनि बचन लषन मुसुकाने।
बोले परसुधरहि अपमाने॥
बहु धनुही तोरी लरिकाईं।
कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाँईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू।

बातों-बातों में परशुराम ने अपने स्वभाव की ओर इशारा किया।—

बोले चितय परसु की ओरा।
रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही।
बिस्व बिदित छत्री कुल द्रोही॥

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही।
बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा।
परसु बिलोकु महीप कुमारा॥

मातु पितहिं जनि सोच बस, करसि महीप किसोर।
गरभन के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर॥

इसपर लक्ष्मण ने उनको तुच्छ समझते हुये कहा।—

अहो मुनीस महा भटमानो॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू।
चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं।
जे तरजनी देखि मरि जाँही॥
भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी।
जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई।
हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधे पाप अपकीरति हारे।
मारत हू पा परिअ तुम्हारे॥
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा।
व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

ऐसा अपमान परशुराम ने कभी काहे को सहा होगा? उन्होंने विश्वामित्र से चाहा कि वे लक्ष्मण को उनके तेज और प्रताप का हाल बतलाकर उद्धतपन करने से रोक दे। इसपर लक्ष्मण ने फिर कहा।—

अपने मुँहु तुम आपनि करनी।
बार अनेक भाँति बहु बरनी॥

सूर समर करनी करहि, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रलापु॥

तुम तौ काल हाँक जनु लावा।
बार बार मोहि लागि बोलावा॥

इसपर परशुराम ने परशु उठा लिया। विश्वामित्र ने क्षमा माँगी, तब परशुराम ने क्षमा करते हुये कहा।—

खर कुठार मैं अकरुन कोही।
आगे अपराधी गुरु द्रोही॥

उतर देत छाँड़ौ बिनु मारे।
केवल कौसिक सील तुम्हारे॥

न त एहि काटि कुठार कठोरे।
गुरहि उरिन होतेउँ स्रम थोरे॥

लक्ष्मण क्यो चुप रहने लगे? उन्होंने इसके उत्तर में वह चुभते हुये तीर मारे, जिनके लगने से परशुराम तिलमिला उठे।—

कहेउ लषन मुनि सीलु तुम्हारा।
को नहि जान बिदित संसारा॥

माता पितहि उरिन भए नीके।
गुरु रिनु रहा सोच बड़ जी के॥

सो जनु हमरेहि माथें काढ़ा।
दिन चलि गये ब्याज बहु बाढ़ा॥

अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली।
तुरत देउँ मैं थैली खोली॥

बोलते-बोलते लक्ष्मण के मुख से अग्नि-वर्षा-सी होने लगी।—

भृगुबर परसु देखावहु मोही।
बिप्र बिचारि बचौं नृप द्रोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े।
द्विज देवता घरहिं के बाढ़े॥

इसपर परशुराम का आग-बबूला हो जाना स्वाभाविक था। राम ने मधुर वचनों से उन्हे कुछ शात किया।

नाथ करहु बालक पर छोहू।
सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाव कछु जाना।
तौ कि बराबरि करै अयाना॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं।
गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी।
तुम सम सील धीर मुनि ग्यानी॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने।

इतने मे लक्ष्मण कुछ कहकर मुसकुरा दिये।—

कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने॥

अब क्या था? परशुराम फिर आग उगलने लगे।—

हँसत देखि नख सिख रिस व्यापी।
राम तोर भ्राता बड़ पापी॥
गौर सरीर स्याम मन माही।
कालकूट मुख पयमुख नाहीं॥
सहज टेढ अनुहरै न तोही।
नीच मीच सम देख न मोही॥

परशुराम को क्रोधावेश में देखकर लक्ष्मण उन्हे मनाने लगे। मगर उनके मनाने मे ऐसी ध्वनि निकलती है, जो क्रोध ही उत्पन्न करती है।—

मै तुम्हार अनुचर मुनिराया।
परिहरि कोप करिअ अब दाया॥

टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने।
बैठिअ होइहहिं पाय पिराने॥

जौ अति प्रिय तौ करिअ उपाई।
जोरिअ कोउ बड गुनी बोलाई॥

परशुराम की क्रोधाग्नि फिर प्रज्वलित हुई, राम ने अनुनय-विनय से उन्हे कुछ शीतल किया। तब वे पछताने लगे।—

कह मुनि राम जाय रिस कैसे।
अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥

गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि, सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखौं जिअत, बैरी भूप किसोर॥

बहै न हाथु दहै रिस छाती।
भा कुठार कुंठित नृप घाती॥

भयेउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ।
मोरे हृदय कृपा कस काऊ॥

आजु दया दुख दुसह सहावा।

इस पर लक्ष्मण ने अनेक व्यंग-बाण मार-मारकर मुनि को फिर जर्जर कर दिया।—

सुनि सौमित्र बहुरि सिर नावा॥

बाउ कृपा मूरति अनुकूला।
बोलत बचन झरत जनु फूला॥

जौं पै कृपा जरहि मुनि गाता।
क्रोधु भये तनु राख बिधाता॥

इस पर परशुराम ने क्रुद्ध होकर जनक से कहा।—

कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥
वेगि करहु किन आँखिन ओटा।
देखत छोट खोट नृप ढोटा॥

लक्ष्मण ने जले पर नमक छिड़क दिया।—

विहँसे लषन कहा मन माहीं।
मूँदे आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥

इस प्रकार यह संवाद आदि से अंत तक समान वेग, समान तीव्रता और तीक्ष्णता से सम्पन्न हुआ है। कहीं भी शैथिल्य नहीं आने पाया और न कहीं अरुचिकर हुआ है।

दूसरा बड़ा संवाद अंगद और रावण का है। इस संवाद के विवेचकों का कहना है कि यह बिलकुल देहाती ढङ्ग का है और सभ्य-समाज के उपयुक्त नहीं है। रावण भी राजा था, और अंगद भी राजकुमार था, दोनों के कथोपकथन में शिष्टता की मात्रा अधिक होनी ही चाहिये थी। इस दृष्टि से तो विवेचकों का आक्षेप ठीक जान पड़ता है, पर तुलसीदास के स्वरूप को समझ लेने पर यह संवाद इसी रूप में सुन्दर लगेगा।

तुलसीदास के स्वरूप की बात यह है कि उन्होंने रामचरितमानस में सभी श्रेणियों, सभी सम्प्रदायों और सभी विचारवालों को आकर्षित करनेवाले प्रसंग रक्खे हैं। यह प्रसंग सचमुच देहातवालों ही के लिये है, जो सभ्य-समाज के चापलूसी से चिकनाये हुये शब्दों और वाक्यों से अपरिचित होते हैं, और साफ़-साफ़ दो-टूक बातों ही से आनन्द अनुभव करते हैं।

किसी घमडी जमीदार के साथ गाँव के उद्दड आदमी जिस प्रकार वतकही करते हैं, उसीका ठीक-ठीक प्रतिरूप इस सवाद मे उतारा गया है।

और भी कई स्थानों मे रावण के स्वभाव को तुलसीदास ने उजड्डो-जैसा चित्रित किया है। एक उदाहरण लीजिये—जब वह सीता-हरण के लिये मारीच को बुलाने गया था और मारीच ने उसे समझाया-बुझाया था, तब वह बहुत बिगडा था और उसने मारीच को गालियाँ दी थीं। इस पर तुलसीदास ने लिखा है।—

सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी॥

इस चौपाई का भावार्थ देहात के लोग जितनी मधुरता से समझेगे, शहर के लोग उतना नही समझ सकते; क्योकि देहात मे तुलसीदास के रावण के स्वभाववाले जमींदार प्रायः सर्वत्र मिलते हैं। रावण-जैसे पर-स्त्री-चोर को एक वानर से अपमानित कराने मे तुलसीदास ही को मजा नहीं आया होगा, उनके बहु-सख्यक ग्रामीण पाठको को भी बड़ा मजा मिलता है।

इस सवाद की भाषा भी इसके अनुरूप ही है। परशुराम-लक्ष्मण-सवाद में सुसभ्य-समाज प्रतिबिंबित हो रहा है और अगद-रावण-सवाद मे ग्रामीण-जनता अकित है। अतएव इस सवाद को ग्रामीणता की दृष्टि से देखने ही से इसका सच्चा साहित्यिक आनन्द प्राप्त होगा। रावण और अगद दोनो एक दूसरे को खुली हुई गालियाँ दे रहे हैं और दोनों सह रहे हैं, ऐसा दृश्य देहात मे देखने को खूब मिलता है।

यहाँ सक्षेप मे इस सवाद का कुछ अश दिया जा रहा है।—

अङ्गद रावण की सभा में आकर बिना प्रणाम किये, जैसा देहात में होता है, बैठ गया। रावण ने पूछा—

कह दसकंठ कवन तैं बन्दर।

अङ्गद ने अपने परिचय के साथ अपने आने का उद्देश्य भी कह सुनाया ।—

मैं रघुबीर दूत दसकन्धर ॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई ।
तव हित कारन आएउँ भाई ॥
नृप अभिमान मोह बस किंबा ।
हरि आनिहु सीता जगदंबा ॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा ।
सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ॥
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी ।
परिजन सहित संग निज नारी ॥
सादर जनकसुता करि आगे ।
एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे ॥

प्रनतपाल रघुबंसमनि, त्राहि त्राहि अब मोहि ।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करैगो तोहि ॥

अङ्गद ने 'नृप' आदि मधुर शब्दों से फुसलाते हुये रावण को कठोर से कठोर बात कह सुनाई । इस पर रावण ने क्रुद्ध होकर कहा ।—

रे कपि पोत बोलु संभारी ।
मूढ न जानेहि मोहि सुरारी ॥

अङ्गद ने अपने पिता से उसकी मित्रता का हवाला दिया था । उस विषय में वह पूछ बैठा ।—

कहु निज नाम जनक कर भाई ।
केहि नाते मानिए मिताई ॥

अगद ने उत्तर दिया।—

अंगद नाम बालि कर बेटा।
ता सो कबहुँ भई ही भेंटा॥

बाली का नाम सुनकर रावण को उसके साथ अपनी मित्रता की याद आई और वह अङ्गद की भर्त्सना करने लगा। उस भर्त्सना में वाली के प्रति रावण की मान्यता भी झलक रही है।

अंगद तही बालि कर बालक।
उपजेहु बंस अनल कुल घालक॥
गर्भ न गएउ व्यर्थ तुम्ह जाएहु।
निज मुख तापस दूत कहाएहु॥
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई।

रावण ने बाली का कुशल-मंगल पूछा, तब अङ्गद ने बहुत ही चुभता हुआ जवाब दिया।—

दिन दस गए बालि पहिं जाई।
बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥
राम विरोध कुसल जसि होई।
सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥

अङ्गद के कठोर वचन सुनकर रावण क्रोधातुर होकर कहने लगा।—

खल तव कठिन वचन सब सहऊँ।
नीति धरम मैं जानत अहऊँ॥

इसका भी उत्तर अङ्गद ने बहुत ही मर्मवेधी दिया।—

कह कपि धर्मसीलता तोरी।
हमहु सुनी कृत पर तिय चोरी॥

देखी नयन दूत रखवारी।
बूड़ि न मरहु धरम ब्रत धारी॥
कान नाक बिनु भगिनि निहारी।
छमा कीन्हि तुम्ह धरम बिचारी॥
धरम-सीलता तव जग जागी।
पावा दरसु हमहुँ बड़-भागी॥

इस पर रावण डींग मारने लगा।—

जनि जल्पसि जड़ जन्तु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु सब राहु॥
पुनि नभ सर मम कर निकर, कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भएउ मराल इव, संभु सहित कैलास॥

अपनी भुजाओं के बल की बड़ाई करके फिर वह राम की सेना की आलोचना करने लगा।—

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद।
मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥
तव प्रभु नारि बिरह बल हीना।
अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम्ह सुग्रीव कूल-द्रुम दोऊ।
अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवन्त मन्त्री अति बूढ़ा।
सो कि होइ अब समर अरूढ़ा॥
सिल्पि कर्म, जानहिं नल नीला।
है कपि एक महा बल-सीला॥
आवा प्रथम नगरु जेहि जारा।

'महाबल-सीला कपि' से रावण का अभिप्राय हनुमान से था। इस पर अङ्गद ने आश्चर्य-पूर्वक कहा।—

सत्य वचन कहु निसिचर नाहा।
साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा॥

रावन नगर अलप कपि दहई।
सुनि अस वचन सत्य को कहई॥

जो अति सुभट सराहेहु रावन।
सो सुग्रीव केर लघु धावन॥

चलै बहुत सो वीर न होई।
पठवा खबरि लेन हम सोई॥

सत्य नगरु कपि जारेउ, विनु प्रभु आयेसु पाइ।
फिरि न गयेउ सुग्रीव पहिं, तेहि भय रहा लुकाइ॥

यहाँ अङ्गद ने मिथ्या-भाषण किया है। धर्म-शास्त्र की दृष्टि से चाहे यह अपराध ही हो, पर शत्रु को निष्प्रभ करने के लिये काव्य-कला की दृष्टि से इस अवसर का मिथ्या-भाषण समयोपयोगी ही जान पड़ता है।

इसके बाद रावण ने अंगद की वानर-जाति को लेकर मखौल उड़ाना शुरू किया।—

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा।
जहँ तहँ नाचै परिहरि लाजा॥

नाचि कूदि करि लोग रिझाई।
पति हित करै धरम निपुनाई॥

अंगद स्वामिभक्त तव जाती।
प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती॥

मैं गुन गाहक परम सुजाना।
तव कटु रटनि करौं नहिं काना॥

इस पर अंगद ने कहा कि तुम्हारी गुण-ग्राहकता की बात मुझे हनुमान ने कह सुनाई थी। यद्यपि इसके पहले अगद ने कहा था कि हनुमान तो भय वश राम के पास गये ही नही और कही लुक गये, पर यहाँ वह स्वीकार करता है कि हनुमान से उसकी भेट हुई थी।—

कह कपि तव गुन गाहकताई।
सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा।
तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा॥
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई।
दसकंधर मै कीन्हि ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा।
तुम्हरे लाज न रोष न माषा॥

इस गड़बड़ी का कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि अङ्गद असभ्य वानर-जाति का व्यक्ति था और आगे-पीछे का खयाल रक्खे विना ही, जो बात मौके पर सूझ जाती थी, कह बैठता था।

इसके बाद अङ्गद ने रावण को उसके अनेक पराजयो की याद बडे मनोरञ्जक ढग से दिलाकर पूछा।—

कहु रावन रावन जग केते।
मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते॥
बलिहि जितन एकु गएउ पताला।
राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहि बालक मारहिं जाई।
दया लागि बलि दीन्ह छोडाई॥

एकु बहोरि सहसभुज देखा।
धाइ धरा जिमि जन्तु बिसेखा॥

कौतुक लागि भवन लै आवा।
सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥

एकु कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।
तिन्ह महुँ रावन तैं कवन, सत्य बदहि तजि माँख॥

इसके उत्तर में रावण ने अपने बल की बड़ाई फिर कह सुनाई, और अंत में उसे डाटकर कहा।—

तेहि रावन कहुँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्व खल, अब जाना तव ग्यान॥

इस पर अंगद ने भी गालियाँ शुरू की।—

बोलु सँभारि अधम अभिमानी॥

रामु मनुज कस रे सठ बंगा।
धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥

सेन सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि, गएउ जो तव सुत मारि॥

इस कहा-सुनी के उपरान्त दोनों ओर से राम के बल की आलोचना हुई। हरएक ने अपने पक्ष का समर्थन कवि की सुन्दर उक्तियों से किया।

अङ्गद ने कहा।—

मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला।
राम बयर होइहि अस हाला॥

तव सिर निकर कपिन्ह के आगे।
परिहहिं धरनि राम सर लागे॥

इस पर रावण ने राम की निन्दा फिर शुरू की।—

सठ साखामृग जोरि सहाई।
बाँधा सिंधु इहै प्रभुताई॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा।
सूर न होहिं ते सुनु सठ कीसा॥
मम भुज सागर बल जल पूरा।
जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा।
को अस बीर जो पाइहि पारा॥
दिगपालन्ह मैं नीरु भरावा।
भूप सुजसु खल मोहि सुनावा॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा।
पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा।
रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥
हर गिरि मथन निरखि मम बाहू।
पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥

सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहि सीस।
हुने अनल अति हरख बहु, बार साखि गौरीस॥

जरत बिलोकेउँ जबहि कपाला।
बिधि के लिखे अंक निज भाला॥
नर कें कर आपन बध बाँची।
हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥
सोउ मन समुझि त्रास नहि मोरे।
लिखा बिरंचि जरठ मति भोरे॥

आन वीर बल सठ मम आगें ।
पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें ॥

इस पर अगद ने कहा ।—

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा ।
काटें सीस कि होइअ सूरा ॥
इन्द्रजालि कहुँ कहिअ न वीरा ।
काटै निज कर सकल सरीरा ॥
जरहिं पतंग मोहबस, भार बहहिं खरवृन्द ।
ते नहि सूर कहावहिं, समुझि देखु मतिमंद ॥
अब जनि बतबढ़ाव खल करही ।
सुनु मम बचन मान परिहरही ॥
दसमुख मैं न बसीठी आएउँ ।
अस बिचारि रघुवीर पठाएउँ ॥
बार बार अस कहै कृपाला ।
नहिं गजारि जसु बधें सृगाला ॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे ।
सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ॥
नाहिं त करि मुख भञ्जन तोरा ।
लै जातेउँ सीतहि बरजोरा ॥
तोहि पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ ।
तव जुवतीन्ह समेत सठ, जनक-सुता लै जाउँ ॥
जौ अस करउँ तदपि न बड़ाई ।
सुएहिं बधें कछु नहिं मनुसाई ॥
अस विचारि खल बधउँ न तोही ।
अब जनि रिस उपजावसि मोही ॥

अङ्गद के लगाये हुये मति-मद और खल आदि विशेषणों से रावण का क्रोध बहुत बढ गया। उसने धमकाते हुये कहा।—

रे कपि अधम मरन अब चहसी।
छोटे बदन बात बडि कहसी॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाके।
बल प्रताप बुधि तेज न ताके॥
जिन्ह के बल कर गर्व तोहि, ऐसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि, मूढ समुझु तजि टेक॥

रावण की जल्पना सुनकर अगद ने फिर उसे लताड़ना शुरू किया।—

मरु गर काटि निलज कुलघाती।
बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती॥
रे त्रियचोर कुमारग गामी।
खल मल-रासि मंदमति कामी॥
मैं तव दसन तोरिबे लायक।
आयसु मोहि न दीन रघुनायक॥
अस रिसि होति दसौ मुख तोरौं।
लंका गहि समुद्र महँ बोरौं॥
गूलरि फल समान तव लंका।
बसहु मध्य तुम्ह जंतु असका॥
मैं बानर फल खात न बारा।
आएसु दीन्ह न राम उदारा॥

ऐसे गाली-गलौज में महा अभिमानी रावण ने अपने मस्तिष्क पर काबू रक्खा, यह तो उसकी विशेषता ही कही जायगी! उसने हँसकर, एक व्यंग-बाण मारकर, बात टाल दी।—

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई।
मूढ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा।
मिलि तपसिन्ह तै भएसि लबारा॥

इसके बाद अगद ने पैर रोपा, वह किसी राक्षस से न डिगा। तब रावण उसे उठाने को उठा। अगद ने वाक्-चातुर्य से उसे यहाँ भी परास्त किया। रावण ने फिर कुछ नही कहा और दोनो का सवाद यहीं समाप्त हो जाता है।

तीसरा मनोहर सवाद सीता और राम का है। यह उस समय का है, जब राम वन जाने को तैयार थे और सीता भी उनके साथ जाना चाहती थीं। राम उन्हे रोक रहे थे। यह पति-पत्नी का प्रेम-सवाद है, और बहुत ही मधुर है। पति अपनी प्रियतमा पत्नी को वन के कष्टो से दुःखी नहीं देखना चाहता, और पति-परायणा पत्नी पति-वियोग के सम्मुख संसार के समस्त दुःखों और सुखों को भी तुच्छ समझ रही है। दोनो ओर के उत्तर-प्रत्युत्तर बहुत युक्ति-पूर्ण और सरस साहित्यिक भाषा में हुये हैं। सीता ने राम की प्रत्येक दलील का उत्तर बड़ी कोमल और हृदय-स्पर्शिनी भाषा मे दिया है।

यहाँ दोनों ओर की कुछ प्रेमार्द्र पक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं।—

राम—

राजकुमारि सिखावनु सुनहू।
आनि भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जौं चहहू।
बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी।
होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी।
सुन्दरि! समुझायेहु मृदु बानी॥

सीता।—

दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई।
जेहि बिधि मोर परम हित होई॥

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं।
पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान॥

प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं।
मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे।
सरद बिमल बिधु बदन निहारे॥

राम।—

काननु कठिन भयंकर भारी
घोर घाम हिम बारि बयारी॥

कुस कंटक मग कांकर नाना।
चलब पयादेहि बिनु पदत्राना॥

चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे।
मारग अगम भूमिधर भारे॥

कंदर खोह नदी नद नारे।
अगम अगाध न जाहि निहारे॥

भालु बाघ बृक केहरि नागा।
करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥

भूमि सयन वलकल बसनु, असन कंद फल मूल।
तेकि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल॥

सीता।—

खग मृग परिजन नगर वनु, वलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुख मूल॥

वन-देवी वन-देव उदारा।
करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥

कुस किसलय साथरी सुहाई।
प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥

छिनु छिनु प्रभु पद कमल विलोकी।
रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी॥

राम।—

नर अहार रजनीचर चरहीं।
कपट वेष विधि कोटिक करहीं॥

लागइ अति पहार कर पानी।
विपिन विपति नहिं जाइ बखानी॥

व्याल कराल विहँग बन घोरा।
निसिचर निकर नारि नर चोरा॥

डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ।
मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥

सीता।—

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे।
भय विषाद परिताप घनेरे॥

प्रभु वियोग लवलेस समाना।
सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहिं प्रान ।
दीनबंधु सुन्दर सुखद, सील सनेह निधान ॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी ।
छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं ।
मारग जनित सकल स्रम हरिहौं ॥
बार बार मृदु मूरति जोही ।
लागिहि तात बयारि न मोही ॥
को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा ।
सिंघ बधुहि जिमि ससक सिआरा ॥

राम ।—

हंस-गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू ।
सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली ।
जिअइ कि लवन-पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरन सीला ।
सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी ।
चंदबदनि दुखु कानन भारी ।

सीता ।—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू ।
तुम्हहिं उचित तपु मोकहुँ भोगू ॥

ऐसेउ वचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख, सहिहहि पावँर प्रान ॥

(अयोध्या-कांड)

संवादो मे प्रदर्शित कवि का अनेक रूप सहृदयजनो के लिये बडे मनोरंजन की वस्तु है। अकेले एक कवि को अपने सब पात्रो के भिन्न-भिन्न स्वाँग अलग-अलग भरने पड़ते हैं। राम के मुख से उसे राम की-सी बातें बोलनी पड़ती हैं, और रावण के मुख से रावण की-सी, राम के प्रति अक्षुण्ण श्रद्धा रखते हुये भी रावण के मुख से राम के विरुद्ध बोलने में वह संकोच नही करता। इसी प्रकार कहीं वह पति के रूप में बोल रहा है, तो कहीं पत्नी के; कहीं वह एक नटखट राजकुमार का भेस धारण किये हुये है, तो कहीं किसी क्रोधी मुनि का। पर वह न राम है, न रावण; न पति है, न पत्नी, न राजकुमार है और न मुनि। वह सब मे है और सबसे अलग भी। यह उसकी विलक्षणता है। कवि अपनी कविता में उसी प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे सचराचर जगत के भिन्न-भिन्न रूपो मे ब्रह्म, और साथ ही वह अपना निजत्त्व अलग भी कायम रखता है। कवि और ब्रह्म का यह सादृश्य देखकर ही, जान पड़ता है, वेदो ने ब्रह्म को भी कवि कहा है। कवि की इस विचित्रता को देखकर हमें उपनिषद् का यह वचन स्मरण आता है।—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
(कठोपनिषद्)

तुलसीदास ने अपने प्रत्येक पात्र का पार्ट बड़ी ख़ूबी से अदा किया है। किसी पात्र के स्वाभाविक भावो को व्यक्त करने मे उन्होंने अपनी निजी भावनाओ को कहीं बाधक नहीं होने दिया है। कवि की हैसियत से इस कठिन कार्य में अद्भुत सफलता प्राप्त करके उन्होंने कवि-मात्र का गौरव बढ़ाया है।

तुलसीदास और उनकी कविता

तीसरे भाग की विषय-सूची

and his unrivalled knowledge of poetical usage and colloquial Hindi has called him to throw fresh light on many passages and to correct the errors of previous commentators.

बाबू ब्रजनन्दन सहाय, आरा—गोस्वामीजी के विषय में कोई ऐसी बात नहीं है, जिसका उल्लेख इस पुस्तक में न हुआ हो। 'क्रान्तिकारी काव्य' शीर्षक विषय तो एकदम नवीन है ।

पृष्ठ-संख्या १६००; आकार बड़ा; टाइप मोटा, छपाई-सफाई सुन्दर; रङ्गीन कपड़े की मजबूत जिल्द, मूल्य केवल पाँच रुपये। डाक-व्यय एक रुपये आठ आने। रेलवे स्टेशन नजदीक हो, तो रेलवे-पार्सल से मँगाइये। रेलवे-पार्सल से मँगाना हो, तो १) पेशगी भेजिये, जो वी० पी० में मुजरा कर दिया जायगा। कई प्रतियाँ रेल से एक साथ मँगाइये तो भाड़े मे किफायत होगी।

पता—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग